पाणिनीय-प्रदीपः

(संस्कृत शिक्षण की सर्वाङ्गीण सरलतम सरणि)

★

लेखक :

डा० म० म० पण्डितराज

श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शन केशरी' डी० लिट्

संपादक :

श्री रामचन्द्र कपूर

(*EX-Dip: F. I. P. S. London*)

दिल्ली

प्रकाशक

जगदीश चन्द्र कपूर
६/२ रेलवे कालोनी, किशनगंज
दिल्ली ११०००७

राजेन्द्रकुमार कपूर
११३/२३-ए, गोविन्द भवन
स्वरूप नगर, कानपुर (उ. प्र.)

प्रथम संस्करण १ हजार
महर्षि दयानंद सरस्वती प्रथम शताब्दी उपलक्षे
वि० सं० २०३३ (अप्रैल १९७६)

प्रथम संस्करण--1000प्रतियाँ
मूल्य : दस रुपये १०)

मुद्रक—
शरद कुमार 'साधक'.
चोराहा प्रेस
अगस्त कुंडा, वाराणसी

॥ ॐ तत् सत् ॥

किञ्चिदुपक्रमः

ॐभद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥
(अथर्व–१६-४१-१)

मैंने अपने पाणिनीय प्रशस्ति नाटक के पञ्चम अङ्क के वारहवें दृश्य में लिखा है कि—

आकुमारं यशः पाणिनेरद्भुतं विस्तृतं सर्वदिक्काललोकाप्लुतम् ।
धातुसूत्रेष्टिलिङ्गैर्गणाद्यैर्युतं वार्तिकैः पूरितम्पाणिनीयं मतम् ॥

जिस संस्कृत भाषा के विना बुद्धि, वाणी, विचार परिष्कृत नहीं होते, उस संस्कृत भाषा के जानने की ताली (कुंञ्जी) पाणिनीय व्याकरण है। उसके प्रवर्तक की अद्भुत कीर्ति बच्चे बच्चे तक व्याप्त है। (फैली है) सभी दिशाओं में भूत, भविष्य, वर्तमान कालों में सभी लोक तथा जन-जन में भरी पड़ी है। उनका यह व्याकरण (पदसिद्धि प्रकार आदि) १ धातु-पाठ २ उणादिसूत्रों सहित अष्टाध्यायी-सूत्र-पाठ ३ भाष्यकारकी इष्टिके साथ परिभाषा-पाठ ४ शिक्षापाठ सम्मिलित गणपाठ ५ लिङ्गानुशासन। ये ही पञ्चपाठीके नाम से प्रसिद्ध हैं। और कात्यायनके वार्तिक पाठसे परिपूर्ण होकर यह पाणिनीय व्याकरण आज विश्वमान्य है। विना पाणिनीय व्याकरण जाने लौकिक वैदिक दोनों पदों का ज्ञान नहीं हो सकता।

व्याकरण शास्त्र का पहला स्वरूप समुद्र के समान विशाल था, जिसे विस्तृत माहेश व्याकरण कहा जाता था। उसे काट छाँट कर वृहस्पति ने कुछ हलका किया। वाद इन्द्र ने उसके भी शतांश कम करके ऐन्द्रव्याकरण वनाया। (ये माहेश, वार्हस्पत्य और ऐन्द्र व्याकरण अव अनुपलब्ध हैं।) अन्त में पाणिनिका व्याकरण कुश के अग्रभाग में लटके जलबिन्दु के समान पवित्र छोटा (लघुतर) व्याकरण है। उसमें जो कुछ कमी थी, उसे कात्यायन ने वार्तिक बनाकर पूरा किया। उससे जो कुछ छूटा था

उसे पतञ्जलि ने भाष्य लिखकर पूर्ण किया। उन्होंने जो कुछ छोड़ा, उसे राजा भोज, चन्द्रगोमी आदि वैयाकरणों ने पूरा किया है। इसीसे इस व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण कहने की प्रथा है। त्रिमुनि शब्द भी उपलक्षण है। बहुमुख व्याकरण इसका यथार्थ नाम है। आज भी 'भूवादयो धातवः १।३।१' 'अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६' इत्यादि सुत्रों के चमत्कारिक अर्थ किये ही जाते हैं। षट्पदी सूत्रों से बिच्छू के विष उतारना, वृद्धिरादैच् १।१।१ के अनुष्ठानसे न्यायालय में विजय प्राप्त करना, इत्यादि आविष्कार होते ही जाते हैं। यह पाणिनिव्याकरण वेदकल्प है। आज भी वैदिक विद्वान इसका नित्य पाठ द्वारा वरावर स्वाध्याय किया करते हैं। यह प्रथा आज तक अक्षुण्ण चली आ रही हैं।

पाणिनिकाल से १२ बारहवीं शताब्दी तक इसी अष्टाध्यायी के आधार पर पढ़ना पढ़ाना चलता था। जिससे शिष्यों में मेधावृद्धि, स्मृति-वृद्धि, सूत्रवृत्ति निर्माण का सामर्थ्य, आर्यत्व आदि गुण अपने आप आ जाते थे। अधिक क्या कहूं सूत्रक्रम (पाणिनि पद्धति) से व्याकरण पढ़ाना ही संस्कृत भाषा का वैज्ञानिक सरल अध्यापन है। दार्शनिक, ऐतिहासिक, समाज शास्त्री, सच्चा आर्य वन जाना इसका परिणाम है।

वौद्ध महापण्डित धर्मकीर्तिजीने वौद्ध दृष्टि से सरलता लाने के लिए वैदिक सूत्रों को छोड़कर भाषा के सूत्रों को भी कमकर प्रयोगप्रधान प्रक्रिया ग्रन्थ 'रूपावतार' १२ बारहवीं शताब्दी में जब लिखा, तभी से अष्टाध्यायी द्वारा अध्ययनाध्यापन में शिथिलता प्रारम्भ हुई।

यद्यपि धर्मकीर्तिजी तो पाणिनिपद्धति से ही सूत्रार्थ करते कराते हैं। वृत्ति रटाते नहीं है। भट्टोजी दीक्षितजी ने भी अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ चुके पण्डितों के लिये सिद्धान्त-ग्रन्थ सिद्धान्त-कौमुदी लिखा है। वरदराज ने छोटे बालकों के लिये लघु कौमुदी लिखी तो 'सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र' लिखकर वृत्ति वनाने का प्रकार वता ही दिया है। तो भी आज का अध्यापक छात्रों से वृत्ति रटवाता है। वनवाता नहीं। आज के न अध्यापक ने क्रम से सूत्र पाठ (अष्टाध्यायी) पढ़ा है, न छात्र ही अष्टाध्यायी जानता है (अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः) हो रहा है। आज अंग्रेजी स्कूल कालेज़ों में संस्कृत पढ़ने वाला ग्रेजुएट संस्कृत में प्रायः कोरा ही (शून्य ही) रहता है। संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ना इस पद्धति के विना दुरूह होता जा रहा है, क्योंकि वहां अष्टाध्यायी नहीं है।

इन्हीं दोषों को दूर करने के लिए श्रीरामचन्द्र कपूर साहव (नं० ६/२ रेलवे कालोनी, किशनगंज, दिल्ली ७) की सदिच्छा से प्रेरित होकर मैंने हिन्दी माध्यम से पाणिनिपद्धतिका ग्रन्थ 'पाणिनीय प्रदीप' लिखा है। श्री शरद कुमार साधकजी (संचालक) चौराहापत्र, (प्रेस) अगस्तकुण्डा वाराणसी १ भी मुद्रणार्थ प्रवृत्त हुए हैं। उनके अथक परिश्रम और श्रीरामचन्द्र कपूर साहव को जनकल्याण की भावना का ही यह फल है कि 'पाणिनीय प्रदीप' एक सद्रत्न के रूप में पाठकों को दिया जा रहा है।

वे इसे मनोयोगसे पढ़ें और समझें कि पाणिनि-पद्धति कितनी वैज्ञानिक है, व्यवस्थित और सरल है। इस पद्धति से संस्कृत अनायास वश में आ जाती है। और छः मास में ही संस्कृत का ज्ञाता वन जाता है।

ऊर्ध्ववाहु प्रतिज्ञेयं कृता गोपालशास्त्रिणा।
षण्मास्यैव हि विज्ञाः स्युर्वालाः संस्कृत-पाठिनः॥

पुस्तक पढ़ने का प्रकार भी विषय प्रवेश में विस्तार से वताया गया है। उसे खूव समझना है। पुस्तक यद्यपि सरल लघु संक्षिप्त है, तथापि यदि कहीं दिक्कत मालूम पड़े तो पूर्णा व्याख्या (जिसका नामकरण उनकी धर्मपत्नी की स्मृति में किया गया है) युक्ता सूत्र-क्रम-सूची में अर्थ देखना चाहिए। एक सौ अठारह ११८ अजादि सूत्रों का अर्थ करके बता दिया गया है कि यों ही सभी सूत्रोंका अर्थ कर लेना होगा।

वस, यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। पाणिनि पद्धति ही संस्कृत जानने का सवसे सरलतम उपाय है। जिसे श्री रामचन्द्र कपूर साहब ने सबके सामने रख दिया है। उससे यथार्थ लाभ उठाना विद्यार्थी और अध्यापकों का काम है।

अमृतं मधुरं सम्यक् संस्कृतं तु ततोऽधिकम्
देव-भोग्यमिदं यस्माद् देव-भाषेति गीयते।
न जाने विद्यते किं तन्माधुर्यमिह संस्कृते
सर्वदैव समुन्मत्ता येन वैदेशिका वयम्॥

यह पाश्चात्य वैज्ञानिक मनीषियों का संस्कृत के प्रति हार्दिक उद्गार है। अतः मैं भी अपनी पवित्र शुभाशंसा व्यक्त करता हूं—

समृद्धिः स्याद्देशे समय-जलदाः सन्तु जलदाः।
पुरन्ध्री स्याज्जोषा सुनय-निरता नेतृनिवहाः॥

भवेद् दोग्ध्री धेनुः सतत-सुखिनः सन्तु सुधियः।
युवानः सभ्याः स्युः सुविशद-सुता स्यात् सुजनता ॥

देश में समृद्धि=धन दौलत बढ़े। मेघ समय पर जल वरसावें। स्त्रियां घरको सँभारने (सजाने) वाली होवें। नेता गण अच्छी नीति के साथ शासन करें। गायें खूब दूध देने वाली होवें। सुधा विद्वान गण सर्वदा सुखी रहें। युवक वर्ग सभ्य होकर सभा में वैठने योग्य वनें। जनवृन्द भी सुविशद=विशुद्ध सन्तान पैदा करने वाला वने।

अन्त में —यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ (गी० ९।२७)

इस भगवदुक्ति के अनुसार साक्षात् शिवस्वरूप गुरुवर्य आचार्य श्रीरामेश्वर झा जी महाराज को समर्पित कर कृतकृत्य होता हूं। तथाहि—

'विश्व-सम्राडहं सार्ध-हस्तत्रये' देह आस्थः स्वलीलां सदा सन्दधे।
सागरोर्मि-प्रशान्ति-स्थितिर्मे स्थितिः सच्चिदानन्द-रूपैव सा राजते ॥

वाराणसी
१५ अप्रैल १९७६

—श्री गोपाल शास्त्री
'दर्शन केशरी'

★

रहा है, क्योंकि वह...

यत्किञ्च मनोगतम्

मुझे अपनी ओर से कुछ लिखने में भारी सङ्कोच तथा लज्जा सी लग रही है। चूंकि मनोगत भावों को तो विद्वान् ही यथार्थ रूप से व्यक्त कर सकते हैं। मैं तो इस समय अपने आप को 'बलादिव नियोजितः' वत् अनुभव कर रहा हूं। केवल शिष्टाचार तथा परिपाट्यनुसार कुछ एक दो शब्द पाठकों की सेवा में भेंट किये देता हूं—

नाम—	रामचन्द्र कपूर सुपुत्र स्व० श्री जस्वन्त लाल जी कपूर
जन्म स्थान—	मुलतान नगर (पाकिस्तान)
जन्म तिथि—	२० मार्च, सन् १९००

पुस्तकसम्बन्ध—यह कोई सितम्बर १९६८ की बात है, मैं अपने छोटे सुपुत्र श्री राजेन्द्र, जो उन दिनों वाराणसी में शायद उद्योग विभाग में राज्याधिकारी थे, से मिलने गया, उन्हीं दिनों 'वेद वाणी' मासिक पत्रिका स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के सम्पादकत्व में निकला करती थी। मैं ग्राहक सदस्यता के कारण 'वेद वाणी' लेने के लिये वहां चला गया। पहुँचने पर वहां के अधिकारी महोदय ने 'वेद वाणी' देते हुए छोटी सी दो पुस्तकें दिखलाईं जो मैं ने मोल ले लीं। घर आने पर उनका थोड़ा सा अवलोकन करने पर पता चला कि यह व्याकरण की पुस्तक पाणिनीय पद्धति पर लिखित 'संस्कृत प्रबोध' के दो भाग हैं : पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध। उन्हें यथावकाश-बोध पढ़ना आरम्भ किया। लेखन शैली सरल और सुबोध थी। मन में आया कि यदि इनका यथोचित परिमार्जन और परिवर्धन कराकर पुनःसंकलन हो जाय तो हर प्रकार से संस्कृत पठनार्थियों के लिये यह अत्युपयोगी सिद्ध हो। केवल एक बड़ी कठिनाई यह थी कि यह दोनों भाग (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) सूत्रों से ओत प्रोत थे और शायद ही कोई पंक्ति ऐसी हो जो सूत्र से रिक्त हो। तो इस समस्या का सरल उपाय यही सोचा गया कि इन सूत्रों की वर्णानुक्रम (अत्यन्त कोषवत् न सही पाठकों की सुविधा के लिए आदिवर्णशब्दगत तो हो) सूची बनवा कर और उनकी व्याख्या करवा कर परिशिष्ट के रूप में साथ लगा दी जाय।

पुस्तक के परिमार्जन, परिवर्धन तथा पुनःसंकलन कार्य के लिये मूल पुस्तक अर्थात् 'संस्कृत प्रवोध' के रचयिता पूज्यपाद पं० श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शन केशरी' जी से और कौन ज्यादा उपयुक्त व्यक्ति हो सकता है। यह विचार कर उन से पत्र व्यवहार तथा साक्षात् मिलन भी किया तो उन्होंने सहर्ष यह कार्य अपने हाथों में ले लिया।

सूत्रों की सरल व्याख्या के लिये अति प्रयत्नान्तर आचार्य श्री पं० राम प्रकाश जी शास्त्री भारद्वाज, भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग, संस्कृत विद्यापीठ, अहिंसा भवन, नई दिल्ली से मिलन हुआ जिन्होंने इस कार्य को बड़ी संलग्नता से सम्पन्न किया।

इन दोनों विद्वानों के लिये मेरे पास शब्द नहीं, जिनसे मैं इ नके प्रति आभार प्रकट कर सकूं। मैं इनका अन्तर्हृदय से अनुगृहीत हूं। इसके साथ ही सुश्री मेधाजी, आचार्या, पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी का, जिन्होंने सूत्र व्याख्या को आद्योपान्त अवलोकन करने के उपरान्त यत्किंचित् संशोधन करके व्याख्या की सुन्दरता में वृद्धि की। श्री पं० जगदीश लालजी शास्त्री, एम. ए. द्वय, भूतपूर्व संस्कृत प्रो० गवर्नमेण्ट कालेज, जवलपुर, जिन्होंने मूल 'संस्कृत प्रवोध' के मुद्रण तथा अन्य अशुद्धियों का संशोधन किया, का भी अत्यन्त आभारी हूं।

वस्तुतः, आर्यसमाजी न होते हुए भी मेरी पूज्यवर महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के प्रति किसी आर्यसमाजी भाई से श्रद्धा और आस्था कम नहीं चूंकि वह वेद को अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण मानते थे और दूसरा वह आर्षप्रणाली अर्थात् महर्षि पाणिनि-पद्धिति के परम पोषक थे। उनके लगभग १४ भाग वेदाङ्ग प्रकाश (पाणिनि मुनि के उपदेशों का संकलन) इस बात का प्रमाण है। वह जानते थे कि 'नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्' की उक्ति से यदि संस्कृत ही नहीं जानी तो वेद के प्रचार और प्रसार का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी लिये वह सर्वत्र गुरुकुलों की स्थापना चाहते थे। और महाराज मनु

के—एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

की इस भावना का संसार को साक्षात्कार करवाना चाहते थे। दुर्भाग्य है कि हमने उनकी इस विषय में भी अक्षम्य अवहेलना की है।

ऋषि के उत्तराधिकारी इतनी गहरी निद्रा में सोए हुए हैं कि उस महानात्मा की शताब्दी भी उनके खून में हरकत पैदा नहीं कर सकी, नहीं तो आज हम संस्कृतज्ञ होते और वेदों का घर घर में नाद होता। अतः क्या ही सुन्दर हो कि अव भी इसी शताब्दी के उपलक्ष्य में अधिकारीजन जागें और महर्षि के स्वप्नों को साकार करने का व्रत लें, कि अव से वही आर्य समाज सच्चे अर्थों में आर्य समाज प्रमाणित होगी जिस के तत्वाधान में संस्कृत शिक्षणार्थ सुयोग्य पुरोहित तथा पाठशाला और यज्ञ के लिये एक दुधारु गाय होगी। यह आर्य समाज रूपी शरीर के महाप्राण (प्राण और अपान) हैं। धुआं-धार तकरीरों और आडम्बरी प्रदर्शनों से अपने को तो धोखा दिया जा सकता है, दूसरों को नहीं। यह लेखन कदापि कटाक्ष की दृष्टि से नहीं, परन्तु प्रेम और हित की भावना से अभिव्यंजित है चूंकि आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है जो संस्कृत के प्रसार से भगवान वेद के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के घोष को सत्य कर सकता है। यदि इनमें से कोई शब्द अथवा वाक्य कटु लगे हों तो उनके लिये सदैव क्षम्य रहूंगा।

हे ऋषिवर मैं इस शिशु 'पाणिनीय प्रदीप' पुष्प को आपके श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि रूप में सादर भेंट करता हूं, भगवन् आशीर्वाद दो कि यह शिशु 'प्रदीप' असंख्य बुझे प्रदीपों को प्रज्वलित करे और प्रौढ़ होकर विराट् ज्योतिस्तम्भ का रूप धारण करके मानवमात्र को सज्ज्ञान की ओर ले जाने वाला तथा सच्चे सुख, प्रेम और शान्ति की वर्षा करने वाला सिद्ध हो।

'पाणिनी प्रदीप' के संपादन का श्रेय अनानास मुझे मिल गया है। इसे पाठकों तक लाने में इस वृद्धावस्था में मुझे जो श्रम करना पड़ा, वह तभी सार्थक होगा जव इससे पढ़ने वाले लाभान्वित होंगे। इस पुस्तक के मुद्रण में अनेक कठिनाइयां रहीं, प्रूफ संवंधी गलतियाँ भी छूटी हैं, उन सबके लिए जो विवशता है, उसे पाठक क्षमा करें और इस सम्बन्ध में जो भी सुझाव हों वे मुझ तक पहुँचा सकें तो मैं अपने आपको कृतार्थ मानूंगा।

संस्कृत के प्रति संपूर्ण श्रद्धाभाव रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए मेरी यह भेंट विना मूल्य रहेगी–जिसे महर्षि दयानंद के प्रति सार्थक श्रद्धांजलि ही कहा जा सकता है।

इसमें संस्कृत प्रेमियों की श्रद्धा भी साकार हो रही है।

ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः, शन्नो विष्णु रुरुक्रमः।
नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि।
सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तार मवतु।
अवतु माम् अवतु वक्तारम्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

दिल्ली
१ वैशाख सं० २०३३
तदनुसार, १३ अप्रैल १९७६

— रामचन्द्र कपूर

☆

सन्धि वशीकार मन्त्र पद्यावली

पञ्चचामर छन्दः

(जरौ जरौ जगाविदं वदन्ति पञ्चचामरम्। १६ स्वर)

अच् सन्धिः

अकोऽकि दीर्घसन्धिमाहुराद्गुणो भवेदिकि,
त्ववर्ण एचि वृद्धिमेत्यिको यणच्ययादयः।
स्युरेच एङ एत्यति प्रपूर्वता यदान्तगात्,
सदा द्वितीयमीत्व मूत्व मेत्व मेति नान्यताम्॥ १ ॥

अक् प्रत्याहार के वाद 'अक्' प्रत्याहार हो तो क्रमशः दोनों मिलाकर दीर्घ होता है। अवर्ण से इक् प्रत्याहार परे रहने पर गुण होता है। अवर्ण से एच् परे रहने पर वृद्धि होती है। इक् का अच् परे रहने पर यण् होता है। एच् प्रत्याहार का अच् परे रहने पर अयादि सन्धि (अय्, अव्, आय्, आव्) होती है। पदान्त एङ से अति = ह्रस्व अकार परे हो तो दोनों मिलकर पूर्वका रूप हो जाता है। द्विवचन ई ऊ ए दूसरे नहीं होते। जैसे के तैसे ही रहते हैं।

हल् सन्धिः

सतू शचू षटू समेत्य तत्सवर्णतामितः ।
पदान्तझल् तु जश् सदा च चर्खरि प्रजायते।
स ञम् ञमि प्रयाति वा लघोः परोऽचि ङम् सदा।
द्विरेति वा पदान्त-झय्-परोऽमि श श्छकारताम्॥ २ ॥

स कार त वर्ग, श कार च वर्ग ओर ष कार ट वर्ग से मिलकर उन्हीं के सवर्ण हो जाते हैं। पदान्त झल् सदाही जश्हो जाता है। वही झल् खर् परे रहने पर चर् हो जाता है। परन्तु ञम् परे रहने पर तो वह झल् जश् होकर ञम् ही हो जाता है। लघु स्वर के वाद का ङम अच् परे रहने पर द्वित्व (डबल) हो जाता है। पदान्त झय् से परे श छ हो जाता है, यदि उसके बाद अम् प्रत्याहार परे हो।

पदान्त-झय्-परो ह एति वा पुरः सवर्णतां,
लघुं तुगेति सन्धिगश्छकारवर्णके परे।
तवर्ग एति ले परे लकारतामिति ध्रुवम्,
स्वनुस्वरंस्त्रयं समेति नः सवर्णतश्छवि ॥ ३ ॥

पदान्त झय् से परे हकार अपने पूर्व का सवर्ण अक्षर होता है। छ कार अक्षर परे हो तो लघुस्वर को तुक् का आगम होता है और उस तुक्का अनुवन्ध लोप करके सन्धि करके च् कर दिया जाता है। लकार परे रहने पर तवर्ग लकार हो जाता है। न् कार तो छव् प्रत्याहार परे होने पर छव् प्रत्याहार के अक्षरों के सवर्ण श् ष् स् हो जाता है और उसके पूर्व स्वर पर अनुस्वार (ं) लग जाता है।

नमौ पदस्य मध्यगावनुस्वरौ परे झलि,
त्वनुस्वरो ययि ध्रुवं सवर्णतां स विन्दते।
म आश्वनुस्वरत्वमेति हल्परः पदान्तगः,
स वैत्यनुस्वरः पदान्तगः सवर्णतां ययि ॥ ४ ॥

पद के मध्य में रहने वाले न्कार म्कार दोनों झल् प्रत्याहार परे रहने पर अनुस्वार हो जाते हैं। वह अनुस्वार यय् प्रत्याहारपरे रहनेपर परसवर्ण हो जाता है अर्थात् जो वर्ग का अक्षर रहेगा उसीका पंचम अक्षर नित्य हो हो जाता है। हल् परे रहने पर पदान्त म्कार फौरन अनुस्वार हो जाता है। वह पदान्त अनुस्वार ययि = यय् प्रत्याहार परे रहने पर उसी का सवर्ण अक्षर विकल्प से होता है। अर्थात् वह वर्ग का पंचम अक्षर विकल्प से होगा। एक जगह अनुस्वार ही रहा करेगा।

विसर्ग सन्धिः

कखो≍पफोर्विसर्ग एति वार्द्धतां स वा शरि
च्छवि त्रयं तथा समेति तस्य वर्णसाम्यतः।
अतोऽति रुत्वमुत्वमेत्यतो हशीदमेव हि
त्ववर्णतोऽशि रुत्वमेति लोपगां यकारताम् ॥ ५ ॥

अपवादपद्यम्

स एष एत आल्परौ विसर्गशून्यतां सदा
रि रश्च लोपमेति तत्पुरोऽण्समेति दीर्घताम् ।
सुबुद्धिभिः सुपाठकैः स्वसन्धिरोगनाशकैः
समग्रसन्धिरुच्यते रसैर्हि पञ्चचामरैः ॥ ६ ॥

विसर्ग तो क ख तथा प फ परे रहने पर आधा विसर्ग विकल्प से हो जाता है। यों ही शर् प्रत्याहार परे रहने पर विकल्प से और छव् प्रत्याहार परे रहने पर नित्य हो उसी शर् छव् प्रत्याहारके वर्णोंके साम्यसे तीनों श् ष् स् हो जाता है। ह्रस्व अकारके बादका रु (विसर्ग) ह्रस्व अकार परे रहने पर उकार हो जाता है। ह्रस्व अकारके बाद का विसर्ग हश प्रत्याहार परे रहनेपर भी ऐसा ही (उ) होगा अर्थात् उकार हो जायगा। बाद दोनों जगहोंपर अच्सन्धि करके रूप बनेगा। अवर्ण (अ आ) के बाद अश् परे रहने पर [अ के बाद आच् परे रहने पर तथा आ के बाद अश् परे रहने पर] रु (विसर्ग) लोप हो जाने वाला य् हो जाता है। बाद सन्धि नहीं होती ॥ ५ ॥

स और एष ये दोनों पद आल् प्रत्याहार पर रहने पर सदा विसर्ग से शून्य रहते हैं। रेफ परे रहने पर रेफ का लोप हो जाता है और उसके पूर्व का स्वर अक्षर दीर्घ हो जाता है। यों सुबुद्धिमान् पाठक जो अपना सन्धिरोग नाश करना चाहते हैं। वे छः पञ्चामर छन्दसे ही सारी सन्धियां कर लेते हैं ॥ ६ ॥

(रैश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी सम्मता)

स्थानयत्नैर्हलां सन्धिराधीयताम् ।
स्थान-मात्र प्रभावादचां सन्धयः ॥
अश्खरोर्भेदतः स्यात् स वैसर्गिको ।
रुर्भवेल्लोपभृद् योऽण्यवर्णादशि ॥

स्थान और यत्नों के द्वारा हल् अक्षरों की सन्धि कर लो। स्थान-मात्र के ही ज्ञान से अचों (स्वरों) की सन्धियां कर लो। विसर्ग-

सन्धि तो अश् तथा खर् प्रत्याहार के ही भेद से हो जाती है। अवर्ण से अश् प्रत्याहार परे रहने पर रु'का (विसर्ग का) लोप हो जाने वाला 'य' होता है।

हश्यति स्यादतोऽरुः स उः सन्धिगः।
स्थान-साम्येन खर्षु व्यवस्था मता॥
आलि चैषोऽपि सोऽग्रं विसर्गप्रहृद्।
रो रि लोपे पुरोऽण् दीर्घतां विन्दते॥

ह्रस्व अकार से परे यदि 'रु' (विसर्ग) हो उसके वाद हश् प्रत्याहार या केवल अकार (ह्रस्व अ) अक्षर हो तो 'रु' (विसर्ग) का 'उ' हो जाता है। खर् प्रत्याहार के अक्षरों मे तो स्थान के ही मेल से सन्धि करने की व्यवस्था है। स और एष ये दो पद आल् प्रत्याहार (अकाराक्षर छोडकर सभी अक्षरों) में विना विसर्ग के ही रहते हैं। और रेफ परे रहने पर रेफ का लोप हो जाता है और उसके पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाता है।

मन्त्ररूपी इन श्लोकों को कण्ठस्थ कर लेने से पूर्ण रूप से संधि ज्ञान हो जाता है। इति शिवम्

विषय-सूची

क्रम सं०	विषय	पृ० सं०
	(पूर्वार्द्ध)	
१	किमधिकम्	१
२	विषय प्रवेश	२
३	अष्टाध्यायी—१ संज्ञा सूत्र	३
४	सकर्मक, अकर्मक	६
५	तिङ्सुप्—अङ्गसंज्ञा—१ धातु—२ प्रातिपदिक	७
६	१ अव्युत्पन्न २ व्युत्पन्न लक्षण ३ कृत् संज्ञा ४ तद्धित संज्ञा ५ स्त्री प्रत्यय	८
७	धातुज शब्द—सार्वधातुक—आर्द्धधातुक—२ परिभाषा सूत्र ३ विधिसूत्र	९
८	४ नियम सूत्र ५ अतिदेश सूत्र	१०
९	६ अधिकार सूत्र—निषेध सूत्र—उपविधि सूत्र—व्याकरण—प्रकृति प्रत्यय	११
१०	संस्कृत भाषा, शब्द भेद	१२
११	शिक्षायामनुबन्धाः	१५
१२	संज्ञा परिचयः	१६
१३	गण पाठ	१८
१४	अक्षर विज्ञान सूत्र	२३
१५	शिव सूत्र—प्रत्याहार	२४
१६	पद ज्ञान	२९
१७	विभक्त्यर्थ	४५
१८	संज्ञा सूत्र विभक्ति विधायक सूत्र	४७
१९	समासः—अव्ययीभावः—तत्पुरुषः	४८
२०	कर्मधारयः	४९
२१	बहुव्रीहिः	५०
२२	द्वन्द्वः	५१

२३	सन्धि—सन्धिविचार	५३
२४	अपवाद	५५
२५	व्यञ्जन (हल्) सन्धि	५६
२६	विसर्ग सन्धिः	५९
२७	लिङ्गानुशासनम् (स्त्री प्रत्यय प्रधानम्)	६१
२८	तद्धित	६३
२९	उपसर्ग निपात	६८

(उत्तरार्द्ध)

३०	तिङन्त	६९
३१	सार्वधातुक रूप	७२
३२	भ्वाद्यादि १० गणी रूप	७३
३३	आर्द्धधातुक प्रत्यय	९०
३४	भाव कर्म-वाच्यम्	९९
३५	आत्मनेपदे सार्वधातुक रूपम्	१०२
३६	आत्मनेपदे आर्द्धधातुक रूपम्	१०९
३७	धातु से धात्वन्तर बनाने का प्रकार	१११
३८	नामधातु प्रकरण	११२
३९	कृदन्त-प्रकरण	११३
४०	पाणिनीय प्रदीपान्तर्गता व्याख्या युक्ता सूत्र सूची	१२१

किमधिकम्

यद्यपि बहुनाधीषे, पठ पुत्र तथापि व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो माभूत, सकलः शकलः सकृच्छकृत ॥

व्याकरण शास्त्रकी यह महत्ता है कि, उसके ज्ञानसे शब्दके वास्तविक रूप और उसके अर्थका यथावत् वोध हो जाता है। इसीलिये व्याकरणके अध्ययनको प्राथमिकता दी गई और बच्चोंके लिये इसका ज्ञान अनिवार्य माना गया।

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'—का पालन करते हुए पाणिनिने पूर्ववर्ती विचारों, और विवेचनाओंको क्रमिक, तार्किक और वैज्ञानिक व्यवस्थित रूप देते हुए अष्टाध्यायीका निर्माण किया। पाणिनिने अपनी सूत्रकलाके प्रकाशसे विश्वको संस्कृत मय करते हुए सर्वदाके लिये देदोप्यमान कर दिया।

म० म० डा० श्री गोपाल शास्त्री 'दर्शन केशरी' अध्यक्ष काशी पण्डित सभा वाराणसी एवं तपोनिष्ठ विद्वद्वर्य श्री विजय प्रकाश शर्मा प्रधानाचार्य श्री सा. वे. वि. जैसी विभूतियोंने पाणिनि प्रणालीको जन-मनमें भर देनेके लिये विविध प्रकारके सरल सुवोध ग्रन्थोंका सर्जन किया। देश इनका आभारी है। उनमें 'दर्शन केशरी' जोकी सरल, सुगम कृति 'पाणिनीय प्रदीप' (हिन्दी संस्करण) आज हमारे सामने सूर्यका काम करती है। वाल वृद्ध विद्यार्थी थोड़े परिश्रमसे ही सूत्रार्थं जाननेमें सफल हो जाते हैं।

इसके साथ-साथ हम श्री रामचन्द्र कपूर (६।२ रेलवे कालोनी किशन गंज दिल्ली) की संस्कृत साहित्य प्रियताको कदापि नहीं भूला सकते जिन्होंने सूत्रोंकी 'पूर्णा' नाम्नी टीका करवाकर इस संस्करण द्वारा आबाल वृद्ध छात्र वृन्दको लाभान्वित करनेका प्रयास किया है। आप संस्कृतके पूर्णज्ञाता न होते हुए भी पहले 'गीताऽमृत व्याकरण' छपवाकर संस्कृत साहित्यके प्रचार प्रसारका कार्य कर चुके हैं। आपके संस्कृत प्रेमका ही फल है जो यह 'पाणिनीय प्रदीप' हमारे हाथोंमें है। हमें पढ़कर एवं लाभ उठाकर श्री कपूर साहबको एवं उनके परिवारको शुभ कामनाएं प्रदान करनी चाहिये।

विदुषामनुचरः

राम प्रकाश शर्मा

विषय-प्रवेश

विश्व भरकी समस्त प्राचीन भाषाओंमें संस्कृतका सर्वप्रथम और उच्च स्थान है। विश्व साहित्यकी पहली पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषाका देदीप्यमान रत्न है। संस्कृत वाङ्मयका अध्ययन किये बिना भारतीय संस्कृतिका रहस्य कैसे जाना जा सकता है? किसी भी भाषाकी सुरक्षा एवं उसके मौलिक ज्ञानके लिये व्याकरणकी परमावश्यकता सर्व-मान्य है। व्याकरणके बिना भाषा अपूर्ण रहती है। इसलिये संस्कृत भाषाको व्याकृत करनेके लिये देवराजइन्द्रने सर्वप्रथम व्याकरणकी रचना की। व्याकरण रचनाकारोंकी परकोटिमें पाणिनिका नाम आता है। उनकी अष्टाध्यायीमें आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, और स्फोटायन नामके दस व्याकरणप्रवक्ताओंका उल्लेख हुआ है। किसी कारणसे उनके व्याकरण लुप्त होते चले गये। अन्तमें पाणिनि व्याकरणने विश्वके समस्त व्याकरणोंमे श्रेष्ठ सर्वाङ्गपूर्ण मान्यस्थान प्राप्त किया। किन्तु आज पाणिनि पद्धतिसे संस्कृत पढ़ना पढ़ाना कठिन है। क्योंकि यह पद्धति उस समयकी है। जब यहां संस्कृत-भाषा मातृ-भाषा थी। आज कठिनाई यह है कि संस्कृत जानता हो तो पाणिनि-व्याकरण पढ़े और पाणिनि-व्याकरण पढ़े तब संस्कृत जाने। यही अन्योन्याश्रय दोष-भरी भावना पाणिनि-व्याकरणको हजम करना चाहती है। अतः वे दोष दूर करने हेतु श्रीरामचन्द्र कपूर साहबके सुझावानुरूप इस पुस्तकमें पूर्ण प्रयास किया गया है। इसमें कितनी सफलता मिली, यह तो अध्ययनशील विद्यार्थी ही बता सकेंगे।

यह संसार द्वन्द्वमय है शक्ति-शक्तिमान्, शक्ति-शिव, माया-ब्रह्म, स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन, रात-दिन इत्यादि। इसी तरह धातु-तिङ्, प्रातिपदिक-सुप्, नाम-नामिन्, प्रकृति-प्रत्यय, ये भी दो आपसमें ऐसे मिले हुए हैं कि इनका परस्पर भेद नही मालूम पड़ता।

संस्कृत शब्द तो प्रधानतया धातुसे बनाया जाता है। शब्दसे भी शब्द बनते हैं। पर पद धातुसे बनेंगे और शब्दसे भी। जब धातुसे पद बनायेंगे तब धातुसे परे तिङ् प्रत्यय लगायेंगे। जब शब्दसे पद बनायेंगे तब धातुसे कृत् प्रत्यय करके प्रातिपदिक (कृदन्त) बनालेंगे।

तब पद बनाने के लिये उसके परे सुप् प्रत्यय लगायेंगे ये ही दो तिङ् और सुप् प्रधान प्रत्यय हैं। अन्य जो कृत्-तद्धित और स्त्री प्रत्यय हैं वे शब्द (प्रातिपदिक) ही बनायेंगे। अतः वे गौण प्रत्यय हैं। संस्कृत वाक्योंमें पदका ही प्रयोग होताहै, शब्दका नहीं। पद बनानेमें धातु (प्रकृति) में तिङ् प्रत्यय लगते हैं और प्रातिपदिक शब्दमें सुप्। दोनों प्रत्ययवाली प्रकृति ही पद कहलाती है। 'सुप्-तिङन्तं पदम् १।४।१४।' तिङ् १८ और सुप् २१ होते हैं।

अष्टाध्यायी—पाणिनिने अष्टाध्यायी (अष्टक) शब्दानुशासनका सर्जन किया है। उसमें ८ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायके ४-४ पाद हैं। पाणिनिके लिखे संस्कृत नियमोंको सूत्र कहते हैं।

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

सूत्र थोड़े अक्षर वाला, निःसंदिग्ध, गंभीर अर्थ सूचक होता है। वह ६ प्रकार का है।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अति-देशोऽधिकारश्च षड् विधं सूत्रलक्षणम्॥

१ संज्ञा सूत्र — शक्ति-नियामकम्' वा 'संज्ञा-संज्ञि-सम्बन्धबोधकम्संज्ञा-सूत्रम्' अर्थात् शब्दमें रहनेवाली शक्तिका बोध कराने वालेको संज्ञा सूत्र कहते हैं या संज्ञा और संज्ञीके सम्बन्धको बताने वाला संज्ञा सूत्र होता है।

पाणिनिने अष्टाध्यायीमें संज्ञासूत्र इस तरह लिखे हैं—'वृद्धिरादैच् १।१।१' ('वृद्धिः १।१' 'आत् १।१' 'ऐच् १।१') आ, (आर्, आल्) ऐ, औको वृद्धि संज्ञा है। वृद्धि शब्द मंगल वाचक होनेके कारण विधेय होता हुआ भी उद्देश्यकी जगह लिखा गया है और अष्टाध्यायीके पहले सूत्रमें पहले पढ़ा गया है। इसमें पढ़ने वालोंको वृद्धिकी मंगलकामना निहित है।

पाणिनिने अपने अष्टकमें अनुबन्धोंको *इत् संज्ञा की है। उसके लिये बड़े अच्छे क्रमसे संज्ञा सूत्र सजाये हैं। जैसे—

---

*टिप्पणी—इत्संज्ञा-योग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्—अनुबन्ध उन (अल्) अक्षरोंको कहते हैं जो धातु या प्रत्ययोंमें किसी प्रयोजनके लिये लगाकर इन्हीं सूत्रोंसे इत् संज्ञा करके 'तस्य लोपः १।३।९' से निकाले जाते हैं। इत्का अर्थ हो चले जाने वाला है।

उपदेशेऽजनुनासिक			इत्	१।३।२	(भवति)
,,	हलन्त्यम्[१]		,,	१।३।३	,,
,,	आदिर्ञिटुडवः[२]		,	१।३।५	(भवन्ति)
,,	,,	षः प्रत्ययस्य[३]	,,	१।३।६	(भवति)
,,	,,	चुटू[४]	,,	१।३।७	(भवतः)
,,	,,	लशक्वतद्धिते[५]	,,	१।३।८	(भवति)
,,	,,	तस्य (इतः) लोपः		१।३।९	,,

उपरोक्त ६ सूत्र इत्संज्ञक रूपी कूड़ेके निर्देशक हैं और 'तस्य लोपः' उस कूड़ेकी सफाई करता है।

'न विभक्तौ तुस्माः १।३।४' यह सूत्र हलन्त्यम् का निषेध करता है। 'विभक्तौ अन्त्याः तुस्माः न इतः' विभक्तिके अन्तमें रहनेवाले तवर्ग, सकार, मकार इत् नहीं होंगे। इन्हीं सूत्रोंसे समस्त धातुओं व प्रत्ययोंमें लगे हुए अनुबन्ध इत् संज्ञा करके निकाले जाते हैं।

इस इत् संज्ञा प्रकरणमें 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२' सर्वप्रथम सूत्र है। पदच्छेद--उपदेशे ७।१ अच् १।१ अनुनासिक इत् १।१ उपदेशेअनुनासिकः अच् इत्संज्ञः स्यात्। (उपदेशमें अनुनासिक अच्की इतसंज्ञा होती है)। इस सूत्रमें उपदेशका अर्थ आद्योच्चारणम् है। प्रत्यासत्तिन्यायसे (सान्निध्यसे) पाणिनिका व्याकरण सम्बन्धी आदि उच्चारण ही उपदेश पदसे लिया जायगा।

पाणिनि-अष्टाध्यायीका सूत्रक्रम देखनेसे यह पता लगता है कि उनका, आदि उच्चारण धातु पाठ है। उन्होंने प्रथम अध्यायके तृतीय पादका प्रथम सूत्र 'भूवादयो धातवः १।३।१' लिखा है। उसके बाद 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' आदि इत्संज्ञा सूत्र हैं। उन्होंने धातु पाठको दस विकरण भेदसे दस जगह विभक्त कर दस गणकी संज्ञा प्रदान की है। वे १० दस विकरण यों हैं—

(१) शप् (२) लुक् (३) श्लु (४) श्यन्
(५) श्नु (६) श (७) श्नम् (८) उ
(९) श्ना और (१०) शप् (णिच्के बाद)।

---

१. उपदेशमें अन्त्य हल् इत् होता है।
२. ,, आदिमें रहने वाले ञि टु और डु इत् होते हैं।
३ ,, प्रत्ययका आदि ष इत् होता है।
४ ,, प्रत्ययके आदिमें चवर्ग टवर्ग इत् होते हैं।
५ ,, ,, ,, तद्धित भिन्न ल, श, कवर्ग इत् होते हैं।

ये १० गण ये हैं :

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च ।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादि क्रीचुरादयः ॥

(१) भ्वादिगण	(२) अदादिगण	(३) जुहोत्यादिगण
(४) दिवादिगण	(५) स्वादिगण	(६) तुदादिगण
(७) रूधादिगण	(८) तनादिगण	(९) क्रयादिगण
(१०) चुरादिगण		

इन सभी गणोंका प्रारम्भ यथा नाम तथा गुण है। भू धातुसे प्रारम्भ होने वाला भ्वादिगण, अद धातुसे अदादिगण आदि--पाणिनिने धातु संज्ञा करने--वाले दो सूत्र लिखे हैं –

प्रथम सूत्र 'भूवादयो धातवः १।३।१' है। दूसरा 'सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२ है। भू आदि शब्दोंका जब सत्ता आदि अर्थ कहा जाय तब धातु संज्ञा होगी। लोकमें अथवा वेदमें धातुका प्रयोग करनेके लिये पाणिनिने दस लकारोंका निर्माण किया। अइउण् ऋऌक् एओङ् इन सूत्रोंके आधार पर लकार इस प्रकार हैं--

(१) लट्	(२) लिट्	(३) लुट्	(४) लृट	(५) लेट्
(६) लोट्	(७) लङ्	(८) लिङ्	(९) लुङ्	(१०) लृङ्

इन लकारोंमें लेट् लकारको शुद्ध वैदिक लकार माना जाता है।

अन्य नव लकारोंमें, लिङ्के दो भेद—विधिलिङ् आशीर्लिङ् करके —भिन्न-भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त किया गया है।

१--लट् = वर्तमानकाल
२—लुङ्=सामान्य भूत (अद्यतन भूत)
३--लङ्=अनद्यतन भूत (बीते कलसे पहले)
४--लिट =परोक्ष अनद्यतन भूत (बहुत पीछे बीत गया और देखा भी नहीं गया)
५—लृट्-सामान्य भविष्यत् (अभीसे आगामी)
६—लुट्-अनद्यतन भविष्यत (आगामी कलसे आगामी काल)
७—विधिलिङ् (सम्भावना)
८—आशीर्लिङ् = आशीर्वादके अर्थमें
९—लोट्—आज्ञाअर्थमें
१०-लृङ् लकार हेतु हेतुमद्भाव (शर्त) क्रियातिपत्ति अर्थमें

पाणिनिने उक्त प्रकारसे कालका सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान करानेके लिये लकारोंका भेद किया है। जैसे—भूतकालको तीन भागमें बाँटा है—

१—लिट्— बहुतों वर्ष पहले का भूतकाल—रामो राजा बभूव (राम राजा हुआ)।
२— एक दिन पहलेके भूतकालमें लङ् लकारका प्रयोग होता है। स ह्योऽभवत् (वह कल हुआ)।
३—एक मिनट पहलेके भूतकालमें लुङ् लकारका प्रयोग होता है सोऽभूत् अधुनैव (अभी वह हुआ है)।
४—अभीसे भविष्यमें लृट् लकार होता है। अधुनैव स गमिष्यति (अभी वह जायगा)
५—अगले दिनसे लुटका प्रयोग होता है। श्वेभविता राज्यभारः कुमारस्य (कल से कुमार पर राज्य भार पड़ेगा)
६—सम्भावनामें विधिलिङ्—अपि अध्यापकः पाठयेत्। (शायद अध्यापकजी पढ़ावे)
७—आशीर्वाददेनेमें आशीर्लिङ्—विद्वान् भूयाः (विद्वान् होवो)
८—आज्ञादेनेमें लोट द्रुतं गच्छे (जल्दी जाओ)
९—शर्त लगाकर कहनेमें (क्रियातिपत्तिमें) लृङ्—यदि आगमिष्यस्तर्हि अभोदयः (यदि तुम आते तो भोजन कर लेते) यह भूत भविष्यत् दोनोंमें होता है।
१०—लट् तो वर्तमान कालमें होतीही है।

सकर्मक अकर्मक—पाणिनिने कर्ता, कर्म और क्रियाका विवेचन करनेके लिये धातुके दो भेद किये हैं १—सकर्मक २—अकर्मक। अकर्मकका लक्षण—

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धिक्षय-भय-जीवित-मरणम्।
शयन क्रीडा रुचि दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मक माहुः॥

लज्जा, सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, क्षय, भय जीवन, मरण, शयन, क्रीडा, रुचि, चमकना आदि अर्थवाले धातु अकर्मक होते है। सकर्मकका लक्षण—

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्।

अर्थात् जहाँ पर क्रिया पद कर्ता पदसे युक्त हो और किम् शब्दकी आकांक्षा उठ रही हो। उसी धातुको सकर्मक कहते हैं। इससे भिन्न धातु अकर्मक कहलाता है जैसे—रामः पठति (राम पढ़ता है) यहाँ पर किम् शब्दकी अकांक्षा है। क्या पढ़ता है? अतः पठ धातु सकर्मक हुआ। अर्थात् कर्म वाला धातु।

तिङ्सुप्--इसी प्रसंगमें पाणिनिने तिङ् प्रत्यय (प्रत्याहार को) सूत्र रूपमें कहा है जैसे—तिप्तस्झि सिप्थस्थ मिब्वस्मस् तातांझ थासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८

		एक वचन	द्विवचन	बहु वचन
परस्मैपद	प्रथम पु०	तिप्	तस्	झि
	मध्यम पु०	सिप्	थस्	थ
	उत्तम पु०	मिप्	वस्	मस्
आत्मनेपद	प्रथम पु०	त	आताम्	झ
	मध्यम पु०	थास्	आथाम्	ध्वम्
	उत्तम पु०	इट्	वहि	महिङ्

तिङ् प्रत्याहारके अन्तर्गत अठारह इन तिबादियोंमें नवकी परस्मैपद संज्ञा एवम् बादके नवों तङ्की आत्मेनेपद संज्ञा की गयी है।

अङ्गसंज्ञा—अङ्ग संज्ञाका सूत्र है। 'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्येऽङ्गम् १।४।१३' जिससे प्रत्यय होता है। उस प्रत्ययके परे रहते प्रत्यय लाने वाले शब्दस्वरूप और तदादि भी--(वह जिसके आदिमें हो ऐसा उसका बढ़ा रूप भी) अङ्ग कहलाता है। इसी संज्ञाको प्रकृति भी कहते है जैसे भू धातु रूप मूल प्रकृतिसे ति प्रत्यय ले आने पर भू + ति के बीचमें शप् विकरण प्रत्यय लगाकर भू + अ ति भूको अङ्गमानकर गुण करके भो + अति = ओका अव् करके भवति बना। इसीको जब भव + मि बनावेंगे, तब भी भवको अङ्ग मानकर "अतोदीर्घोयञि ७।३।१००" से दीर्घ करके भवामि बनाते है। यहाँ भू अङ्ग है। उसीका बढ़ा रूप भव भी अङ्ग है। इसी प्रकार राजन् शब्दसे औ प्रत्यय लाये तो राजन् औ दीर्घ होने पर राजान् + औ है। तो पाणिनि कहते है कि राजन् शब्द ही राजान् हुआ है अतः वह भी अङ्ग है।

१. धातु २ प्रातिपदिक--धातु संज्ञा 'भूवादयो धातवः' इस सूत्रका विवेचन पहले कर चुके है। पाणिनिने धातु संज्ञा करनेके लिये एक दूसरा सूत्र भी रखा है। 'सनाद्यन्ता धातवः' ३।१।३२ अर्थात् १. सन् २. क्यच् ३. काम्यच् ४. क्यङ ५. क्यष् ६. क्विप् ७. णिच् ८. यङ् ९. यक् १०. आय ११. इयङ् १२. णिङ इन प्रत्ययों में से कोई भी जिनके अन्तमें लगा हो वे भी सनादि १२ प्रत्ययान्त शब्द-रूप धातु कहाते हैं। एक मूल धातु भू आदि तथा दूसरा जिनके मूलमें धातु या प्रतिपादिक हो उनमें इन बारहों प्रत्ययोंमें से यदि कोई प्रत्यय लगा रहेगा वे भी। जैसे--जुगुप्स, भावि (प्रातिपादिकसे धातु) पुत्रीय इत्यादि। इसी तरह प्रातिपदिक भी दो प्रकारके होते हैं--एक अव्युत्पन्न दूसरा व्युत्पन्न।

१. अव्युत्पन्न 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५' अर्थात् धातु प्रत्यय और प्रत्ययान्तको छोड़कर अर्थवाले शब्द-स्वरूपकी प्रातिदिक संज्ञा होती है। अव्युत्पन्न प्रातिपदिक वह शब्द कहलाता है जिसमें प्रकृति-प्रत्ययका विवेचन न हो सके। जैसे--कल्लट, मम्मट, जैयट आदि।

२. व्युत्पन्नका लक्षण--जिनमें प्रकृति-प्रत्ययका अलग अलग रूपसे विवेचन मिलता है--जैसे--'कृत्तद्धित-समासाश्च १।२।४६' अर्थात् कृत्प्रत्ययान्त तद्धित प्रत्ययान्त शब्द-स्वरूप तथा समास हुए शब्दोंकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। ऐसे सभी शब्द = धातु और प्रादिपदिक प्रकृति कहे जायेंगे।

प्रत्यय ५ प्रकारके होते हैं : (१) सुप् (२) तिङ् (३) कृत् (४) तद्धित (५) स्त्री प्रत्यय।

१—सुप् संज्ञा सु औ जस् (प्रथमा) इत्यादि कण्ठ कीजिये।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	"	भ्यस्
पंचमी	ङसि	"	"
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	"	सुप्

सूत्र—'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योःसुप्' ४।१।२

२—तिङ् प्रत्ययोंको पहले हम बता चुके हैं।

३—कृत् संज्ञा 'कृदतिङ् ३।१।९३ यह सूत्र 'धातोः ३।१।९२' के अधिकारमें हैं। अतः धातुसे विधान किये गये तिङ् भिन्न प्रत्ययोंकी कृत्संज्ञा होती है। अर्थात् तिङ्को छोड़कर तीसरे अध्याय तक जितने भी प्रत्यय है, वे सभी कृत् है।

४—तद्धित संज्ञा—'तद्धिताः ४।१।७६' सूत्रके आगे पांचवें अध्यायके अन्तिम सूत्र 'प्रवाणिश्च ५।४।१६०' तक जितने भी तद्धित है। वे सभी प्रत्यय कहाते हैं।

५—स्त्री प्रत्यय—स्त्रियाम् ४।१।३ इस सूत्रके आगे जितने भी प्रत्यय हैं वे जिन शब्दों में लगे रहेंगे वे सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग कहे जायेंगे। जैसे--अश्व (पु०) अश्वा (स्त्री०) कुमार (पुं०) कुमारी (स्त्री०) रूद्र (पुं०) रुद्राणी (स्त्री०) हिम (पुं०) हिमानी (स्त्री०)। इसी तरह सभी शब्दों में प्रत्ययों को लगा कर स्त्रीलिंङ्ग शब्द बनाये जाते हैं।

धातुज शब्द—यहाँ जान लेना आवश्यक है कि, निरुक्तकार और शाकटायन आचार्य कहते है कि सभी शब्द धातुज हैं। अर्थात् धातुसे ही बने हुए हैं। 'धातुमूलं जगत् सर्वम्।'

निरुक्तकारों में एक मात्र गार्ग्य और सभी वैयाकरण कहते है कि शब्द व्युत्पन्न अव्युत्पन्न दो प्रकारके हैं। जो धातुज हैं वे ही व्युत्पन्न हैं। जो शब्द धातुज नहीं है वे अव्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं। इसी कारण पाणिनिने प्रातिपदिक संज्ञाके लिये दो सूत्र लिखे हैं।

सार्वधातुक-आर्द्धधातुक--'तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३' धातुके आगे होने वाले तिङ् अठारह प्रत्यय और शित् (शप्) (श्नु) (श्नम्) (श्ना) (शतृ) (शानच) (चानश्) (श्विप्) आदि प्रत्यय सार्वधातुक कहते हैं। 'आर्धधातुकं शेषः ३।१।११४' उक्तादन्यः शेषः अर्थात् तिङ् और शित्को छोड़कर धातुओंसे परे होने वाले सभी प्रत्यय आर्धधातुक हैं। सार्वधातुकका लौकिक अर्थ है कि सभी धातुओंके साथ रहने वाला। आर्द्धधातुक कुछ ही धातुओंमें लगने वाला। यह ठीक ही है तिङ् प्रत्यय तथा शित् प्रत्यय प्रायः सभी धातुओंमें लगते हैं किन्तु इट् आदि आर्धधातुक प्रत्यय सभी धातुओंमें नहीं लगते। अतः व्याकरण शास्त्रमें धातुओंके साथ सेट् वेट् तथा नेट् (अनिट्) व्यवहार किया जाता है इत्यादि।

२--परिभाषा सूत्र—'अव्यवस्थायाम् व्यवस्था-सम्पादकम् सूत्रं परिभाषासूत्रम्'—अर्थात् जहां कहीं विधिप्रभृति सूत्रोंमें अव्यवस्था ज्ञात हो वहां व्यवस्था कर देना परिभाषा सूत्रका काम है।

जैसे--इको गुणवृद्धी १।१।३—जिस सूत्रमें वृद्धि या गुण शब्द उच्चरित हो वहां 'इकः' यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित हो जाता है। अर्थात् गुण और वृद्धि इक् प्रत्याहारके स्थानमें ही होते हैं। जैसे;—'सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४' यह सूत्र 'अङ्गस्य ६।४।१' के अधिकारमें है और इसमें 'मिदेर्गुणः ७।३।८१' से गुण आता है। सूत्रका अङ्गस्य गुणः सार्वधातुकर्यधातुकयोः ऐसा स्वरूप हो गया। अब यहां गुणः शब्द सुनायी दे रहा है। तो इक् यह षष्ठ्यन्त पदभी स्वतः उपस्थित हो जायगा, 'येनविधिस्तदन्तस्य १। ।७२' इस परिभाषाके बलसे इक्में अन्त शब्द लग जायगा तो सूत्रका 'सार्वधातुकार्धातुकयोः परयोः इगन्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति,' ऐसा ही अर्थ होगा। विधिसूत्रको मदद देने वाले परिभाषा सूत्र कहलाते है। सूत्रोंसे ध्वनित एवम् वचन रूपसे भी पढ़ी हुई परिभाषाएँ हैं जोकि इसी तरह विधि सूत्रोंकी सहायता देती है

३—विधिसूत्र–विधिसूत्र–'आदेशागमादि विधायकम् सूत्रम् विधिसूत्रम्' अर्थात् विधिसूत्र वे कहलाते हैं जो किसी आदेश आगम आदि रूप कार्यका विधान

करें। जैसे 'इकोयणचि ६।१।७७' संहितायाम् ६।१।७२ का अधिकार आता है तो अर्थ बनता है--अचि संहितायाम् इकः स्थाने यण् स्यात् अर्थात् अच् परे रहने पर संहितोंके विषयमें इक्के स्थानमें यण् होता है। यह सूत्र यण्का विधान करता है। अतः विधि सूत्र है। पाणिनिने अष्टाध्यायीमें विधिसूत्र ही अधिक लिखे हैं। पाणिनिके मतमें शब्द नित्य है तो इक् स्थाने यण् स्यात् अर्थात् इक्के स्थानमें यण्का आदेश होता है यह संगत नहीं हो सकता। अतः इस सूत्रमें पाणिनिका हृद्गत भाव बुद्धि-विपरिणाममें है अर्थात् अच् परे रहने पर संहिताके विषयमें इक्के उच्चारणकी जगह पर यण् का उच्चारण करना चाहिये।

४—नियम सूत्र-'सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते' अर्थात् कोई कार्य स्वतः पूर्व सूत्रोंसे सिद्ध हो। पुनः उसी कार्यका दूसरे सूत्रसे विधान करना नियम कहलाता है। तात्पर्य है कि नियमसूत्र विधिसूत्रको (नियमित) (सकुचित) करते हैं। जैसे--वान्तोयि प्रत्यये ६।१।७६ इस सूत्र में (यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे) इस वार्तिकसे यिका अर्थ यादौ हो जाता है। इसलिये सूत्रका अर्थ 'यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोः अव् आव् आदेशौ स्तः।' अर्थात् यकारादि प्रत्यय परे रहने पर ओ औका अव् आव् आदेश होता है। जैसे-गो + यम्, नौ + यम्, यहाँ यकारादि प्रत्यय यम्के परे रहने पर गकरके ओका अव् और नकारके औका आव् आदेश हो जानेसे गव्यम्, नाव्यम् प्रयोग बना। ये सूत्र जैसे गव्यममें नाव्यमृत लगा, वैसे ही 'ओ + यते, औ + यत' पर भी लग जाना चाहिये। किन्तु 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' ६।१।८० सूत्रसे नियमित हो जानेके कारण नहीं लगता। संगति इस प्रकार है कि, पाणिनिने यादि प्रत्ययके परे रहने पर ओ औका अव् और आव् आदेशका विधान वान्तोयि प्रत्यये ६।१।७६ से किया है पुनः 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' ६।१।८० सूत्रका अर्थ किया कि यादि प्रत्ययके परे रहने पर धातुके एच्का यदि वान्तादेश हो तो प्रत्यय निमित्तक ही एच्का, दूसरेका नहीं। जैसे—लव्यम्, आवश्य लाव्यम् यहाँ लू + यम् = लो + यम् = लव्यम, आवश्य + लू + यम् = आवश्यलौ + यम् = आवश्य लाव्यम्। यहाँ प्रत्यय निमित्तक ओ औका अव् आव् तो हो गया। पर ओयतेमें ओका अव् और औयतमें औका आव् नहीं होगा। चूंकि यह ओ औ 'य' मानकर नहीं हुआ है। किन्तु आ उ मिलकर ओ औ बना है। जैसे--वेञ् धातुसे कर्म वाच्यमें यक् प्रत्यय करने पर सम्प्रसारण करने पर लट्में ओयते। लङ्में आट्के साथ वृद्धि होनेसे औयत बनता है। इस तरह नियम सूत्र पूर्व विधिकी सार्वत्रिक प्रवृत्तिका निषेध करते हैं।

५--अतिदेश सूत्र--जो आदेश और स्थानीमें अभेद सम्बन्धकी स्थापना करते हैं वे ही अतिदेश सूत्र हैं। जैसे-'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५६' अर्थात्

आदेश स्थानी जैसा ही होता है, अल्विधिको छोड़कर। लोक दृष्टिमें इसे यों समझा जा सकता है भारतके प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरूका स्वर्गवास होने पर श्री लालबहादुर शास्त्रीको प्रधानमंत्री बनाया गया। उनके प्रधानमंत्री होने ही नेहरू जीके समस्त स्थानी अधिकार उन्हें सौंप दिये गये, निजी संपत्ति नहीं। इस तरह शास्त्रमें भी जो जिसके स्थान पर आता है, वही उसके समस्त अधिकारोंको प्राप्त करताहै, निजीसम्पति नहीं पाता। जैसे--राम शब्दसे चतुर्थीका एकवचन ङे विभक्ति लाने पर राम+ङे ऐसी स्थितिमें 'ङेर्यः ७।१।१३' सूत्रसे ङे के स्थान पर य आदेश होता है। ङे सुप् होनेके कारण उसके स्थानमें हुआ य भी 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' के द्वारा सुप् कहलायगा। (निजी संपत्ति नहीं पायेगा, यानी य ङे नहीं माना जायगा, क्योंकि अनल्विधौ--निषेध है) इस तरह अतिदेश सूत्रको भली भाँति समझ लेना चाहिये।

६. **अधिकार सूत्र**--'स्वदेशे फलशून्यत्वे सति उत्तरोत्तर फल जनकत्वम्' अर्थात् जो अपनी जगह कुछ फल न दे सके और आगेके सूत्रमें जाकर अपना अर्थ समर्पण करे, उसे अधिकार सूत्र कहते है। शास्त्रोंमें ये सूत्र लोकके साधुओंके समान कार्य करते हैं। पाणिनिने कहा है कि 'स्वरितेनाधिकारः १।३।११' अर्थात् जिस सूत्रके पद-पर स्वरित चिह्न होगा वही सूत्र या पद अधिकारकी शक्ति प्राप्त करेगा। इस तरह ६ प्रकारके सूत्रोंका विवेचन करनेके बाद निषेध सूत्रका भी विवेचन ध्यानमें आताहै।

निषेध सूत्र--वही है जोकि पूर्व सूत्रके कार्यको रोकता है। जैसे-'न विभक्तौ तुस्माः १।३।४' यह सूत्र विभक्तिमें स्थित तवर्ग, सकार, मकारकी, इत् संज्ञाका निषेध करताहै। ऐसे ही अन्य निषेध सूत्र अन्य सूत्रोंके विधानमें सहायता करते हैं।

उपविधि सूत्र-विधि सूत्रमें सहायता करने वाले उपविधि सूत्र कहाते हैं। जैसे-- 'तथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०' यह सूत्र 'एचोऽयवायावः' विधिसूत्रके विधानमें क्रमशः होनेका विधान करताहै। इसलिये यह उपविधि सूत्रहै। विधिसूत्रमें ही इनके अन्तर्भाव करके वैयाकरण ६ प्रकारके सूत्र मानते हैं।

सूत्रोंके भेदोंकी व्याख्या समाप्त कर उक्त क्रमसे आवश्यक व्याकरण आदि संज्ञाका भी विवेचन करतेहैं।

व्याकरण--'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेन तद् व्याकरणम्' अर्थात् जिससे शब्दोंकी व्युत्पत्ति (प्रकृति-प्रत्यय द्वारा) की जाय उसे व्याकरण कहते हैं।

प्रकृति-प्रत्यय--पाणिनिने अपने व्याकरण शास्त्रमें प्रत्ययोंका विशेष सूत्रों द्वारा विधान कियाहै। एवम् प्रत्यय संज्ञाका भी प्रत्ययः ३।१।१ अधिकार सूत्रके द्वारा

विधान कियाहै । प्रकृतेः पश्चात् प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । इस व्युत्पत्तिके द्वारा प्रकृति + प्रत्यय का यौगिक अर्थभी बताया है । प्रत्ययका स्थान प्रकृतिके बाद होता है उसके लिये 'परश्च३।१।२' सूत्रहै । 'प्रकृत्याशिषि६।३।८३' 'प्रकृत्याभगालम्६।२।१३७' इत्यादि सूत्रोंमें प्रकृति शब्द स्वतः निकल पड़ा है और इन सूत्रोंके अर्थका विवेचन समझने पर प्रत्यय प्रकृतिसे परे होते हैं। यह बात और भी स्पष्ट करनेके लिये वार्तिककारने भी दो वार्तिक बनाये हैं 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' 'प्रकृति-प्रत्ययार्थयोः समान-जातिमत्वम् एवेष्यते' इससे जाना जाता है कि उस समयकी प्रकृति स्वतः ही संस्कृतिमय थी । प्रकृति-प्रत्यय ज्ञान सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध था । इसलिये पाणिनिने सर्वप्रथम शब्दका मूल प्रकृति धातुका पाठ पहले किया ।

संस्कृतभाषा--यह मान लेना अति आवश्यक होगा कि, प्रकृति प्रत्ययके संस्कारसे ही संस्कृत भाषा बनी और उसका संस्कृत नाम पड़ा ।

'वाग्वै पराच्यव्याकृताऽदत्' (तैः सं० ६।४।७) 'ताम् अखण्डा' वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृति-प्रत्यय विभागेनेन्द्रः' संस्कृतवान् इति संस्कृतम् (ऋग्भाष्यभूमिका सायणीया) । संस्कृत नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः (दण्डी)इत्यादि प्रमाणोंसे अनधिकारी विदेशी साहित्यकारोंकी कल्पना झूठी है कि प्राकृत भाषाका संस्कार करने पर संस्कृत नाम पड़ा है । उन्होंने प्राकृत भाषाके महापण्डित हेमचन्द्रका कथन नहीं पढ़ा है । 'प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवम् ततः आगमत् वा प्राकृतम्' ऐसे वक्ताओंको यह जानना चाहिये कि भाषा प्रभाव सदैव क्लिष्टसे सरलताकी ओर चलता है । इसीको भर्तृहरि वाक्यपदीयमें कहते हैं : 'दैवी वाग् व्यक्तिकीर्णयमशक्तैरभिधातृभिः १।१।१५' अतः संस्कृत शब्द बिगड़कर प्राकृत शब्द बनते हैं । वैदिक संहिता वाक्यों को प्रकृति प्रत्यय द्वारा धातु और तिङ् प्रत्ययका भेद बताकर पृथक्-पृथक् तिङन्त पद बनाये गये हैं । तथा धातु और कृत् प्रत्ययका निर्वचन कर प्रातिपादिक शब्द बनाया गया है । यों उत्तरोत्तर संस्कार कर यह भाषा सिखायी गयी इसलिये इसे संस्कृत कहते हैं । नकि विदेशियोंके कथनानुसार प्राकृतसे शुद्ध कर संस्कृत बनायी है ।

पतञ्जलिके महाभाष्यके 'अथ शब्दानुशासनम्' इस मङ्गल रूप प्रथम वाक्य से यह ज्ञात होता है कि, व्याकरण का आत्मा' 'शब्द' है ।

शब्दभेद

शब्दोंके दो भेद हैं । १. वर्णात्मक २. ध्वन्यात्मक । वर्णात्मककी संख्या ४२ है । पाणिनिने इनको इस प्रकार लिखा है । अ इ उ ण् । ऋ लृ क् । ए ओ ङ् । ऐ औ

च्, ह य व र ट्। लण्। ञ म ङ ण न म्। झ भ ञ्। घ ढ ध ष्। ज ब ग ड द श्। ख फ। छ ठ थ च ट व्। क पं य्। श ष स र। ह ल्। सर्व प्रथम इन शिव सूत्रोंको ही अभ्यर्हित (श्रेष्ठ) स्थान दिया। इसलिये आवश्यक है कि विद्यार्थी सबसे पहले अक्षर समाम्नाय शिव सूत्रोंका ज्ञान करे। इसके बाद विभक्तियोंके अर्थोंके साथ-साथ संक्षिप्त रूपसे समासोंको जान ले। अनन्तर सन्धि, लिङ्ग (स्त्री-पुरुष) और उपसर्ग निपातकी जानकारी करके सूत्रोंका अर्थ पूर्व सूत्रोंके पदोंकी अनुवृत्तिकी सहायता से अपने आप करता जाय। इसके लिये अध्यापकों को चाहिये कि वे छात्र-छात्राओंको सरल ढंगसे अधिकार और अनुवृत्तिका ज्ञान करा दें क्योंकि इन्हीं दो प्रक्रियाओंके बल पर सूत्रार्थ ढंगसे किया जा सकता है। अधिकारकी अवधि स्वयं समझनी है। पाणिनिने अधिकार सूत्रोंको सर्वाधिक पढ़ा है। जहाँ अवधिका निर्देश नहीं है, वहां अध्यापककी सहायता लेनी चाहिये। अनुवृत्ति तो छात्रोंके ही अधीनहै। वे ही अपने विवेकसे उसका ज्ञान कर सकते हैं। सूत्रमें जिन-जिन विभक्तियोंके पद हों, प्रायः उनसे भिन्न विभक्ति वाला पद ही अनुवृत्ति द्वारा लाया जाता है। प्रत्येक सूत्रमें निम्नलिखित पद देख लेना चाहिये। यदि किसी भी पदकी कमी है तो उसे लाना चाहिये।

जैसे—उद्देश्य, विधेय, निमित्त

उद्देश्य प्रायः षष्ठयन्त होता है। जैसे—'इकोयणाचिमें इकः ६।१'

विधेय प्रायः प्रथमान्त होता है। जैसे—यण् १।१

निमित्त प्रायः सप्तम्यन्त होता है। जैसे—अचि ७।१

उपरोक्त नियमानुसार ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये जैसे—'एचोऽयवायावः ६।१।७८' (अचि) इस सूत्रमें एचः ६।१ उद्देश्य है क्योंकि षष्ठ्यन्त है। अय् अव् आय् आवः १।३ प्रथमान्त विधेय है। यहाँ सप्तम्यन्त निमित्त नहीं है। ऊपरके (पूर्व) सूत्र 'इको यणचि ६।१।७७' में अचि सप्तम्यन्त हैं। उसे लेकर पूरी सूत्रार्थ वृत्ति बन जाती है। अचि एचः स्थाने अय् अव् आय् आवः स्युः। अर्थात् अच् परे रहने पर (ए ओ ऐ औ) के स्थानमें अय् अव् आय् आव् आदेश होतेहैं। हां अनुवृत्तिमें आनेवाला पद नीचेके सूत्रके अनुकूल होता जाता है। जैसे—'बहुगण वतु डति संख्या १।१।२३' सूत्रसे 'संख्या' शब्द 'ष्णान्ता षट् १।१।२४' 'डति च १।१।२५' में आता है तो षकारान्त और नकारान्त संख्या वाची शब्द षट् संज्ञक होता है। इस अर्थमें संख्या शब्द उद्देश्य (संज्ञी) बन गया, जो अपने यहाँ विधेय (संज्ञा) था। यों कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है।

अनुवृत्तिका ही दूसरा स्वरूप अपकर्ष कहाता है। अनुवृत्ति आकांक्षा रहने पर पूर्व सूत्रसे पर सूत्रमें (अष्टाध्यायी पुस्तकमें ऊपरके सूत्रसे नीचे लिखे सूत्रमें) आती

है। अपकर्ष तो पर सूत्रसे पूर्व सूत्रमें पुस्तकमें नीचे लिखे सूत्रसे ऊपर सूत्रमें लाया जाता है। जैसे—'वृद्धोयूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः १।२।६५' से एव पदका 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४' में अपकर्ष किया जाता है। तब अर्थ होता है। एक विभक्तौ यानि सरूपाणि (समानरूपाणि) दृश्यन्ते। तेषामेक एव शिष्यते, अन्ये लुप्यन्ते। अर्थात् एक विभक्तिमें जितने भी समान रूप दीख पड़ें, उनमें एक ही बचा रहता है, अन्य सभी गायब हो जाते हैं।

यों ही अधिकारका ज्ञान किया जाता है। जैसे 'लस्य ३।४।७७' यह 'अधिकार-सूत्र पादान्त चलता है। जब यह 'तिप्तस्झिसिप्थस्थ मिब्वस्मस्तातांझथासाथां ध्वमिड्वहिमहिङ् ३.४।७८' में जाता है, तब अर्थ होता है। लस्य स्थाने तिबादयः अष्टादश आदेशा भवन्ति। अधिकार अपनेसे पर सूत्रोंमें (पुस्तकमें आगेके ही सूत्रोंमें) सदैव जायगा। पूर्व सूत्रोंमें यानी पीछेके सूत्रोंमें नहीं। हां अनुवृत्तिके समान ही विभक्ति परिणाम आदि कुछ न कुछ परिवर्तन हो सकता है। जैसे—'अतोभिस ऐस् ७।१।९' में जब 'अङ्गस्य ६।४।१' जायगा तो वहाँ अतः ५।१ पञ्चम्यन्त होनेके कारण अङ्गात् हो जाता है और इसके आनेसे अतः विशेषणमें 'येन विधिस्तदन्तस्य १।१।७२' से अन्त लगाकर 'अदन्ताद् अङ्गात् भिसः स्थाने ऐस् भवति' (अदन्त अङ्गसे परे भिस् के स्थानमें ऐस् आदेश होता है) ऐसा अर्थ होता है।

'अष्टाध्यायी' या 'ऋजुपाणिनीयम्' रटकर सन्धिच्छेद करके पदच्छेद करे। बाद समविभक्तियोंको छोड़कर विषम विभक्तियोंको ही पूर्व सूत्रोंसे लेकर अर्थ करना होगा। हां यदि पूर्व सूत्रमें परसूत्रका विशेषण या विशेष्य होगा तो वह समान-विभक्तिका होता हुआ भी आता ही है। इस प्रकार जो स्वयं वृत्ति बनायी जाती है, वह जन्म भर नहीं भूलती।

उदाहरण तो पूर्वमें कह आये हैं। जैसे-'एचोऽयवायावः ६।१।७८' में 'इको यणचि ६।१।७७' का 'अचि' ही आया न 'इकः' आया न 'यण्' आया। क्योंकि यहाँ षष्ठी 'एचः' और प्रथमा 'अयवायावः' है। 'अचि' एक विषम पद सप्तम्यन्त है। जो आ गया। ऊपर उद्देश्य विधेयभाव द्वारा बताया है। यहाँ विभिक्तिके सम-विषमके द्वारा बताया है, ताकि छात्रोंको वृत्ति बनानेका संस्कार दृढ़ हो जाय।

सूत्रवृत्तिं स्वयं कुर्युरध्यायिनः, पाठनस्य प्रकारोऽयमासीन्मुनेः।
तद्विहन्त्रो पठत्प्राणहर्त्री द्रुदा, निष्क्रमा पाठरीतिर्द्रुतं हीयताम्॥

सूत्रोंके भेद बतानेके प्रसङ्गमें सूत्रार्थ (वृत्ति) बनानेका प्रकार भी बता दियाहै।

इसी तरह यदि छात्र अपने बुद्धि बलसे अध्यापककी सहायतासे सूत्रार्थ (वृत्ति) स्वयं बना लिया करें तो व्याकरण सर्वप्रिय और सरलतम हो जाय।

शिक्षायामनुबन्धाः

धातु-प्रत्ययगाः सर्व इतो ये सार्थका मताः।
अनुबन्धाः प्रदर्श्यन्ते मनागध्यायिनां कृते ॥

धातुओं और प्रत्ययोंमें होने वाले इत्संज्ञक अक्षरोंको अनुबन्ध कहते हैं। वे सभी किसी न किसी प्रयोजनके लिये होते हैं। अतः वे सार्थक होते हैं। यहां उनका उल्लेख पढ़ने वालोंके लिये थोड़ा बहुत कर दिया जाता है।

आत्मनेपद धातुओंके अन्तमें जो आकार और ङकार पढ़े गये हैं। वे अनुदात्तेत् और ङित् हैं। जिससे 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२' सूत्रसे आत्मनेपदी प्रत्यय ते इते (आते) अन्ते (अते) इत्यादि उनमें लगते हैं। परस्मैपदी धातुओंमें तो अकार उदात्तेत् हैं। अतः उनमें ति तः अन्ति (अति) प्रत्यय लगते हैं। उभयपदी धातुओंमें आकार और ञकार स्वरितेत् और ञित् हैं। जिससे उनमें क्रियाफल आत्मगामी होने पर आत्मनेपदी, परगामी होने पर परस्मैपदी दोनों प्रत्यय 'स्वरित-ञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२' सूत्रसे लगते हैं। आदित् आकार इत्संज्ञावाले धातु 'आदितश्च ७।२।१६ से निष्ठा प्रत्ययमें इट् निषेधके लिये हैं। इदित् इकार इतसंज्ञा वाले 'इदितो नुम्धातोः ७।१।५८' से नुमागमके लिये हैं। ईकार श्वीदितो निष्ठायाम् ७।२।१४ से इट् निषेधके लिये हैं। उकार 'उदितोवा ७।२।५६' से क्त्वा प्रत्ययमे विकल्पसे इट् होनेके लिये। ऊकार 'स्वरति सूति सूयति धूञ् ूदितो वा ७।२।४४ से इट् विकल्पके लिये। ऋकार 'नाग्लोपिशास्वृदिताम् ७।४।२' से उपधाह्रस्व निषेधके लिये। लृकार 'पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५ से लुङ् में च्लिके अङ् करनेके लिये। एकार 'ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५'से सिज्वृद्धि निषेधके लिये। ओकार 'ओदितश्च ८।२।४५ से निष्ठातके न करनेके लिये।

इक्-स्मरणेमें ककार अधीगर्थदयेशां कर्मणि २।३।५२' से षष्ठी-विधानार्थ। षकार 'षिद्भिदादिभ्योऽङ् ३।३।१०४' से अङ्प्रत्ययविधानार्थ। दाण्-दानेमें णकार 'दाणश्च साचेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५' से आत्मनेपद विधानार्थ। इण्-गतौ मे णकार 'इणो गा लुङि २।४।४५' से गा आदेशके किये। दाप्-लवने, दैप् शोधनेके पकार 'दाधाघ्व-दाप् १।१।२० से घुसंज्ञारोकनेके लिये। धातुओंके आदिमें टुकी इत्ञा 'ट्वितोऽथुच् ३।३।८९ से अथुच् प्रत्ययार्थ। डु 'ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८' से क्त्रि प्रत्ययार्थ। ञि 'ञीतः क्तः ३।२।१८७' से वर्तमान अर्थमें क्त प्रत्ययकरनेके लिये धातुओंके अन्तमें इर्की इत्संज्ञा 'इरितोवा ३।१।५७' से च्लिका अङ् विकल्पार्थ। तिबादि १८

प्रत्ययोंके ङ् तिङ् और तङ् प्रत्याहारार्थ तथा ङित् संज्ञार्थ। उन्हींमें पकार पित् संज्ञार्थ, जिसका ङित् न कहाकर गुण वृद्धिकराना प्रयोजन 'अनुदात्तौ सुप्पितौ ३।१।४ से अनुदात्तस्वर कराना भी। इट्की टकार 'इटोऽत् ३।४।१०६ से इट्का लिङ् लकारमे अत् कराना। सुप्का पकार भी सुप्, आप् प्रत्याहारार्थ तथा अनुदात्तस्वरार्थ। सुप् के अन्दर औट्का टकार सुट् प्रत्याहारार्थ। ङे, ङसि, ङस्, ङिका ङकार ङिद्विभक्ति संज्ञार्थ। लकारोंमें टकार टित् लकार सज्ञार्थ 'टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९ से टिके एकार करनेके लिए। ङ कार 'इतश्च ३।४।१००' से इकारलोपार्थ। तत्तल्लकारोंमे नामभेदार्थभी ट ङ अकारादि पढ़े गये हैं। शप् प्रभृति विकरणोंमें शकार 'तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३ से सार्वधातुकसंज्ञार्थं। पित् ङिन्निरोधनार्थ है। तनादिसे उ विकरण आर्द्धधातुकसंज्ञार्थ। णिच्प्रभृति घञ् प्रभृति प्रत्ययोंमे णित् ञित् तो 'अचोञ्णिति ७।२।११५ अत उपधायाः ११६ से वृद्धिकराने वास्ते। घित् 'चजोः कुघिण्ण्यतोः ७।३।५२' से कुत्वके लिये। यों ही क्त क्तवतु क्त्वाक्तिन् इत्यादि प्रत्ययोंमें कित् गुण वृद्धिनिषेधार्थ। उदित् 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ११।७०से नुमागमार्थ। योंही अनुबन्ध इत्संज्ञक अक्षर) कुछ न कुछ कार्यके लिये ही लौकिक व्याकरणमें तथा वेदमें स्वर बतानेके लिये कहे गये हैं। अनुबन्ध सहित धातु भी और प्रत्यय भी जानना चाहिये। जैसे–नन्दनका प्रकृतिप्रत्यय विभाग = टुणदि धातु+ल्युट् प्रत्यय। ऐसा करना होगा। नकि नन्द धातु + अन प्रत्यय। जैसा अंग्रेजीके बाबूलोग आजकल कालेजमें पढाते हैं। इनदोनोंमें कितना अन्तर है, यह किसी पाणिनि पद्धतिके मर्म-ज्ञातासे समझिये।

संज्ञा-परिचयः

(१) वृद्धि—वृद्धिरादैच् (१।१।१)—आ, ऐ, औ आर् तथा आल्को वृद्धि कहते हैं।

(२) गुण—अदेङ् गुण (१।१।२) अ, ए, ओ, अर, तथा अल्को गुण कहते हैं।

(३) सम्प्रसारण-(इग्यणः सम्प्रसारणम्) (१।१।४५)–य्, व्, र्, ल्,के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृका हो जाना सम्प्रसारण कहलाता है।

(४) टि—अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६४)—किसी भी शब्दके अन्तिम स्वर और यदि उसके बाद कोई व्यञ्जन हो तो वह भी 'टि' कहा जाता है, जैसे शकमें क का अकार तथा मनस्में 'अस्' 'टि' है।

(५) उपधा—अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा (१।१।६५)—अन्तिम वर्णके (स्वर या व्यञ्जनके) तुरन्त पहिले आने वाले वर्णको (स्वर या व्यञ्जनको) 'उपधा' कहते हैं।

(६) पद—सुप्तिङन्तं पदम् (१।४ १४)—सुप् और तिङ् प्रत्ययोंसे युक्त होने पर कोई शब्द पद बनता है। प्रातिपदिकमें लगने वाले प्रत्ययोंको सुप् तथा धातुओंमें लगने वाले प्रत्ययोंको तिङ् कहते हैं। राममें सु प्रत्ययसे रामः बना, यह पद हुआ। इसी प्रकार भू धातुमें तिप् आदि तिङ् प्रत्यय जोड़ने पर भवति, भवतः आदि क्रिया पद बनते हैं। इसके अतिरिक्त सु से लेकर 'उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५.४।१५१' से होनेवाले कप् तक प्रत्ययों में, सर्वनामस्थानको छोड़कर अन्य प्रत्ययोंके आगे जुड़ने पर पूर्व शब्दकी भी पद संज्ञा होती है। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१।४।१७) सूत्र हैं।

(७) शि—सर्वनामस्थानम् १।१।४२ नपुंसक लिङ्गमें जस् शस्का शि हो जाता है। वह शि सर्वनामस्थान कहाता है।

(८) सर्वनामस्थान—सुडनपुंसकस्य (१।१।४३) पुंलिङ्ग और स्त्रीलिंङ्ग प्रातिपदिक शब्दोंमें लगने वाले सुट—सु औ जस् अम् तथा औट् विभक्ति (प्रत्यय) सर्वनामस्थान कहलाते हैं।

(९) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१।४।१३)—जिस शब्दके आगे कोई प्रत्यय जोड़ा जाय, उस प्रत्ययके पूर्व सम्पूर्ण शब्द-समुदायको अङ्ग कहते हैं अर्थात् उसको एवं उसके बढ़ेस्वरूपको भी अङ्ग कहते हैं।

(१०) भ—यचि भम् (१।४।१८) सु (४।१।२) से लेकर कप् (५।४।१५१) तकके प्रत्ययोंके आगे जुडने पर पूर्व शब्द की ('पद' संज्ञा न होकर) 'भ' संज्ञा होती है यदि वे प्रत्यय यादि अजादि होवें।

(११) घु—दाधाघ्वदाप् (१।१।२०) दाप् (काटना) और दैप् (साफ करना) को छोड़कर दा और धा स्वरूप वाले धातुओंकी 'घु' संज्ञा होती है।

(१२) घ—तरप्तमपौ घः (१।१।२२)—तरप् और तमप् इन प्रत्ययोंकी 'घ' संज्ञा होती है।

(१३) विभाषा—नवेति विभाषा (१।१।४४)—जहां पर विकल्पसे होने और न होने वाले, दोनोंकी सम्भावना रहती है, वहां पर विभाषा संज्ञा होती है।

(१४) निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२६)-क्त और क्तवतु इन दोनों प्रत्ययोंकी 'निष्ठा' संज्ञा है।

(१५) संयोग—हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७)—बीचमें किसी स्वरके न रहने पर, दो या अधिक मिले हुए हल् (व्यञ्जन) 'संयुक्त' कहे जाते हैं। जैसे—भव्य शब्दमें व् और य्के बीचमें कोई स्वर नहीं आता है इसलिये वे संयुक्त वर्ण कहे जायंगे। इसी प्रकार, कार्त्स्न्य, माहात्म्य, आदिमें।

(१६) संहिता--परः सन्निकर्षः संहिता (१।४।१०९)-वर्णोंकी अत्यन्त समीपता संहिता कही जाती है।

(१७) प्रगृह्य—ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् (१।१।११)-ईकारान्त, ऊकारान्त, एकारान्त द्विवचन (सुबन्त अथवा तिङन्त) पद प्रगृह्य कहे जाते हैं। इनकी सन्धि नहीं होती।

(१८) सार्वधातुक प्रत्यय-तिङ् शित् सार्वधातुकम् (३।४।११३)-धातुओंके आगे जुड़ने वाले प्रत्ययोंमें तिङ् प्रत्यय एवं वे प्रत्यय जिनका श् इत्संज्ञक हो जाता है। (जैसे शप् शतृ शानच् आदि) सार्वधातुक प्रत्यय कहलाते हैं।

(१९) आर्द्धधातुक प्रत्यय-आर्द्धधातुकं शेषः (३।४।११४)-धातुओंसे जुड़ने वाले शेष अर्थात् सार्वधातुकके अतिरिक्त प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं।

(२०) सत्--तौ सत् (३।२।१२७)-शतृ और शानच् दोनों प्रत्ययोंका नाम सत् है।

(२१) सवर्ण- तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्--(१।१।९)-जब दो या उससे अधिक वर्णोंके उच्चारण स्थान (मुख में स्थित ताल्वादि) और आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हों तो उन्हें परस्पर 'सवर्ण' कहते हैं।

गण पाठ--पाणिनिने सूत्रोंमें एक शब्द कहकर उसके आगे आदि लगाकर जो सूत्र लिखे हैं, सर्वादीनि सर्वनामानि आदि—उनमें सर्व इत्यादि प्रथम शब्दोंके आगे कितने और शब्द हैं, इसी सूचीका नाम गण है। उनमेंसे कुछ गणों का परिचय--

सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७ सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायाम् संज्ञायाम्। स्वमज्ञाति·धनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् इति सर्वादिः।

स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७ स्वर् अन्तर् प्रातर् पुनर् सनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् पृथक् ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक् ईषत् शश्वत् जोषम् तूष्णीम् बहिस् (अधस्) समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् अद्धा सामि सना तिरस् अन्तरा अन्तरेण ज्योक् सहसा अलम् स्वधा स्वाहा बिना नाना स्वस्ति अस्ति उपांशु विहायसा दोषा मुधा दिष्ट्या वृथा मिथ्या पुरा मिथो मिथस् प्रायस् मुहुस् अभीक्ष्णम् आर्यहलम् साकम् सार्द्धम् नमस् हिरुक् अथ अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान्। माङ् मा कामम् प्रकामम् भूयस् परम् साक्षात् सत्यम् मंक्षु

सवत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस् अनिशम् नित्यम् सदा अजस्रम् संततम् उषा ओम् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा चिरम् चिररात्राय चिरेण चिरस्य चिरात् चिराय अस्तम् स्थाने वरम् दुष्ठु बलात् तु शु अर्वाक् सुदि वदि इत्यादि ।

चादयो निपाता अपि अत्रैव ग्राह्याः । तथाहि—चादयोऽसत्वे १।४।५७ च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् कूपत् सूपत् कुवित् नेत् चेत् चण् कच्चित् नह हन्त माकिम् यावत् तावत् खलु किल स्म यत् तत् किम् पुरा धिक् हा आहो उताहो आहोस्वित् हो अहो भो ननु इति शश्वत् ऋतम् जातु कथम् अनु कं खं पशु उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः । आकृतिगणोऽयम् (इति चादयः ।)

प्रादयः १।४।५८ 'प्रपरापसमन्ववनिर्दुरभि, व्यधिसूदतिनिप्रतिपर्यपयः ।
उपआङिति विंशतिरेष सखे, उपसर्गगणः कथितः कविना ॥ (इति प्रादयः)

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३८ परिगणनं कर्तव्यम् तसिलादयः प्राक् पाशपः शस् प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः अम् आम् कृत्वोऽर्थाः तसि वति नानाञौ इति । तेनेह न पचतिकल्पम्, पचतिरूपम् ।

ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१ ऊरी उररी पापी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकलेत्यादि (इति ऊर्यादयः ।)

साक्षात्प्रभृतीनि च १।४।७४ साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्थेत्यादि ।

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च २।१।१७ तिष्ठद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम् संह्रियमाणबुसम् इच् प्रत्ययः समभूमि इत्यादि ।

सप्तमी शौण्डैः २।१।४० शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण इति शौण्डादिः ।

पात्रेसमितादयश्च २।१।४८ पात्रेसमिताः कूपमण्डूकः गेहेनर्दी आकृतिगणोऽयम् तेन गेहेमेही खट्वामूत्री धौतप्रस्रावी कर्णटिरटिरेत्यादि ।

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे २।१।५६ व्याघ्र सिंह ऋक्ष ऋषभ चन्दन वृषभ वृष हस्तिन् कुञ्जर इति व्याघ्रादिः ।

शाकपार्थिवादिसिद्धये उत्तर पदलोपो वाच्यः २।१।६० शाकपार्थिव कुतपसौश्रुत अजातौल्वलि आकृतिगणोऽयम् तेन कृतापकृत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका मानोन्मानिका पीतविपीतम् इत्यादि ।

मयूरव्यंसकादयः २।१।७२ मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक उच्चावच निश्चप्रचम् जहिंजोडम् आहरवनिता अहमहमिका आहोपुरुषिका उच्चनीचम् आकृतिगणोऽयम् अकुतोभयः कान्दिशीकः। यदृच्छा इत्यादि।

राजदन्तादिषु परम् २।२ ३१ राजदन्तः लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् कर्षितोप्तम् उलूखलमूसलम् शूद्रार्यम् अक्षिभ्रुवम् दारगवम् अर्थशब्दौ शब्दार्थौ धर्मकामौ कामार्थौ भार्यापती दम्पती जम्पती जायापती पुत्रपती आद्यन्तौ अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ इति राजदन्तादिः।

वाहिताग्न्यादिषु २।२।३७ आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु तैलपीत घृतपीत ऊढभार्य गतार्थ आकृतिगणोऽयम्। तेन गीतप्रिय गडुकण्ठ अस्युद्यत दण्डपाणि प्रभृतयः।

कडाराः कर्मधारये २।२।३८ कडार गडुल खञ्ज खोड काण कुण्ठ खलति गौर वृद्ध बधिर मठर कब्ज वर्वर इति कडारादिः।

प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् २।३।१८ प्रकृति आकृति प्राय गोत्र सम विषम पञ्चक साहस्र द्विद्रोण।

अर्द्धर्चाः पुंसि च २।४।३१ अर्द्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप कुणपः कपाट असंख्याः शब्दाः अर्द्धर्चादयः।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७ कण्डूञ्, मन्तु, हृणीङ्, वल्गु, असु, महीङ्, मनस् आकृतिगणोऽयम्।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ १।१३४ (१) [नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्द्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्] नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्द्धनः शोभनः रोचनः। सहितपिदमेः संज्ञायाम्–सहनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः शत्रुदमन इति नन्द्यादिः।

(२) ग्राही उत्साही उदासी उद्भासी स्थायी मंत्री संमर्दी रक्षश्रुवसवपशां नौ निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी (याच्व्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम्) अयाची अव्याहारी असंव्याहारी अवादी अवासी अचामचित्तकर्तृकाणाम्। अकारी अहारी अविनायी अविशायी विशयी इति ग्रह्यादिः।

(३) पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सरट् देवट् (दोषट्) श्वपच पचादिराकृतिगणः।

कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ३।२।५ मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र आकृतिगणोऽयम् ।

पिद्भिदादिभ्योऽङ् ३।३।१०४ भिदा विदारणे छिदा द्वैधीकरणे विदा क्षिपा गुहा गिर्योषध्योः मृजा त्रपा कृपेः सम्प्रसारणं च कृपा इति भिदादिः ।

अजाद्यतष्टाप् ४।१।४ अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापिहाणा अपरापहाणा संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् । सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् । शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा पुंयोगेऽपि । मूलान्नञः । दंष्ट्रा इति अजादिः ।

न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१० स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा । याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ।

षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१ गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मातामह पितामह इत्यादि गौरादिः ।

बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५ बहु पद्धति आकृति गणोऽयम् ।

अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४ अश्वपति ज्ञानपति शतपति धनपति स्थानपति गणपति जज्ञपति राष्ट्रपति गृहपति कुलपति पशुपति धान्यपति धन्वपति बन्धुपति धर्मपति सभापति प्राणपति क्षेत्रपति इत्यश्वपत्यादिः ।

शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२ शिव प्रोष्ठ प्रौष्ठिक चण्ड दम्भ आदिः आकृतिगणः ।

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६० उक्थ लोकायत न्यास न्याय पुनरुक्त निरुक्त निमित्त द्विपदा ज्योतिष अनुपद अनुकल्प यज्ञ धर्म चर्चा क्रमेतर श्लक्ष्ण संहिता पदक्रम संघट संघट्ट वृत्ति परिषद् संग्रह गण गुण आयुर्वेद आयुर्देव इत्युक्थादिः ।

क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१ क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन् इति क्रमादिः ।

नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७ नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी आदि ।

दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६ दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भग इति दण्डादिः ।

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२ पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड चण्ड अकिञ्चन बाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु इति पृथ्वादिः ।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३ दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र क्रुष्ट लवण शीत उष्ण जड बधिर पंडित मधुर मूर्ख स्थिर आदि ।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४ ब्राह्मण वाडव माणव अर्हतो नुम् च । चोर धूर्त एकभाव द्विभाव आकृतिगणोऽयम् । इति ब्राह्मणादिः ।

चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च ५।१।१२४ चतुर्वेद चतुर्वर्ण चतुराश्रम 'सर्ववि त्रिलोक त्रिस्वर षड्गुण सेना अनन्तर संनिधि समीप उपमा सुख तदर्थ इति मणिक इति चतुर्वेदादिः।

तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६ तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी प्रत्य दीक्षा गर्ज गर्भादप्राणिनि इति तारकादिराकृतिगणः।

प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८ प्रज्ञ मनस् मरुत् क्रुञ्च रक्षस् कर्पाण देवता बन्धु।

उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१ उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् प नौः लक्ष्मीः दधि मधु शालिः अर्थान्नञः। इत्युरःप्रभृतयः।

स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु ६।३ ३४ प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्तिः सचिवा इति प्रियादिः।

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ६।३।३५ तसिल् त्रल् तरप् तमप् चरट् इति तसिलादिः।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६।३।१०६ पृषोदर पृषोत्थान वलाहक जीमूत श्मशा उलूखल पिशाच बृसी मयूर इति पृषोदरादिराकृतिगणः।

अनुशतिकादीनां च ७।३।२० अनुशतिक इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरु इत्यनुशतिकादिराकृतिगणः।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।६ यव दल्मि ऊर्मि भूमि कृमि द्रा हरित् ककुद मरुत् इति यवादिराकृतिगणः।

क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९ क्षुभ्न नृनमन नन्दिन् नन्दन नगर। एतान्युत्तर दानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति। नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति। नरीनृत्यते। आचार्यादणत्वं आकृतिगणोऽयम्। पाठान्तरम् क्षुम्ना तृप्नु नृनमन अग्नि अनूप इत्यादि।

अष्टाध्यायी क्या है? इससे शब्द तथा धातुरूप कैसे बनते हैं? संज्ञा कैसे जानी जायँ? सूत्र वृत्ति बनाने की क्या विधि है? आदि विभिन्न प्रश्नों संदर्भ में डा० श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शनकेशरी' ने श्री रामचन्द्र कपूर साहब की इच्छा के अनुरूप संस्कृत अध्ययन की एक दिशा प्रशस्त की है। अध्ययनार्थियों को इससे लाभ मिलेगा-इसी आशा के साथ यह पुस्तक आप के हाथों में है।

—राम प्रकाश शास्त्री भारद्वाज
भू० पू० संस्कृत विभागाध्यक्ष
संस्कृत विद्यापीठ, अहिंसा भवन,
नई दिल्ली

१ मई
१९७६

पाणिनीयप्रदीपः

नत्वा सरस्वतीं देवीं बालानां सुखबोधिनीम् ।
आविष्करोमि लुप्तां तां पाणिनीयजुं पद्धतिम् ॥ १ ॥

ज्ञात्वाऽक्षरसमाम्नायं पदयोः क्रममेव च ।
विभक्त्यर्थं समासं च सन्धि-लिङ्गोपसर्गकम् ॥ २ ॥

क्रमप्रोक्तानि सूत्राणि नित्यं विंशति-संख्यया ।
सार्थानि संविधेयानि वृत्तिनिर्मणतः[1] स्वग्रम् ॥ ३ ॥

पाणिनीयप्रदीपेन मालवीयप्रसादतः ।
षण्मास्या एव कालेन बालाः संस्कृत-वित्तमाः ॥ ४ ॥

संस्कृत अध्ययन करने वालों के लिए पाणिनीय-पद्धति अति सुगम और सुबोध है। इससे संस्कृत भाषाका सही-सही ज्ञान हो जाता है और संस्कृत पढ़ना-पढ़ाना कठिन है, यह प्रवाद भी सदा के लिए दूर हो जाता है। पाणिनि-पद्धति को जानने हेतु क्रमशः १. अक्षरविज्ञान सूत्र २. पदज्ञान ३. विभक्त्यर्थ ४. समास ५. सन्धिज्ञान ६. लिङ्गोपसर्ग निपातज्ञान आवश्यक है।

अक्षर विज्ञान सूत्र

१. अइउण् २. ऋलृक् ३. एओङ् ४. ऐऔच् ५. हयवरट् ६. लण् ७. ञमङणनम् ८. झभञ् ९. घढधष् १०. जबगडदश् ११. खफछठथ चटतव् १२. कपय् १३. शषसर् १४. हल् ।

कहा जाता है कि ऋषियों की घोर तपस्या देखकर भगवान् शंकर ताण्डव नृत्य करते हुए प्रकट हुए और उन्होंने १४ बार अपना डमरू बजाया जिससे १४ सूत्र प्रकट हुए,[2] जिनके आधारपर पाणिनिने व्याकरणकी रचना की। इन सूत्रोंको माहेश्वर सूत्र कहा जाता है।

---

१. वृत्तिनिर्माणप्रकारो यथा--

सम्यक् प्रबुध्य नियमादृजुपाणिनीयं तत्रत्य-सन्धि-पद-कारकमाशु बुध्वा ।
प्राक्सूत्र-संस्थित-समां विजइद्विभक्ति क्षितैः पदैः कुरुधिया स्वयमर्थबोधम् ॥

२. नृत्यावसाने नटराज राजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्र-जालम ॥

शिवसूत्र-प्रत्याहार

स्यादेको णङटञवैः षेण द्वौ, त्रय इह कणमैः स्युः।
चत्वारश्च चयाभ्यां, पञ्च रेफेण, शलाभ्यां षट्॥

अण् अ इ उ

अक् अ इ उ ऋ लृ।

अच् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ

अण् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल,

अट् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र।

अम् अ, इ, उ, ऋ, लृ ए, ओ, ऐ, औ,ह,य,व,र,ल,ञ,म,ङ,ण,न,

अल् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

अश् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द।

इक् इ, उ, ऋ, लृ।

इच् इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ।

इण् इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल।

उक् उ, ऋ, लृ।

एङ् ए, ओ।

एच् ए, ओ, ऐ, औ।

ऐच् ऐ, औ।

खय् ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प।

खर् ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स।

ङम् ङ, ण, न।

चय् च, ट, त, क, प।

चर् च, ट, त, क, प, श, ष, स।

छव् छ, ठ, थ, च, ट, त।

जश् ज, ब, ग, ड, द।

झय् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द,ख, फ,छ, ठ,थ, च,ट, त, क,प

झर् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट त, क, प, श, ष, स।

झल् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

झश् झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, द,

झष् झ, भ, घ, ढ, ध।

बश् ब, ग, ड, द।

भष् भ, घ, ढ, ध।

मय् म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प।

यञ् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ।

यण् य, व, र, ल।

यम् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न।

यय् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प।

यर् य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स।

रल् र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

वल् व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

वश् व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द।

शर् श, ष, स।

शल् श, ष, स, ह।

हल् ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

प्रत्याहार क्रमसे ये सूत्र इस प्रकार हैं--

अ इ उ ऋ लृ, ए ओ ऐ औ, ह य व र ल, ञ म ङ ण न, झ भ घ ढ ध, ज ब ग ड द, ख फ छ ठ थ, च ट त क प, श ष स ह।

'आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१' की व्यवस्था देते हुए पाणिनिने धातु, प्रत्यय, आगम, आदेश सम्बन्धी जितने उपदेश दिये, उनमें 'हलन्त्यम् १।३।३' (उपदेशे इत्) अन्तके हल् अक्षरोंको इत् बताया है। इसी कारण जब सूत्रोंके आदि या बीचका अक्षर मिलाकर एक साथ बोला जाय तो वह अक्षर अपने और उस हल् (इत्) अक्षरके बीचके कुल अक्षरोंका बोध करा देता है। जैसे—'अण्' कहनेसे तीन अक्षरोंका ज्ञान होता है। क्योंकि प्रत्याहार बीचके शब्दोंको आत्मसात् कर लेता है। 'अण्' इन दो अक्षरोंने अ इ उ ण् सूत्रके प्रथम 'अ' के साथ 'इ उ' को मिला लिया तो 'अण्' कहनेसे 'अ इ उ' स्वतः अभिव्यक्ति पा गये। केवल 'ण्' का बोध नहीं हुआ, क्योंकि वह हल् है।

हल् उसे कहते हैं जिसमें कोई स्वर न हो। बिना स्वरके व्यंजन बोले ही नहीं जा सकते--इसलिए व्यंजन अक्षरवाले जितने भी हयवरट् सूत्र हैं, उनके व्यंजन अक्षरोंमें 'अ' लगा हुआ है। केवल अन्तका अक्षर हल् (इत्) प्रत्याहार बनानेके लिए है। इसीलिए १४ सूत्रोंके अन्तमें बिना स्वरके जितने व्यंजन हैं, उनको इन

सूत्रोंके किसी भी स्वर या स्वर सहित व्यंजनके साथ बालकर प्रत्याहारोंका नाम बना लेते हैं। पर प्रत्याहारोंके अक्षरोंमें अन्तके हल् अक्षरोंकी गणना नहीं की जाती।

इसी कारण 'अइउ' इन तीन अक्षरोंको ही 'अण्' प्रत्याहारमें माना है 'ण्' को नहीं। इसी प्रकार अक् प्रत्याहारमें 'अइउऋऌ' और 'अच्' प्रत्याहार में 'अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ' ये नो अक्षर लिये जाते हैं।

पाणिनिने लगभग ४१ प्रत्याहार से अपने ३९९६ सूत्रों में काम लिया है। इन वर्ण-समाम्नाय सूत्रों में ९ 'अच्' स्वर हैं, और ३३ 'हल्' व्यञ्जन। कुल ४२ अक्षर हैं। 'अच्' में मुख्य दो भेद होते हैं (१) 'अक्' (२) 'एच्'। इसी तरह 'हल्' में भी (१) 'हश्' (२) 'खर्'।

हिन्दी में अक्षर लिखने की जैसी परिपाटी है वैसी पाणिनि की नहीं है। पर दोनों परिपाटियाँ जाननी चाहिये। हिन्दी की वर्णमाला में भी अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ—इन नौ स्वरों को इसी क्रम से जानना चाहिये। इन्हीं का दीर्घ स्वरूप आ ई ऊ ॠ हैं, वे अलग अक्षर नहीं हैं। ऐसे ही क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, तैंतीस ही अक्षर हल् हैं। क्ष त्र ज्ञ, ये अलग अक्षर नहीं है। ये तो क् ष् का संयोग क्ष, त् र् का सयोग त्र, ज् ञ् का संयोग ज्ञ हैं। इन सभी व्यंजन अक्षरों में उच्चारण के लिये 'अ' लगा हुआ है। अक्षर तो ये सभी हल् (लङ्गडे) क् ख् ग् घ् आदि रूप में ही हैं। एक प्रकार से ये सभी ३३ कोटि (प्रकार) के देवता हैं। यहां कोटि का अर्थ प्रकार हैं, करोड़ नहीं।

अयोगवाह—जो स्वर या व्यंजन के सहयोग से उच्चारण किये जाते हैं, पृथक् नहीं, वे अयोगवाह कहलाते हैं। वे आठ हैं :—

अयोगवाहः

(१)	(२)	
ः विसर्ग	ँ ह्रस्व	यम
≍ जिह्वामूलीय	ँ दीर्घ	यम
≍ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक	यम
ं अनुसार	ꣳ वैदिक अक्षर (ङ का रूपान्तर)	

दूसरे चतुर्वर्गको यम कहाते हैं। उसमें अनुनासिक को छोड़ कर शेष तीनका प्रयोग संहिता (वेद) में ही होता है।

ँ :- संहिता में ऊष्म वर्ण तथा रेफ आगे आ जायें तो अनुस्वार को ँ हो जाता है (ँ रेफशलोः)

ळ :—संहिता (वेद) में दो स्वरों के बीच में 'ड' आ जाये वह ळ हो जाता है। यथा अग्नि मीळे। इसका उच्चारण रोहतक की भाषा में मिलता है जैसे पाळी, हाळी।

वर्ग पांच हैं : कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, जिन्हें संस्कृत में कु चु टु तु पु कहते हैं। एक वर्ग में पांच अक्षर होते हैं। कु = कवर्ग (क ख ग घ ङ)। चु=चवर्ग (च छ ज झ ञ)। टु=टवर्ग (ट ठ ड ढ ण)। तु=तवर्ग (त थ द ध न)। पु = पवर्ग (प फ ब भ म) पांचों वर्गों के २५ अक्षर हैं। इन ४२ अक्षरों के बोलने के मुख में स्थान भी पांच ही हैं। कण्ठ, तालु, ओष्ठ, मूर्धा और दाँत। इन्हीं स्थानों से ये कुल ४२ अक्षर बोले जाते हैं। इनके स्थान जानने का सरल उपाय यह है कि स्वर का एक अक्षर लो, एक वर्ग कु इत्यादि का, एक अन्तस्थ का और एक ऊष्मा का अक्षर लेकर अपने मुंह के उक्त पांचों स्थानों से बोलकर देखो कि, किस एक स्थान से कौन ८ अक्षर बोले जाते हैं। अ कु ह और विसर्ग कण्ठ से बोले जाते हैं बोलकर समझलें। इ चु य और श तालु से बोले जाते हैं। बोल बोलकर समझते चलें। उ पु और उपध्मानीय ओंठ से। ऋ टु र और ष मूर्धा से। लृ तु ल और स दाँत से। 'अ + इ = ए' यहाँ अ का कण्ठ स्थान है, इ का तालु स्थान है, इसलिये 'ए' कण्ठतालु से, इसी तरह 'अ + उ = ओ' यहाँ अ कण्ठ से और उ ओष्ठ से, इस कारण 'ओ' कण्ठ-ओष्ठ से, इसी तरह 'अ + ए = ऐ' यहाँ अ कण्ठ से, ऐ तालु से इसलिये ऐ, कण्ठतालु से, इसी प्रकार 'अ + ओ = औ' यहां अ कण्ठ से, तथा ओ ओष्ठ से, इसलिये 'औ' भी कण्ठ-ओष्ठ से व ओष्ठ से बोला ही जाता है पर इसके उच्चारण में दांत ओष्ठ पर चढ़ जाता है अर्थात् दांत ओष्ठ दोनों से व बोला जाता है। इसीसे ब और व ये दो भिन्न अक्षर हैं। बन्धु, बाहर, बांध यहां ब ओष्ठसे बोला जाता है विहार; व्याधि, विश्व यहां व दांतसे ओष्ठको दबाकर बोला जाता है। यों अक्षरों का स्थानज्ञान करके यत्नज्ञान करना चाहिये। यत्न दो हैं—[1]बाह्य [2]आभ्यन्तर जिसे प्रयत्न भी कहते हैं। उनमें बाह्य यत्न ११ हैं। घोष, अघोष, संवार, विवार, नाद, श्वास, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। इन प्रयत्नों में कुछ एक दूसरे के विरोधी हैं, जैसे—घोष का विरोधी अघोष। संवार का विवार। नाद का श्वास। अल्पप्राण का महाप्राण। घोष संवार नाद, ये परस्पर मित्र हैं। इसी तरह अघोष, विवार, श्वास ये मित्र हैं।

---

(१) बाह्य आभ्यन्तर का अर्थ यह है कि वर्णोंकी उत्पत्ति के समय में ही जो प्रयत्न हैं वे आभ्यन्तर और उत्पत्तिके बाद जो अक्षरों की ध्वनियां हैं वे बाह्य यत्न है।

अच् = स्वर का तो उदात्त, उनुदात्त, स्वरित ये तीनों यत्न हैं। यह तो पाणिनि के सूत्रों से ज्ञात होता है कि किस पद में कौन स्वर उदात्त है, कौन अनुदात्त है? और कौन स्वरित है? पर अक्षरों का बाह्य यत्न तो वँधा हुआ है। वर्गों का पहला दूसरा अक्षर और ऊष्मा के तीनों तालव्य मूर्धन्य और दन्त्य श ष स अक्षर ये १३ खर् प्रत्याहार के अक्षर अघोष, विवार, श्वास हैं। वर्ग का तीसरा चौथा पांचवा अक्षर और अन्तःस्थ य व र ल तथा ऊष्मा का ह ये २० हश् प्रत्याहार के व्यञ्जन अक्षर घोष, संवार नाद है।

वर्ग के प्रथम अक्षर (चय्) तृतीय (जश्) पञ्चम (ञम्) तथा अन्तस्थ (यण्) और स्वर (अच्) कुल २८ अल्पप्राण हैं। अल्पप्राणमें अघोष का चय् है, बाकी सब घोष के अक्षर हैं एवं वर्गके द्वितीय अक्षर खफछठथ, वर्गके चतुर्थ अक्षर (झष्) और ऊष्मा अक्षर (शल्) कुल १४ महाप्राण हैं। यों महाप्राण में घोषके ६ (छः) झभघढध (झष्) और ह हैं। अघोषके आठ खफछठथ और शषस (शर्) हैं।

आभ्यन्तर प्रयत्न पांच हैं : स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत, ईषद्विवृत और संवृत। सभी वर्गोंके २५ अक्षर (ञय्) स्पृष्ट हैं। इसी कारण इनको स्पर्श भी कहते हैं। अन्तःस्थ (यण्) ईषत्स्पृष्ट हैं। स्वर (अच्) विवृत हैं। ऊष्मा (शल्) ईषद्विवृत हैं। केवल 'अ' संवृत है। बाह्य यत्न हल् सन्धि में काम देते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न अक्षरोंके सवर्ण-ज्ञान में काम देते हैं। यथा—

तुल्य स्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९ प्रयत्न = आभ्यन्तर प्रयत्न और आस्य = तालु आदि स्थान जिन अक्षरोंका समान हो जाय वेही अक्षर सवर्ण (एक जातिके) हुआ करते हैं। अचोंके जो प्रत्येक १८ भेद होते हैं—वे ही परस्पर १८ अक्षर सवर्ण कहे जाते हैं। जैसे 'अ' ह्रस्व, 'आ' दीर्घ, 'अ३' प्लुत, ये तीन 'अ' के भेद हुए। इनमें एक ह्रस्व 'अ' उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन प्रकार के उच्चारण भेदसे तीन प्रकार का 'अ' हो जाता है। योंही दीर्घ 'आ' और प्लुत 'अ३' भी उच्चारण भेदसे तीन तीन हो जाते हैं, ये कुल नौ अनुनासिक निरनुनासिक भेद से दो दो होकर १८ अठारह होते हैं। इनके सूत्र हैं—ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुतः १।२।२७ उ, ऊ और उ३ (प्लुत), के बोलनेमें जितना काल लगता है उतना काल लेने वाला कोई भी 'अच्'=(स्वर) ह्रस्व, दीर्घ प्लुत क्रमशः कहा जाता है। उच्चैरुदात्तः १।२।२९ नीचैरनुदात्तः १।२।३० समाहारः स्वरितः १।२।३१ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८ इस प्रकार १८ प्रकारके 'अ' विवृत प्रयत्न वाले हैं और वे एकमात्र कण्ठसे ही बोले जाते हैं। अतः ये अठारह परस्पर सवर्ण हैं।

अ इ उ ऋ लृ	आ ई ऊ ॠ ए ओ ऐ ओ	अ इ उ ऋ लृ (३) एओऐऔ
ह्रस्वभेद	दीर्घभेद	प्लुतभेद
१ ह्रस्व उदात्तानुनासिक	७ दीर्घ उदात्तानुनासिक	१३ प्लुत उदात्तानुनासिक
२ ,, उदात्ताननुनासिक	८ ,, उदात्ताननुनासिक	१४ ,, उदात्ताननुनासिक
३ ,, अनुदात्तानुनासिक	९ ,, अनुदात्तानुनासिक	१५ ,, अनुदात्तानुनासिक
४ ,, अनुदात्ताननुनासिक	१० ,, अनुदात्ताननुनासिक	१६ ,, अनुदात्ताननुनासिक
५ ,, स्वरितानुनासिक	११ ,, स्वरितानुनासिक	१७ ,, स्वरितानुनासिक
६ ,, स्वरिताननुनासिक	१२ ,, स्वरिताननुनासिक	१८ ,, स्वरिताननुनासिक

इसी तरह कु=कखगघङ, ये पांचों हल् अक्षर कण्ठसे बोले जाते हैं और स्पृष्ट प्रयत्न वाले हैं अतः सवर्ण हैं। ऐसेही चु=चछजझञ इत्यादि सभी वर्गोंके पांच पांच अक्षर परस्पर सवर्ण होंगे ऐसा समझ लेना होगा।

इस प्रकार इन चौदह सूत्रों के द्वारा प्रत्याहार, स्थान, प्रयत्न का ज्ञान कर चुकने पर २ पदज्ञान, ३ विभक्त्यर्थज्ञान, ४ समासज्ञान, ५ सन्धिज्ञान, ६ लिङ्गोपसर्ग निपात ज्ञान, आवश्यक है—वैसा ही यहां क्रमसे इन आवश्यक विषयोंका संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

पदज्ञान–संस्कृत में चार ही प्रकार के पद (शब्द) होते हैं—१ सुबन्त, २ तिङन्त, ३ उपसर्ग, ४ निपात। जब इन पदोंको पहचानना आ जाय तब संस्कृत भाषा वशमे आ गयी। वह बालक या बालिका संस्कृतज्ञ हो गये। ऐसा जानिये।

सुप्तिङन्तं पदम् १।१।१८ जिनके अन्त में सुप् और तिङ् होते हैं, वेही संस्कृत में पद कहे जाते हैं। उन्हीं का वाक्य में प्रयोग होता है। इसलिये संस्कृत में पद बनाना भी आवश्यक है। शब्दों के आगे सुप् जोड़ कर सुबन्त पद बनते हैं। धातुओं के आगे तिङ् जोड़कर, तिङन्त पद बनते हैं। ये सुप् और तिङ् विभक्ति कहे जाते हैं। इसका सूत्र–२ विभक्तिश्च १।४।१०४ (ति[१]ङः सु[२]पः) (तिङ् और सुप् विभक्ति हैं)।

'सु' से लेकर 'प्' तक इकीस सुप् विभक्तियां हैं।

				इनका परिष्कृत रूप				
सु	औ	जस्	प्रथमा		स्	औ	अः	१
अम्	औट्	शस्	द्वितीया	,,	अम्	औ	अः	२
टा	भ्याम्	भिस्	तृतीया	,,	आ	भ्याम्	भिः	३
ङे	भ्याम्	भ्यस्	चतुर्थी	,,	ए	भ्याम्	भ्यः	४

ङसि	भ्याम्	भ्यस्	पञ्चमी	अः	भ्याम्	भ्यः	५
ङस्	ओस्	आम्	षष्ठी	अः	ओः	आम्	६
ङि	ओस्	सुप्	सप्तमी	इ	ओः	सु	७
सु	औ	जस्	सम्बोधन	स्	औ	अः	सं

ये सारी विभक्तियां प्रातिपदिक के आगे जोड़ी जाती हैं। प्रातिपदिक उसे कहते हैं जो धातु प्रत्यय प्रत्ययान्त से तो भिन्न हो पर कुछ न कुछ उस का अर्थ हो निरर्थक शब्द न हो। और प्रत्ययान्त यदि हो तो 'कृत्' प्रत्ययान्त या 'तद्धित' प्रत्ययान्त हो। समास किया हुआ शब्द भी प्रातिपदिक कहा जाता है। इनके लिये सूत्र हैं--अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५ कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६ ये प्रातिपदिक शब्द-स्वरूपकी दृष्टि से आकार में दो प्रकार के होते हैं। एक 'हलन्त' जिनके अन्तमें 'हल्' प्रत्याहार का कोई अक्षर हो, दूसरा 'अजन्त' जिनके अन्त में 'अच्' प्रत्याहार का कोई भी अक्षर हो, इन दोनों प्रकार के शब्दों को प्रातिपदिक नाम रखकर उनके आगे 'सु' से लेकर सुप् तक इक्कीस तथा पुनः प्रथमा की तीन विभक्तियों को रखकर २४ पद बना लेते हैं। अत्यन्त सरल होनेके कारण पहले मरुत् (वायु) 'हलन्त' शब्द के पद बनाते हैं -

हलन्त शब्दों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन वाली 'सु' विभक्ति लुप्त हो जाती है।

उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि हलन्त शब्दके आगे 'सु' आने पर 'उपदेशे ऽजनुनासिक इत्' १।३।२ इससे 'उ' की 'इत्' संज्ञा होगी 'तस्य लोपः' १।३।९ से लोप हो जाने पर 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' ६।१।६८ (लोपः) से 'स्' का लोप हो जायगा केवल शब्द मात्र ही पद बन जाता है, हां अन्तिम अक्षर अपने वर्ग का पहला और तीसरा अक्षर विकल्प से होता है सूत्र—वावसाने ८।४।५६ (झलां चर्) अन्य सभी विभक्तियों में शब्दका अन्तिम अक्षर मिला दिया जाता है।

जैसे शब्दके स्वरूपकी दृष्टिसे संस्कृतमें हलन्त और अजन्त दो ही प्रकार के शब्द हैं। उसी प्रकार विभक्तियां भी हलादि जिनके आदि में (आरम्भ में) हल् प्रत्याहारके अक्षर हैं तथा अजादि--जिनके आदि में अच् प्रत्याहार के अक्षर हैं ऐसी दो हैं। सु, भ्याम् ३, भिस्, भ्यस् २, सुप्=८ हलादि हैं। औ २, अः ४, अम्, आ, ए, ओः २, आम्, इ=१३ अजादि हैं। विभक्तियोंका परिष्कृत रूप बनाने की प्रक्रिया यह है कि 'चुटू[४] १।३।७' (उपदेशे[१] प्रत्ययस्य[२] आदी[३] इतौ[५] स्तः[६]) इससे जस् का 'ज' टा का 'ट्' [४]लशक्वतद्धिते[५] १।३।८ ([१]उपदेशे [२]प्रत्ययस्य [३]आदि इत्[६]) इससे शस् का 'श्' ङे, ङसि, ङस्, ङि का ङ् [२]हलन्त्यम्[३] १।३।३

([१]उपदेशे इत्[४]) इससे औट् का ट् सुप् का प् इत् होता है और तस्य लोपः १।२ ६ इससे लोप् हो जाता है। तब ये विभक्तियां परिष्कृत होकर हलन्त शब्दों में प्रातिपदिक संज्ञा हो जाने पर जुटती हैं। सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है और शब्दोंके पहले 'हे' लगाने की प्रथा है। जस् मिस् भ्यस् ङस् ओस् के स् और अम् आम् के म् का हलन्त्यम् से इत् नहीं होने पाता है। न विभक्तौ तुस्माः यह बाधक हो जाता है जिन अक्षरों की 'उपदेशेऽजनुनासिक' इत्यादि सूत्रोंसे इत्संज्ञा करके 'तस्य लोपः १।३।४' (इतः) से लोप करते हैं उन अक्षरों को 'अनुबन्ध' कहते हैं। इन सूत्रों का उल्लेख न करते हुए अनुबन्ध लोप करके अमुक कार्य्य हो गया। ऐसा वैयाकरण प्रायः बोला करते हैं। इसका निष्कर्ष यह है कि जो अक्षर प्रत्यय या प्रकृति में लगता हो पर वह प्रयोग सिद्धि के समय इत्संज्ञा करने वाले सूत्रों द्वारा इत् करके 'तस्य लोपः' से निकाल दिया जाय उसे ही अनुबन्ध कहते हैं। अब विभक्तियों को जोड़कर पद बनाये--

रूप	विभक्ति	अर्थ
मरुत + सु = मरुत्, मरुद्	ने (प्रथमा)	वायु या वायु ने
मरुत् + औ = मरुतौ		दो वायु या दो वायुओं ने
मरुत् + अः = मरुतः		बहुत वायु या बहुत वायुओं ने
मरुत् + अम् = मरुतम्	को द्वितीया	वायु को,
मरुत् + औ = मरुतौ		दो वायुओं को
मरुत् + अः = मरुतः		बहुत वायुओं को
मरुत् + आ = मरुता	से तृतीया	वायु से,
मरुत् + भ्याम् = मरुद्भ्याम *		दो वायुओं से
मरुत् + भिः = मरुद्भिः		बहुत वायुओं से
मरुत् + ए = मरुते	के लिये चतुर्थी	वायु के लिये,
मरुत् + भ्याम् = मरुद्भयाम्		दो वायुओं के लिये
मरुत् + भ्यः = मरुद्भयः		बहुत वायुओं के लिये
मरुत् + अः = मरुतः	से पञ्चमी	वायु से,
मरुत् + भ्याम् = मरुद्भयाम्		दो वायुओं से
मरुत् + भ्यः = मरुद्भयः		बहुत वायुओं से
मरुत् + अः = मरुतः	का के की षष्ठी	वायु का,
मरुत् + ओः = मरुतोः		दो वायुओं का
मरुत् + आम् = मरुताम्		बहुत वायुओं का,

रूप	विभक्ति	अर्थ
मरुत् + इ = मरुति मरुत् + ओः = मरुतोः मरुत् + सु = मरुत्सु	में पै पर सप्तमी	वायु में, दो वायुओं में बहुत वायुओं में
हे मरुत् + सु = हे मरुत्, हे मरुद् हे मरुत् + औ = हे मरुतौ हे मरुत् + अः = हे मरुताः	सम्बोधन	हे वायो हे दो वायुवो हे बहुत वायुवो

* जिन हलादि विभक्तियों में घोष अक्षर पहले (आदि में) है उनमें मिलते समय शब्द का अघोष अक्षर अपने प्राण के अनुसार घोष होकर मिलता है। इसके लिये सूत्र है—झलां जशोऽन्ते ८।२।३९ (पदस्य)

इसी प्रकार हलन्त शब्दों की विभक्तियों में मूल शब्द को जोड़कर पद बना लेना चाहिये। प्रत्याहारों के सभी शब्द ऐसे ही चलेंगे—जैसे अण्, अक् अच् हश् खर् अल् इनमें अक् अच् का घोष अक्षरों के साथ होने पर अग्भ्याम् इत्यादि अघोष के साथ अक्षु अच्सु आदि रूप होंगे। दकारान्त शरद् (शरदृतु या वर्ष)

रूप	विभक्ति
शरद् + सु = शरत्, शरद् शरद् + औ = शरदौ शरद् + अः = शरदः	प्रथमा
शरद् + अम् = शरदम् शरद् + औ = शरदौ शरद् + अः = शरदः	द्वितीया
शरद् + आ = शरदा शरद् + भ्याम् = शरद्भ्याम् शरद् + भिः = शरद्भिः	तृतीया
शरद् + ए = शरदे शरद् + भ्याम् = शरद्भ्याम् शरद् + भ्यः = शरद्भ्यः	चतुर्थी
शरद् + अः = शरदः शरद् + भ्याम् = शरद्भ्याम् सरद् + भ्यः = शरद्भ्यः	पञ्चमी

शरद् + अः = शरदः शरद् + ओः = शरदोः शरद् + आम् = शरदाम्	षष्ठी
शरद् + इ = शरदि शरद् + ओः = शरदोः शरद् + सु = शरत्सु*	सप्तमी
हे शरद् + सु = हे शरद् हे शरत् हे शरद् + औ = हे शरदौ हे शरद् + अः = हे शरदः	सम्बोधन

(१) तकारान्त शब्दोंमें वत् मत् यत् अन्त वाले शब्दोंके सुट् (सु औ अः अम् औ) विभक्तियों में तो भिन्न प्रकारके रूप होते हैं। जैसे—भगवत् + सु की स्थिति में 'अत्वसन्तस्य[२] चाधातोः[१] ६।४।१४' (अङ्गस्य उपधाया दीर्घः असम्बुद्धौ सौ) (अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १।१।६४) के द्वारा वत् के अकार को उपधा संज्ञा होने के कारण दीर्घ हो जाने पर भगवात् + सु हो जाता है। तब 'उगिदचां[२] सर्वनामस्थाने[४] ऽधातोः[१] ७।१।७० ([३]अङ्गानां नुम्[४]) से नुम् होने लगता है तो ([१]मिद [३]चोऽन्त्या[२] त् परः[३] १।१।४७' से दीर्घाकार के बाद नुम् होता है। उसके अनुबन्ध के लोप हो जाने पर भगवान्त् + सु होता है। सु के अनुनासिक उ को इत् संज्ञा करके स् का लोप करके पुनः सयोगान्त लोप करके भगवान् बन जाता है। इसी तरह भगवत् + औ 'उगिदचां सर्व०' से नुम् करके भगवन्तौ भगवन्तः भगवन्तम् भगवन्तौ होता है। अन्य सभी रूप मरुत् के समान होंगे। केवल सम्बोधन के एकवचन में उपधादीर्घ न होकर नुम् सुलोप संयोगान्त त् का लोप करके हे भगवन् होता है। शतृ प्रत्यय वाले भवत् पठत् आदि तकारान्तको दीर्घ नहीं होता। वहां वतु नहीं है। भवन् भवन्तौ भवन्तः भवन्तम् भवन्तौ भवतः भवता इत्यादि रूप होते हैं—सम्बोधन में हे भवन् हे भवन्तौ हे भवन्तः। अभ्यस्त शत्रन्त के मरुत्के सदृश ही रूप होते हैं। ददत् ददतौ ददतः[१] इत्यादि।

---

*जिस हलादि विभक्ति में अघोष अक्षर होते हैं उस विभक्ति में मिलते समय शब्द का घोष अक्षर भी अपने मेल का (अल्पप्राण) अघोष होता है। सूत्र है—खरि च ८।४।५५ (झलां चर्)।

(१) तकारान्त के १ शुद्ध अपरिवर्तित रूप २ मतुप् क्तवतु डवतु ३ शतृ ४ अभ्यस्त ५ महत् येही पांच—भेद हैं।

(१) नकारान्त करिन् शब्दमें भी थोड़ी विशेषता है। जैसे—करिन्+सु की स्थिति में 'सौ च ६।४।१३' (अङ्गानाम् इन्हन्पूषार्यम्णाम् उपाधाया दीर्घः) से उपधा दीर्घ करके सुलोप करके 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७' से न् लोप हो जाने पर करी, करिन्+औ=करिणौ यहाँ 'अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि ८।४।२ (रषाभ्यां नो णः समानपदे) से न का ण होता है। करिन्+भ्याम् की स्थिति में 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७' से न्लोप करके करिभ्याम् बनता है। इसी तरह सब हलादिविभक्तियों में न् का लोप होगा। सम्बोधन के एकवचन में एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९ (प्रथमायाः सम्बोधने) से सु की सम्बुद्धि सञ्ज्ञा करके 'न ङि सम्बुद्ध्योः ८।२।८' (नलोपः) से न्केलोपका निषेध हो जाता है। बाद सुलोप करके हे करिन् पद बनता है। इसीतरह अकारोपध नकारान्त शब्दोंके रूप होते हैं। परन्तु सुट्में दीर्घ और शसादि विभक्तियों में अ का लोप विशेष है। जैसे—राजन्+सु 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८' (अङ्गस्य नोपधाया दीर्घः) से दीर्घ करके सुलोपादि के बाद राजा सिद्ध होगा। इसी तरह राजानौ राजानः राजानम् राजानौ राजन्+अः की स्थिति में अल्लोपोऽनः ६।४।१३४ (भस्याङ्गस्य) से अ का लोप करके श्चुत्व कर देने पर राज्ञः राज्ञा राजभ्याम् आदि रूप होगा। व म संयोगान्त अन्के 'अ' का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मन्+अः की स्थिति में 'न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७' (अल्लोपोऽनः) से अ के लोप का निषेध हो गया। आत्मनः आत्मना आत्मभ्याम्।[1]

सकारान्त शब्दों में चन्द्रमस्+सु की स्थिति में 'अत्वसन्तस्य चाधातोः से दीर्घ हो जाने पर सुलोप करके चन्द्रमाः विभक्ति योगसे चन्द्रमसौ आदि चन्द्रमस्+भ्याम् रुत्व उत्व गुण करके चन्द्रमोभ्यान् आदि। सकारान्त में भी विद्वस् आदि वस्वन्त शब्दोंका 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् करके 'सान्तमहतः[३] संयोगस्य[४] ६।४।१०' (सर्वनामस्थाने[२] चासम्बुद्धौ[१] नोपधाया[५] दीर्घः) से दीर्घ हो जाने पर सुलोपः संयोगान्त लोप करके विद्वान्। इसीतरह विद्वांसौ विद्वांसः विद्वांसम् विद्वांसौ विद्वस्+अः की स्थिति में 'वसोः[२] सम्प्रसारणम्[३] ६।४।१३१' (भस्याङ्गस्य[१]) सम्प्रसारण करके '[१]सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०८'([२]अचि पूर्वः[५] एकः[४] पूर्वपरयोः[३])से पूर्वरूप करके मूर्द्धन्यादेश करके विदुषः विदुषा इत्यादि होता है। विद्वस्+भ्याम् की स्थिति में '[१]वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां[२]दः ८।२।७२' (पदस्य[२]) से स् के स्थान में द् कर देने पर विद्वद्भ्याम् आदि। श्रेयस् लघीयस्

---

(१) नकारान्तके १ इनहन आदि २ म व सयोगान्त वाला अन् ३ शुद्ध अन् ४ विलक्षण पथिन् श्वन् युवन् आदि चार भेद है

आदि इयसुन् प्रत्ययवाले शब्दोंका सुट्में विद्वस्के सदृश और शसादिमें चन्द्रमस्के सदृश रूप होता है।

ऐसे ही वाच (वाणी) प्रभृति हलन्त शब्दों के हलादि विभक्तियों में केवल अन्तिम अक्षरों के भिन्न भिन्न अक्षर हो जाते हैं। जैसे प्रथमा के एक वचनमें वाच्+सु यहाँ 'चोः कुः' से च को क करने पर 'झलां जशोऽन्ते' से क को ग किया। अनन्तर 'वावसाने' से विकल्प से क करने पर वाक्-वाग्, वाग्भ्यः। सप्तमी के बहुवचनमें। वाच्+सु की स्थितिमें चोः कुः ८।२।३० (झलि पदस्य अन्ते) लग चुकने पर झलां जशोऽन्ते लगता है। तब 'खरि च' से गकार को ककार करने पर वाक्+सु की स्थिति में 'आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९' (इण्कोः अपदान्तयोः सः मूर्द्धन्यः) से वाक्षु होता है, इसेही वाक्षु ऐसा लिखते हैं। भिषज् (वैद्य) भिषक् (ग्) प्राछ् (प्रश्नकर्ता) (प्राट्-प्राड्) वेतनभुज् (तनखाह लेने वाला) (वेतनभुक्-ग्) विश्वसृज् (ब्रह्मा) (विश्व-सृट्-ड्) रुच् (कान्ति) (रुक्-ग्) ऋत्विज् (होता) (ऋत्विक्-ग्) पयोमुच् (मेघ) (पयोमुक्-ग्) सरित (नदी) (त्-द्) हरित् (दिशा, हरा रङ्ग) क्षुत् (छींक) (क्षुत्-द्) दधिमथ् (मद् मत्) क्षुध् (भूख) (क्षुत्-द्) समिध् (लकड़ी) समित् (सग्राम) (समित्-द्) ककुभ् (दिशा) (ककुप्-ब्) दिश् (दिशा) (दिक्-ग्) तादृश् (वैसा) (तादृक्-ग्) घृतस्पृश् (घृतस्पृक्-ग्) हलन्त शब्दों के पद भी ऐसे ही विभक्तियों में जोड़ कर बना लेने चाहियें। पर यह ध्यान रहे कि चवर्ग अन्त वाले शब्दों का पद हलादि विभिक्तियों में कवर्ग अन्त वाला हो जायेगा। पर कुछ चवर्गान्त और शकारान्त शब्दों का तथा ष् अन्तवाले शब्दों का तो हलादि विभक्तियों में टवर्गान्त रूप होता है और अजादि विभक्तियों में सभी शब्दों के अन्त के हलन्त मूल अक्षर ही आगे के स्वरों में मिल जाते हैं। इन कार्यों के सूत्र 'चोः कुः ८।२।३०' (झलि पदस्य अन्ते च) और 'व्रश्च भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-छशां षः ८।२।३६' (झलि पदस्य अन्ते च) -स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८' (धातोः प्रत्ययः परः) 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२' (पदस्य अन्ते) ये हैं।

अजन्त शब्दों को विभिक्तियों के साथ जोड़ने में कुछ अधिक मात्रा में विभक्तियों और शब्दोंको तोड़ना-फोड़ना पड़ता है। इसलिए उनको यहाँ छोड़ दिया जाता है। केवल कुछ आवश्यक पद दिखा दिये जाते हैं, जैसे—(१) अकारान्त पुंलिङ्ग—अज शब्द—(ऊपर से नीचे बोलनेमें ही सुविधा है)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अजः	अजौ	अजाः।
द्वितीया	अजम्	,,	अजान्।

लिंगानुसार साधने की प्रक्रिया बताई जाती है—

(१) अकारान्त शब्दों का रूप बनाने की प्रक्रिया—अज + सु 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२' 'तस्य लोपः १।३।९' अज + स् 'ससजुषोरुः ८।२।६६' (पदस्य) अज + र् 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५' अजः। अज + औ = 'वृद्धिरेचि ६।१।८८' (आत् पूर्वपरयोः एका संहितायाम्) अजौ अज + अः = 'प्रथमयोः पूर्वस वर्णः ६।१।१०२' (अकः अचि पूर्वपरयोः एकः दीर्घः) अजाः अज+ अम् 'अमि पूर्वः ६।१।१०७' (अकः अचि पूर्वपरयोः एकः) अजम् अजौ अज + अस् = अजास् 'तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३' (पूर्वसवर्णदीर्घात्) अजान्। अज + टा = 'टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२' अज + इन 'आद्गुणः ६।१।८७' (अचि पूर्वपरयोः एकः संहि०) अजेन अज + भ्याम् 'सुपि च ७।३।१०२' (यञि अतः अङ्गस्य दीर्घः) (अजाभ्याम्) अज + भिस् 'अतो भिस ऐस् ७।१।९' (अङ्गात्) अज + ऐस् वृद्धिः अजैः। अज + ङे 'ङेर्यः ७।१।१३' (अतः अङ्गात्) अज + य 'सुपि च' अजाय, अज + भ्यः 'बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३' (अतः अङ्गस्य सुपि) अजेभ्यः। अज + ङसि 'टाङसि०' अज + आत् दीर्घः अजात् झलां जशोन्ते अजाद् वावसाने अजाद् (त्) अज + ङस् = अजस्य। अज + ओस् 'ओसि च ७।३।१०४' (अतः एत्) अजे + ओस् = एचोऽयवायावः ६।१।७८' (अचि) अजयोः। अज+ आम् 'ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४' (आमि) अज + नाम् 'नामि ६।४।३' (अचः अङ्गस्य दीर्घः) अजानाम् अज + ङि अज + इ 'आद्गुणः' अजे। अज + सु 'बहुवचने झल्येत्' अजे + सु 'आदेशप्रत्यययोः'-अजेषु। हे अज+सु हे अजस् 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६०' (अपृक्त हलो लोपः) हे अज।

स्त्रीलिङ्ग में अ को 'आ' होता है क्योंकि संस्कृत साहित्यमें स्त्री जातिको अधिक महत्व दिया जाता है—इसके लिये पाणिनिने सूत्र लिखा 'अजाद्यतष्टाप् ४।१।४' (स्त्रियाम् प्रत्ययः परः) इससे टाप् प्रत्यय होने पर 'चुटू' 'हलन्त्यम्' से अनुबन्ध हटा देने पर अज + आ = दीर्घ अजा ऐसा स्त्रीलिङ्ग (प्रकृति) आकारान्त शब्द हो जायगा तब प्रथमाके एकवचनमें अजा + सु हल्ङ्याब्भ्यो० अजा, अजा + औ 'औङ आपः ७।१।१८' (शी अङ्गात्) अजा + शी=अजा ई=अजे। अजा + आ 'आङि चापः ७।३।१०५' (अङ्गस्य एत्) से अजे आ = अजया। अजा + ए 'याडापः ७।३।११३' (ङितः अङ्गात्) अजाया+ए = वृद्धिः अजायै। अजायाः २। अजा+ङि 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६' अजा आम् 'याडापः' अजायाम् हे अजा + सु 'सम्बुद्धौ च ७।३।१०६' (आपः अङ्गस्य एत्) हे अजे + सु 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' हे अजे। ऐसे ही स्त्रीलिङ्ग के सभी आकारान्त शब्दों को साधना होगा।

अब ह्रस्व इकारान्त पुंल्लिङ्ग हरि शब्द—

हरि + सु = हरिः, हरि + औ 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' हरी, हरि + अः 'जसि च ७।३।१०६' (ह्रस्वस्य इकः अंगस्य गुणः) हरे + अः = हरयः।

हरि + टा—'शेषोघ्यसखि १।४।७' (शेषोऽत्र ह्रस्वौ यू यौ न स्त्र्याख्यौ, स्त्र्याख्यौ चेन्न नदीसंज्ञौ तावेवेह शेषशब्देन गृह्येते) इससे घि संज्ञा होने पर 'आङो-नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०' (घे रंगात्) से टा का ना होने पर हरिना 'अट्कुप्वाङ्-नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२' (रषाभ्यां नो णः समानपदे) से न का ण होने पर हरिणा, हरि + ए 'घेर्ङिति ७।३।१११' (अंगस्य गुणः) से गुण होने पर हरे + ए 'एचोऽ-यवायावः' हरये। हरि+अः हरे+अः 'ङसिङसोश्च ६।१।११०' (एङः अति पूर्व-परयोः एकः पूर्वः संहितायां) हरेः। हरि + ओः = हर्योः हरि + आम् 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' हरि + नाम् 'नामि' हरीनाम् 'अट्कुप्वाङ्०' हरीणाम् हरि + ङि 'अच्च घेः ७।३। ११९' (ङेः औत् अंगात् घेः) हर + औ हरौ। हे हरि + सु 'ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८' (सम्बुद्धौ) हे हरे + सु 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' हे हरे। ये ही सूत्र उकारान्त भानु इत्यादि शब्दोंमें भी लगेंगे। गुण होते समय उ का ओ होगा। यण् होते समय उ का व होगा। अर्थात् सन्धि में ओ का अव् होगा। इतना-ही इकारान्त उकारान्त शब्द के रूप में अन्तर है।

स्त्रीलिङ्ग के इकरान्त शब्दों के भी रूप पुंलिङ्ग के ही समान हैं। शस् टा और ङिद्विभक्ति में कुछ भेद हैं। उनकी सिद्धि यों है—मति + अः 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' मतीः। मति+आ मत्या। मति + ए 'ङिति ह्रस्वश्च १।४।६' (इयङुवङ्-स्थानावस्त्रो वा यू स्त्र्याख्यौ) से नदी संज्ञा होने पर 'आण्नद्याः ७।३।११२' (ङिति) से आट् आगम होने पर अनुबन्ध लोप कर मति आ + ए मत्या + ए मत्यै पक्ष में मतये। मति + अः में मति + आ + अः मत्या + अः मत्याः पक्ष में मतेः मति + ङि में 'इदुद्भ्याम् ७.३।११७' (ङेराम् नदीभ्याम्) मति + आम् 'आण्नद्याः' से मति आ + आम् मत्या+आम् मत्याम् पक्ष में मतौ। शेष सभी रूप हरि के ही समान हैं। दीर्घ ईकारान्त नदी शब्द में सन्धि करते चलना है। ङिद् विभक्तियों मे 'आण्नद्याः' से आट् करके सन्धि करनी है। ङि मे 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' से ङि को आम् करके 'आण् नद्याः' लगाना है। सम्बोधन में हे नदी + सु 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७ (सम्बुद्धौ अङ्गयोः) से ह्रस्व करके हे नदि + सु 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' हे नदि। इसी प्रकार से सारे दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों के रूपबनाने चाहिये। प्रथमा के एकवचन में तो वधू + सु = वधूः।

ऋकारान्त शब्दों में 'अर्थवदधातु०' से प्रातिपदिक संज्ञा करने पर 'स्वौजसमौट्०' से सु आने पर कर्तृ + सु हुआ तब 'ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसाञ्च ७।१।९४' (असम्बुद्धौ अनङ् सौ) से ऋ के स्थान में अनङ् करने पर कर्तन् + सु हुआ 'अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११' (उपधाया दीर्घः सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ) से दीर्घ होने पर कर्तान् + सु हुआ हल्ङ्याभ्य० से स का लोप हुआ कर्तान् अब 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७' से न् का लोप हुआ कर्ता। कर्तृ + औ 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११०' (अङ्गस्य गुणः) से गुण होकर कर्तर् औ 'अप्तृन्तृच्०' से दीर्घ कर्तारौ। कर्तृ + आ कर्त्रा, कर्तृ + अस् 'ऋत उत् ६।१।१११' (एकः पूर्वपरयोः ङसिङसोश्च अति) से ऋ और अ मिलाकर 'उरण्परः १।१।५१' के बल से एक उर् हो जाने पर कर्तुर्स् हो जाता है 'रात्सस्य ८।२।२४' (लोपः) से स का लोप कर 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५' (रः) से विसर्ग करके कर्तुः बनता है। कर्तृ + नाम् 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' कर्तृणाम्, कर्तृ + इ 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' कर्तरि। हेकर्तृ + सु 'ऋतोङि०' से गुण 'हल्ङ्याब्भ्य०' से लोप हे कर्तः। स्त्रीलिङ्ग में भी स्वसृ ऋकारान्त का ऐसाही रूप होता है। केवल शस्मे स्वसृः होता है। कुछ ऋकारान्त तो स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त हो जाते हैं, जैसे कर्तृ का स्त्रीलिङ्ग में 'ऋन्नेभ्योङीप् ४।१।५' (स्त्रियाम्) से ङीप् प्रत्यय हो जाने पर कर्तृ + ई = कर्त्री शब्द हो जाता है। ऐसे शब्द तो नदी के समान चलते हैं। और उनकी सिद्धि भी वैसीही हो जाती है।

नपुंसक लिङ्ग में तो सभी शब्दों का पद बड़ी सरलतासे सिद्ध होता है अज + सु 'अतोऽम् ७।१।२४' (स्वमोर्नपुंसकात् अङ्गात्) से अम् करके 'अमि पूर्वः' अजम् अज + औ 'नपुंसकाच्च ७।१।१९' (अङ्गात् औङः शी) से औ के स्थान में शी करने पर अज + शी अज + ई = अजे। अज + जस् 'जश्शसोः शिः ७।१।२०' (अङ्गात् नपुंसकात्) अज+शि=अज + इ 'शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२' से सर्वनामस्थानसंज्ञा करके 'नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२' (अङ्गस्य नुम् सर्वनामस्थाने) से 'मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७' के बल से अन्त्य अच् के बाद नुम् होने पर अजन् + इ 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।७' (नोपधाया दीर्घः) से दीर्घ होकर अजानि हो जाता है। 'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १।१।६४' उपधा संज्ञा करने वाला सूत्र है। बस द्वितीया मे ये ही रूप और यही सिद्धि है। तृतीयादि विभक्तियों में पुंलिङ्गवत् ही सिद्धि है। इकारान्त नपुंसक का तो वारि + सु 'स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३' (अङ्गात् लुक्) से सु का लुक् करके वारि। वारि + औ 'नपुंसकाच्च' वारि + ई 'इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३' (अङ्गात् नुम्) से नुम् करके अनुबन्ध लोपकर वारिनी 'अट्कुप्वाङ्' वारिणी वारि जस् 'जश्शसोः शिः' वारि + इ

'नपुंसकस्य झलचः' वारिन् + इ 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' वारीनि 'अटकुप्वाङ्०' वारीणि। वारि + टा 'शेषोध्यसखि' से घि संज्ञा करके 'आङो नाऽस्त्रियाम्' वारिणा। वारि + ए की स्थिति में 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' के बल से नुम् करके णत्व करके वारिणे आदि बनेगा। वारि + आम् 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' के बल से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् करके वारि + नाम् बनने पर 'नामि' से वारीनाम् णत्व के बाद वारीणाम्। हे वारि + सु 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् होने पर अनित्यपक्षमें 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण होकर हे वारे होगा जब 'न लुमताङ्गस्य' निषेध लग जायगा तब गुण नहीं होगा हे वारि भी होगा इस तरह सम्बुद्धि मे नपुंसक इकारान्त शब्दों के दो रूप होते हैं। उकारान्त ऋकारान्त के भी रूप ऐसेही होते हैं। रूप साधने की यही प्रक्रिया है।

सर्वः सर्वा च सर्वञ्च स सा तत्त्वमहं तथा।

अयञ्चेयमिदं चासावसावद इहोदिताः॥

सर्वादि शब्दों में सर्व तद् इदम् तीन शब्दों के पदों को भी संक्षेप से साध लेना चाहिये—जैसे पुंलिंग में सर्व + सु = सर्वः, सर्व + औ = सर्वौ, सर्व + जस् 'जसः शी ७-१-१७' (सर्वनाम्नः अंगात्) सर्व + शी = 'लशक्वतद्धिते १।३।८' सर्व + ई = आद्गुणः ६।१।८६' (अचि संहितायाम्) सर्वे। सर्वम् सर्वौ सर्वान्। सर्व + टा = (इन) सर्वेन = अटकु० सर्वेण सर्वाभ्याम् सर्वैः। सर्व + ङे 'सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४' (अंगात् अतः ङेः) सर्वस्मै सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः। सर्व + ङसि 'ङसिङ्योः स्मात् स्मिनौ। ७।१।१५' सर्वस्मात् सर्वस्य सर्वयोः सर्व + आम् 'आमि सर्वनाम्नः' सुट् ७।१।५२' (अतः अङ्गात्) सर्व साम् 'बहुवचने झल्येत्' सर्वे साम् = 'आदेश प्रत्यययोः' सर्वेषाम्। सर्व ङि = सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु। हे सर्व हे सर्वौ हे सर्वे।

तद् + सु 'त्यदादीनामः ७ २।१०२' (विभक्तौ) त अ सु 'अतो गुण ६।१।९५। (पूर्वपरयोः एकम् पररूपम्) त सु 'तदोः सः सावनन्त्योः ७।२।१०६' से सु रुत्व विसर्ग सः स = तौ ते, तम् तौ तान्, तेन ताभ्याम् तैः तस्मै। तस्मात् ताभ्याम् तेभ्यः, तस्य तयोः तेषाम् तस्मिन् तयोः तेषु। 'त्यदादीनां सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः।'

इदम् + सु 'इदमो मः ७।२।१०८' (अंगस्य सौ) इदम् सु 'इदोऽय् पुंसि ७।२।१११' (इदमः सौ) अयम् + सु = अयम्। इदम् + औ 'त्यादादीनामः' इद अ + औ 'अतो गुणे,' इद + औ 'दश्च ७।२।१०९' (इदमः मः विभक्तौ) इम + औ = इमौ इमे। इमम् इमौ इमान्। इदम् + टा = इद + टा अनाप्यकः ७।२।११२' (इदमः इदः विभक्तौ) अन + टा = अन + इन = अनेन। इद + भ्याम्

'हलि लोपः ७।२।११३' (अकः इदमः इदः) अ+भ्याम् 'आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२०' सुपि च आभ्याम् अ+भिः 'नेदमद- सोरकोः ७।१।११' (भिस ऐस्) अ भिः 'बहुवचने झल्येत्' एभिः। इद+ङे इद स्मै = अस्मै आभ्याम् एभ्यः। अस्मात् अस्य अनयोः इद आम् 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इद साम्=असाम्= एषाम्। अस्मिन् अनयोः एषु।

स्त्रीलिंग में सर्वा सु='हल्ङ्याब्भ्यो' से सु के स् का लोप सर्वा सर्वे सर्वाः। सर्वाम् सर्वे सर्वाः। सर्वया सर्वाभ्याम् सर्वाभिः। सर्वा ङे 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।१४४' (ङिति आपः) सर्वस्या ए = 'वृद्धिरेचि' सर्वस्यै सर्वस्या आः=सर्वस्याः सर्वयोः सर्वासाम् सर्वस्याम्। हे सर्वे हे सर्वे हे सर्वाः। तद् सु='त्यादादीनामः' त अ सु त सु 'अजाद्यतष्टाप्' 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' सा+सु 'हल्ङ्याब्भ्यो०' सा ते ताः, तां ते ताः, तया ताभ्याम् ताभिः, तस्यै तस्याः तयोः तासाम्, तस्याम्। इदम्+सु 'इदमो मः' इदम्+ सु'यः सौ ७।२।११०' (इदमः दः) इयम्+सु 'हल्ङ्याब्भ्यो०' इयम् इमे इमाः, इमाम् इमे इमाः, अनया आभ्याम् आभिः, अस्यै, अस्याः अनयोः आसाम् अस्याम्। नपुंसकलिङ्ग--सर्व+सु'अतोऽम्' सर्वम् सर्वे सर्वानि 'अट्कु०' सर्वाणि पुनस्तद्वत् सर्वम् सर्वे सर्वाणि। शेषं पुंवत् तत्+सु 'स्वमोर्नपुंसकात्' तद् ते तानि पुनस्तद्वत् तत् ते तानि। शेषं पुंवत्। इदम् इमे इमानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्।

ऊपर से नीचे की ओर, पहले कुल एकवचन बाद सभी द्विववचन तब सभी बहुवचन बोलें जैसे – त्वम्, त्वा त्वया आदि।

	एकवचन		द्विवचन		बहुवचन	
प्रथमा	त्वम्	अहम्	युवाम्	आवाम्	यूयम्	वयम्
द्वितीया	त्वाम्	माम्	,,	,,	युष्मान्	अस्मान्
तृतीया	त्वया	मया	युवाभ्याम्	आवाभ्याम्	युष्माभिः	अस्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	मह्यम्	,,	,,	युष्मभ्यम्	अस्मभ्यम्
पञ्चमी	त्वत्	मत्	,,	,,	युष्मत्	अस्मत्
षष्ठी	तव	मम	युवयोः	आवयोः	युष्माकम्	अस्माकम्
सप्तमी	त्वयि	मयि	,,	,,	युष्मासु	अस्मासु

अदस् शब्दके रूप तो साध दिये जाते हैं--अदस् सु की स्थिति में 'अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७ (सौ) अद + औ 'वृद्धिरेचि' अदौ 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' असौ। अदस्+औ त्यदादीनामः अतो गुणे अद + औ 'वृद्धि रेचि' अदौबनने पर 'अ[२]दसोऽसे[३]र्दा[१] दु[४] दो[५] मः[६] ८।२।८०' से 'द का म और

द के बाद के स्वर औ दीर्घ ऊ हो जाने से अमू हो जाता है। अदस् + जस् अद + जस् 'जसः शी' अद + ई अदे होने पर 'एत[४] ईद्[५] बहुवचने[१] ८।२।८१' (अ[३]दसोऽ[२] से र्दाद्[४] दो[७] मः[८]) से ए का ई और द का म हो जाने पर अमी बनता है। आगे 'त्यदादीनामः' स् का अ करके 'अतो गुणे' से पररूप करके विभक्तिकार्य्य' सन्धिकार्य्य करते हुए बहुवचन में तो 'एत ईद् बहुवचने' लगता चलेगा। एकवचन द्विवचन में 'अदसोऽसेर्दादु दोमः' से सभी कार्य हो जायेंगे। अमुम् 'अमू' अमून्। अद + आ की स्थिति में अन्तरंग मत्व उत्व हो जाने पर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से अमुना बनता है। यहां 'पूर्वत्रासिद्धम्' ८।२।१' से प्राप्त मुत्वासिद्धि को 'न[४] मु[२] ने[१] ८।२।३' (असिद्धम्) रोक देताहै। अमुना अमूभ्याम् अमीभिः। अदस्मै का अमुष्मै में 'आदेश प्रत्यययोः' से मूर्धन्य ष हो जाता है। अमूभ्याम् अमीभ्यः। अदस्मात् का अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्यः। अदस्य का अमुष्य। अदयोः बनजाने पर अमुयोः। अदेषाम् का अमीषाम्। अदस्मिन् का अमुष्मिन् अमुयोः। अदेषु का अमीषु। यों ही स्त्री-लिङ्ग में असौ, अद+औ की स्थिति में 'अजाद्यतष्टाप् ४।१।४' से टाप् अनुबन्ध लोप और दीर्घकर 'औङ आपः' से शी करके अदे को अमू करते हैं। अदाः को अमूः। अदाम् को अमूम् अमू अमूः। अदया = अमुया अमूभ्याम् अमूभिः। अदस्यै का अमुष्यै, अमूभ्याम्, अमूभ्यः। अमुष्याः अमूभ्याम्, अमूभ्यः। अमुष्याः अमुयोः अमूषाम्। अमुष्याम् अमुयोः अमूषु।

नपुंसक लिङ्ग में अदस् + सु की स्थिति में 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु का लुक् हो जाता है। बाद कुछ हो ही नहीं सकता। अतः अदः रूप होता है। अदस् + औ 'त्यादादीनामः' 'अतो गुणे' अद + औ 'नपुंसकाच्च ७।१।१६' से औ की शी अनुबन्धलोप गुण इतना विभक्तिकार्य करके अदे का अमू अदानि का अमूनि। पुनः अदः अमू अमूनि। शेषं पुंलिङ्गवत् जानना चाहिये।

इस प्रकार सुप् विभक्तियों के रूपों का उपयोग बताकर अब तिङ् विभक्तियों का उपयोग बताया जा रहा है। तिङ् विभक्तियाँ 'ति' से 'ङ्' तक १८ होती हैं जिनमें ९ परस्मैपद तथा ९ आत्मनेपद हैं।

लट् वर्तमानकाल

परस्मैपद	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	परिष्कृत		रूप
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि	ति	तः	अन्ति
मध्यम "	सिप्	थस्	थ	सि	थः	थ
उत्तम "	मिप्	वस्	मस्	मि	वः	मः

आत्मनेपद

प्रथम पुरुष	त	आताम्	झ	ते	आते/इते	अते/अन्ते
मध्यम "	थास्	आथाम्	ध्वम्	से	आथे/इथे	ध्वे
उत्तम "	इङ्	वहि	महिङ्	ए	वहे	महे

इन्हीं विभक्तियों में धातुओं को जोड़ देने से आख्यात (क्रिया) पद बन जाते हैं। जैसे—अस् = (होना) धातु के पद रूप—ऊपर से नीचे—

अस्ति	स्तः[1]	सन्ति	सः	तौ	ते
असि	स्थः	स्थ	त्वम्	युवाम्	यूयम्
अस्मि	स्वः	स्मः	अहम्	आवाम्	वयम्

आस् = (बैठना) धातु का रूप—आस् + ते = आस्ते। आस् + आते = आसाते। आस् + (अते) आसते। आस् + से आस्से। आस् + आथे आसाथे। आस् + ध्वे आध्वे। आस् + ए आसे। आस् + वहे आस्वहे। आस् + महे आस्महे।

आत्मने पद के प्रत्ययों को परिष्कृत करने का प्रकार—लट् के त के अ को टित आत्मनेपदानां टे रे ३।४।७९ (धातोर्लस्य) से ए कर देने से ते हो जाता है। इसी तरह आताम् के आम् का, अन्त के अ का, आथाम् के आम् का ध्वम् के अम् का, इ का और वहि महि के इ का ए हो जाता है। 'थासः से ३।४।८०' (टि तो लस्य) से थास् का से हो जाता है।

कुछ धातुओं के तिङ् विभक्तियों में मिलते समय धातु और विभक्ति के बीच में कुछ मिलाना पड़ता है। जिसे विकरण कहते हैं। जैसे - पठ् + ति के बीचमें 'अ' लगाकर पद बनते हैं। पठ् + अ + ति =पठति। पठ + अ + तः = पठतः। पठ + अ + अन्ति = पठन्ति—यहाँ जो 'अ' आता है वह अन्ति के अ में तन्मय हो जाता है, दीर्घ नहीं होता। पठसि, पठथः, पठथ। पठामि, पठावः, पठामः।—यहाँ उत्तम पुरुष के कुछ विभक्तियोंमें 'अ' को 'आ' हो जाता है—इसका सूत्र 'अतो दीर्घोयञि ७।३।१०१'

---

१. तीनों पुरुषों के एक वचन ति सि मि को छोड़कर अन्य सभी पुरुषों के द्विवचन और बहुवचनों मे अस् धातु के 'अ' का 'श्नसोरल्लोपः ६।४।१११' (सार्वधातुके क्ङिति) से लोप हो जाता है।

(अङ्गस्य) यह भ्वादिगण कहलाता है। इस गण में जितने भी धातु हैं, उनमें 'अ' लगाकर पद बनाते हैं। जैसे वद् (बोलना) वदति, वदतः इत्यादि पद बनते हैं। (१) इस गण में इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् गुण करके बाद सन्धि करके पद बनते हैं। जैसे—भू+अति=भो अति भवति। द्रु + अति द्रो+अति= द्रवति। क्षि + अति क्षे + अति = क्षयति। नी + अति ने + अति = नयति। हृ + अति = हरति—सूत्र 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४' (इकः अङ्गस्य गुणः) 'एचोऽयवायावः' ६।१।७८।

जिन गणों में धातु और तिङ् के बीचमें कुछ न कुछ विकरण लगनेसे भिन्न-भिन्न पद बन जाते हैं ऐसे १० गण हैं। दिवादि गण में 'य' दिव् + यति—दीव्यति दीव्यतः दीव्यन्ति। पुष् (पुष्ट करना) पुष्यति पुष्यतः पुष्यन्ति आदि--तुदादि-गण में 'अ', तुद् + अति तुदति तुदतः तुदन्ति। भ्वादि के 'अ' से तुदादिके 'अ' का भेद यह है कि वहां धातुका गुण होता है। यहां 'उपधा के इक्को तो कुछ नहीं होता किन्तु अन्तके इक् को इय् उव् रिय् होता है। जैसे--नू अति अचि श्नुधातु-भ्रुवां य्वोरियङुवङौ नुवति, धु अति धुवति, मृ + अते म्रियते, आदृ + अते आद्रियते। चुरादि में णिच् (इ) लगता है और गुण वृद्धि होते हैं। चुर् + अयति चोरयति मृज् + अयति मार्जयति। घुष् + अयति घोषयति।

अन्य पद उत्तरार्द्ध में देखें।

(३) विभक्त्यर्थ—

१ रामः	राम, रामने	प्रथमा (कर्ता), ने या कोई चिह्न नहीं लगता
२ रामौ	दो राम, दो रामों ने	
३ रामाः	बहुत राम, बहुत रामों ने	
१ रामम्	राम को	द्वितीया (कर्म), को कहीं कहीं 'से' भी लगता है।
२ रामौ	दो रामों को	
३ रामान्	बहुत रामों को	
१ रामेण	राम ने या राम से	तृतीया (करण), से, ने, द्वारा, के साथ भी कहीं कहीं लगता है।
२ रामाभ्याम्	दो रामों ने या दो रामों से	
३ रामैः	बहुत रामों ने या बहुत रामों से	
१ रामाय	राम के लिये	चतुर्थी (सम्प्रदान), के लिये, को, निमित्त
२ रामाभ्याम्	दो रामों के लिये	
३ रामेभ्यः	बहुत रामों के लिये	

१ रामात् (द्)	राम से	पञ्चमी (अपादान) से
२ रामाभ्याम्	दो रामों से	
३ रामेभ्यः	बहुत रामों से	
१. रामस्य	राम का, के की	षष्ठी (सम्बन्ध) का के, की यह कारक नहीं है।
२. रामयोः	दो रामों का, के, की	
३. रामाणाम्	बहुत रामों का, के, की	
१. रामे	राम में या रामपर	सप्तमी (अधिकरण) में, पर, विषय
२. रामयोः	दो रामों में (पर)	
३. रामेषु	बहुत रामों में (पर)	
१. हे राम !	हे राम !	सम्बोधन (यह भी कारक नहीं कहाता)
२. हे रामौ !	हे दो राम !	
३. हे रामाः !	हे बहुत राम !	

जिसका क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है उसी को कारक कहतेहैं रामोऽस्ति (राम है) यहाँ राम का, होना क्रियासे सम्बन्ध है। राम को देखो। यहाँ राम का देखना क्रिया से सम्बन्ध है। हाथ से राम ने किया। यहाँ राम का और हाथ का, करना क्रिया से सम्बन्ध है। राम के लिये दो। यहाँ राम का देना क्रिया से सम्बन्ध है। राम से अलग होता है। यहाँ राम का, अलग होना क्रिया से सम्बन्ध है। राम में आसक्त है। यहाँ राम का, आसक्ति क्रिया से सम्बन्ध है। राम का बाण है। यहाँ तो राम का किसी क्रिया से सम्बन्ध नहीं है किन्तु 'बाण' से सम्बन्ध है। इसीलिए सम्बन्ध कारक नहीं। यों ही सम्बोधन का भी किसी क्रिया से सम्बन्ध नहीं होता। हे राम ! यहाँ राम के साथ कोई भी क्रिया नहीं है। संस्कृत का एक श्लोक है जिसमें सभी विभक्तियों का प्रयोग हुआ है।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचर-चमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति पृथग्जगत्स्थितिरहो रामस्य दासोऽस्म्यहम्
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम ! मामुद्धर ! ॥

कारक के सूत्र बहुत सरल हैं तथा अनुवाद के लिये उपयोगी हैं। अतः पाणिनि के ही क्रमानुसार यहाँ पर संक्षिप्त रूप में लिखे जाते हैं--कारके १।४।२३ (अधिकारसूत्रम्) (क्रियाहेतावित्यर्थः) इनका अर्थ परिशिष्ट में है।

संज्ञासूत्र —

१. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४
अलग होने में 'ध्रुवा' को अपादान कारक कहते हैं।

२. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२
दान क्रिया से जो मतलव रखे, वह संप्रदान कारक है।

३. साधकतमं करणम् १।४।४२
क्रिया में जो अति उपकारक है, वह करण कारक है।

४. आधारोऽधिकरणम् १।८।४५
आधार को अधिकरण कारक कहते हैं।

५. कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९
कर्ता का अत्यंत अभिलषित कर्म कारक होता है।

६. तथायुक्तं चानीप्सितम् १।४।५० (कर्म०)
कर्ताको अभीष्ट न होने पर भी जो क्रियासे वैसाही सम्वन्ध रखे वह भी कर्महै

७. अकथितं च १।४।५१ (कर्म)
जहाँ कोई कारक न करना हो, वहाँ कर्म कारक होता है।

८. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४
जो कार्य करने में स्वतंत्र है, वह कर्ता कारक है।

विभक्तिविधायकसूत्र —

१ अनभिहिते २।३।१ अधिकारसूत्रम् (अनुक्ते इत्यर्थः)
२ कर्मणि द्वितीया २।३।२ ३ चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३
४ कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८ ५ सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१९ (तृतीया)
६ अपादाने पञ्चमी २।३।२८ ७ सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६
८ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६
९ सम्बोधने च २।३।४७ (प्रथमा) १० षष्ठी शेषे २।३।५०
११ कर्तृकर्मणोः कृति २।३।६५ १२ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् २।३।६९

जैसे — अनूक्त कारक में द्वितीयादि विभक्तियाँ होती हैं। कर्म में द्वितीया। संप्रदान में चतुर्थी। कर्ता करण एवं सह के योग में तुतीया। अपादानमें पंचमी। अधिकरण में सप्तमी। प्रातिपदिकादि अर्थों तथा संबोधन में प्रथमा। कारक भिन्न अर्थों व कृदन्त के साथ कर्ता-कर्म में षष्ठी होती है। ल उक इत्यादि प्रत्ययों के योग में नहीं होती।

समासः

संस्कृतमें संक्षेपको समास कहते हैं। समासमें दो या उससे अधिक पदों विभक्तियों का लुक् करके एक (संक्षिप्त) शब्द बन जाता है। प्रातिपदिक होने कारण उसके भी २४ पद बनते हैं।

यों तो सात प्रकारके समास हैं; परन्तु पाँच ही प्रधान हैं—(१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) कर्मधारय, (४) बहुव्रीहि, (५) द्वन्द्व। द्विगु और नञ् समास तो तत्पुरुषकेही भेद माने गये हैं, परन्तु उनको पृथक् समास भी गिनते हैं।

अव्ययीभावः

अनव्ययः अव्ययः सम्पद्यते इत्यव्ययीभावः। जो शब्द समास होनेसे पहले तो अव्यय न हो, पर समासमें होने पर वह अव्यय हो जाय, वही अव्ययीभाव समास है।

शक्तिम् अनतिक्रम्य यथाशक्ति। इसमें 'शक्ति' शब्द तो अव्यय नहीं है, पर अव्ययीभाव समासमें पड़ जानेके कारण जैसे 'यथा' पहलेसे ही अव्ययथा वैसे 'शक्ति' यह भी अब अव्यय शब्द हो गया। इस समासकी यही विशेषता है कि पूर्वका शब्द पहलेसे ही अव्यय रहता है, समास हो जाने पर दूसरा भी अव्यय हो जाता है। यों सारा शब्द अव्ययपद बन जाता है। इसके आगे अब कोई विभक्ति नहीं रहेगी केवल 'यत्राशक्ति'। यह अव्यय पद कहलाएगा। इसी प्रकार कृष्णस्य समीपम्=उप कृष्णम्। हरौ इति = अधिहरि। पाठशालायाम् इति = अधिपाठशालम्। मक्षिकाणाम् अभावो = निर्मक्षिकम् आदि। अव्ययीभाव समासका दायरा कम है। इस समासमें पूर्वपद (पहला अव्यय) ही प्रधान होता है। जैसे—उपकृष्णम् = कृष्णके समीप यह अर्थ है। समीप ही तो प्रधान है। वह उप शब्दकाही तो अर्थ है। उप पूर्वमेंही है (प्रधान वही कहलाता है जो क्रियाके साथ बैठता है)।

तत्पुरुषः

तत्पुरुष शब्दका अर्थ जाननेके लिए जैसा विग्रह करेंगे वैसा ही विग्रह जिन जिन समासयुक्त शब्दोंका होगा, वे सभी 'तत्पुरुष' कहे जायेंगे (अर्थ जाननेके लिये जो वाक्य बोला जाता है, वही विग्रह कहलाता है।)

अब आप तत्पुरुष शब्दका विग्रह देखिए—(१) स चासौ पुरुषः तत्पुरुषः (इसी प्रथमा तत्पुरुषको 'कर्मधारय' कहते हैं।) इसी विग्रहमें यदि संख्या पूर्वमें हो

तो उसे 'द्विगु' और 'नञ्' शब्द पूर्वमें हो तो उसे 'नञ्तत्पुरुष' कहते हैं। द्वितीयासे लेकर सभी विभक्तियोंके साथ जब विग्रह करते हैं तो उन्हीं विभक्तियोंके नामसे वह तत्पुरुष कहलाता है—द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष इत्यादि। जैसे—

तं पुरुषः तत्पुरुषः।	द्वि० तत्पुरुष।
तेन पुरुषः तत्पुरुषः।	तृ० त० पु०।
तस्मै पुरुषः तत्पुरुषः।	च० तत्पु०।
तस्मात् पुरुषः तत्पुरुषः।	पञ्चमी तत्पुरुषः।
तस्य पुरुषः तत्पुरुषः।	षष्ठी तत्पु०।
तस्मिन् पुरुष तत्पुरुषः।	सप्तमी तत्पु०।

ऐसा ही विग्रह जहां-जहां हो सके उसे उसी नामका तत्पुरुष कहनेकी प्रथा है।

द्वितीय दि तत्पुरुषका प्रयोग—कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः। तेन कृतम्=तत्कृतम्। गवे ग्रासः = गोग्रासः। चोराद् भयम्=चोर-भयम्। राज्ञः पुरुषः = राज-पुरुषः। तर्के चतुरः = तर्क-चतुरः।

कर्मधारयः

केवल विशेषण विशेष्य वालेको कर्म-धारय कहते हैं।

उसीमें संख्या यदि विशेषण हो तो 'द्विगु' कहते हैं। (तत्पुरुषमें उत्तरपद प्रधान होता है)।

अब आप योंही प्रथमा तत्पुरुष (कर्मधारय) समासके प्रयोगोंका विग्रह करके समझलें-नीलं च तत् उत्पलम् = नीलोत्पलम्। सुन्दरश्चासौ बालः = सुन्दरबालः। सुन्दरी चासौ बालिका = सुन्दरबालिका (कर्मधारय)।

(यह तो सभी समासोंका नियम है कि विभक्ति उड़ाकर एक पद बना दें। कर्म-धारय तथा बहुब्रीहिके पूर्वपदको स्त्रीलिङ्ग होतो पुँल्लिङ्ग[१] बना देनेका भी नियम है। द्विगु—द्वौ गावौ द्विगुः, द्वयोः गवोः समाहारो वा[२]। सप्त च ते ऋषयः=सप्तर्षयः समासमें विभक्ति उड़ा देने पर सन्धिकी[३] सम्भावना हो तो उसे अवश्य कर लेना है। नीलोत्पलम्, सप्तर्षयः)।

---

१. सुन्दरबालिका में सुन्दरी सुन्दर हो गया।

२. इस विग्रहमें द्विगु नपुंसक होगा। पर पाणिनिजी ने दोनों विग्रहोंमें भी पुँल्लिङ्ग पढा है। द्विगुः।

३. नीलोत्पलम् और सप्तर्षयः में गुणसन्धि हो गयी है।

नञ् समासका प्रयोग—न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः। न अश्वः = अनश्वः। (इसमें न का अ रह जाता है। न् उड़ जाता है किन्तु अजादि शब्दोंमें न उलटकर अन् होकर लगता है।

पुनः पूर्वपदमें विकृत होने वाले कर्मधारयका उदाहरण—महांश्चासौ पुरुषः= महापुरुषः। यों ही द्वन्द्व में कर्म च भाग्यं च कर्मभाग्ये। एवं द्वौ च दश च द्वादशः, त्रयोदश अष्टादश इत्यादि।[१]कर्मधारय = कर्मका (विशेषणका) धारण करने वाला।

बहुव्रीहिः

इसके भी नामका जैसा विग्रह है वैसा ही इस समासके शब्दोंका विग्रह है। जैसे—बहुः व्रीहिः यस्य स बहुव्रीहिः (कृषकः)। पीतम् अम्बर यस्य स पीताम्बरः (हरिः)। जैसा 'बहुव्रीहि' शब्दका विग्रह है वैसा ही 'पीताम्बर' का भी। भेद इतना ही है कि बहुव्रीहिके दोनों शब्द पुंलिंग हैं। पीताम्बरके नपुंसक हैं। इस समासकी विशेषता यह है कि, विशेषणका विशेष्यके साथ तो समास होता है, प्रधान दूसरा पद होता है, ये दोनों पद गौण (अप्रधान) होकर दूसरेका बोध करा देते हैं। जैसे बहुत हैं व्रीहि (धान्य) जिसके, उस कृषकको बहुव्रीहि कहेंगे। बहुव्रीहिः अयं कृषकः।

ऐसे ही जहाँ जहाँ बहुव्रीहि समास होगा, वहाँ समासके दोनों शब्दोंसे भिन्न शब्द प्रधान हो जायगा। समास में आये विशेषण और विशेष्य गौण हो जायेंगे। यहां बहुत और धान्यकी कोई पूछ नहीं है। किन्तु बहुत धान्य वाला किसान लिया जा रहा है। और दोनों शब्द मिलकर दूसरेका विशेषण हो जाते हैं। यही इस समास का कर्मधारयसे भेद है। वहाँ विशेषण विशेष्य ज्योंके त्यों बने रहते हैं। पीले कपड़ेवाला पुरुष पीताम्बर कहलायेगा। कृष्ण भगवान् पीताम्बर कहे जाते हैं। योंही दृष्टः सागरो येन स दृष्टसागरः यात्री। लम्बौ कर्णौ यस्य स लम्बकर्णो हरिणः यहाँ पूर्वपद स्त्रीलिङ्ग तो पुंलिंग हो ही जाता है और उत्तरपद भी यदि स्त्रीलिंग है तो कहीं तो ह्रस्व हो जायगा और कहीं उसके अन्तमें 'क' शब्द लग जायेगा। तब वह ह्रस्व नहीं होगा। जैसे—शोभना शाला यस्य स शोभनशालः। विज्ञाः कुमार्यो यस्मिन् स विज्ञकुमारीको विद्यालयः। इत्यादि। यदि यहाँ कर्मधारय करना है तब बहुश्चासौ व्रीहिः बहुव्रीहिः। पीतं च तत् अम्बरम् 'पीताम्बरम्। ऐसे ही कर्मधारयमें विशेषण और विशेष्य ज्योंके त्यों बने ही रहेंगे।

---

१. समासमें पूर्वपदके न् का लोप, प्रथमान्त महत् का महा, द्वि का द्वा, त्रि का त्रयस्, अष्टन् का अष्टा हो जाता है।

बहुव्रीहि समासकी बहुतसी विशेषतायें हैं जो आगे चलकर ज्ञात होंगी। यहाँ सामान्यतः वचनों तथा लिंगोंके भेदकी बातें बतानी हैं। समास हुआ शब्द द्विवचन होगा तो विग्रह होगा—बहुः व्रीहिः ययोस्तौ बहुव्रीही कृषकौ। बहुवचन होगा तो बहुः व्रीहिः येषां ते बहुव्रीहयः कृषकाः। समासमें पड़े हुए शब्दोंका कोई नियम नहीं, वे चाहे एक वचन ही रहें या जिस वचनमें अन्य (विशेष्य शब्द) हो उस वचनमें भी रख सकते हैं। पर लिंग तो वे वही रखेंगे जिस लिंगका उनका अपना विशेष्य है। जैसे—पीते अम्बरे ययोस्तौ पीताम्बरौ, पीतानि अम्बराणि येषां ते पीताम्बराः। यहाँ अम्बर शब्द नपुंसक है अतः उसका विशेषण पीत शब्द उसके साथ साथ बँधा है। वचन तो अन्यपदके कारण बदलता जा रहा है, लिङ्ग नहीं बदलता।

पर समास हो चुकने परतो वह समास हुआ शब्द अन्य विशेष्य शब्दका विशेषण हो जाता है। इस कारण अब उसका लिङ्ग और वचन सभी अन्य शब्द के अनुसार ही होगा। और विग्रह करने में जो यद् शब्दका प्रयोग होता है। यस्य ययोः येषाम् आदि वे सभी अन्य शब्दके ही अनुरूप हैं। यदि अन्यशब्द स्त्रीलिंग एकवचनादि है तो यद् शब्द भी स्त्रीलिंग एक वचनादि होगा ही। पीताम्बर का दोनों लिंग और तीनों वचनोंका उदाहरण यहां दिखलाया जाता है। वैसा ही सभी बहुव्रीहि समासका विग्रह बना लेना है जैसे—ऊपर पीताम्बरका विशेष्यानुसार पुंलिङ्ग पद हो गया है।

स्त्रीलिंगमें देखिये पीतम् अम्बरम् यस्याः सा पीताम्बरा। पीते अम्बरे ययोस्ते पीताम्बरे। पीतानि अम्बराणि यासां ताः पीताम्बराः।

नपुंसकम्—पीतम् अम्बरम् यस्य तत् पीताम्बरम् (पुस्तकम्) पीते अम्बरे ययोस्ते पीताम्बरे (पुस्तके) पीतानि अम्बराणि येषां तानि पीताम्बराणि। (पुस्तकानि) बस, अन्य शब्दार्थके ही लिङ्ग वचनका पीछा करना पड़ता है।

बहुव्रीहिमें तद्गुण, अतद्गुण, व्यधिकरण, समानाधिकरण इत्यादि भेद तो आगेकी बात है।

द्वन्द्वः

द्वन्द्व शब्द भी द्वेच द्वेच द्वन्द्वे। अथवा द्वयोः समाहारः द्वन्द्वम्। जैसा द्वन्द्व शब्दका विग्रह होता है वैसा ही विग्रह जिस समासमें होता है, उसे ही द्वन्द्व समझें। इसमें सभी पद प्रधान होते हैं। कहीं उन शब्दोंका समूह प्रधान रहता है। द्वन्द्वके दो भेद हैं।—इतरेतरयोग द्वन्द्व और समाहार। जिसमें जितने शब्द हों उसीके अनुसार वचन हो और अन्तमें जिस लिङ्गका शब्द हो वही लिङ्ग हो, वह तो इतरेतर—

योग है। जैसे-रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ। रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च=राम-लक्ष्मण-भरताः। ग्रामश्च च पुरंच नगरी च ग्रामपुरनगर्यः। पाणिनिसूत्रोंमें इतरेतर-योग द्वन्द्व—चुश्च टुश्च=चुटू १।३।७' जिश्च टुश्च डुश्च=ञिटुडवः। 'आदिर्ञिटुडवः १।३।५' जहाँ जितने भी शब्द हों परन्तु समास होने पर नपुंसक लिङ्ग और एक-वचन मात्र सभी विभक्तियोंका रूप होता है। वही समाहार द्वन्द्व है। जैसे—य् च अच् च तयोः समाहारः यच् तस्मिन् यचि 'यचि भम् १।४।१८' लश्च शश्च कुश्च तेषां समाहारः लशकु 'लशक्वतद्धिते १।३।८'। इत्यादि।

इन समासोंके लिए दो श्लोक आवश्यक हैं, जो नीचे अर्थके साथ दिये जाते हैं-

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः।

इस श्लोकका अर्थ तो ऐसा है कि एक भक्त प्रार्थना करता है कि हे पुरुष! अहम् मैं द्वन्द्व हूँ यानी हम स्त्रीपुरुष दो प्राणी हैं। द्विगु दो गाय बछवा-वाला हूँ। मेरे घर में नित्यही अव्ययीभाव खर्चका अभाव रहता है अर्थात् मैं दरिद्र हूँ। मेरे पास धन नहीं हैं। मुझसे तत्=वह कर्म (काम) धारय कराइये, जिससे अहम् मैं बहुव्रीहि बहुत धान्य वाला हो जाऊँ।

अर्थ तो भिन्न है पर इस श्लोकमें १ द्वन्द्व २ द्विगु ३ अव्ययीभाव ४ तत्पुरुष ५ कर्मधारय ६ बहुव्रीहि— यों छः समासों के नाम आ गये हैं। एक नञ्समास छूटा है, जो प्रथमातत्पुरुष (कर्मधारय) का ही भेद है। दूसरा श्लोक समासोंका विग्रह बताता है। जैसे—

चकार-बहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्मधारयः।
यस्य येषां बहुव्रीहिः शेषस्तत्पुरुषो मतः।

अर्थात् जिसके विग्रहमें चकार बहुत बोलना पड़े वह द्वन्द्व है। जिसमें स चासौ (सुन्दर श्चासौ बालः) ऐसा विग्रह होता हो तो कर्मधारय है। जिसके विग्रह में 'यस्य' या 'येषां' या 'येन' इत्यादि पद कहना पड़े वह 'बहुव्रीहि' है। बाकी तत्पुरुष कहाता है। रामस्य अयनम्=रामायणम् इत्यादि।

इसी प्रकार सभी समासों का विग्रह (अर्थ) करके पूर्वविभक्तियों का लुक् करके पुनः समस्तशब्दको प्रातिपदिक मानकर स्वादि विभक्ति लगाकर रामायणम् रामायणे रामायणानि इत्यादि पद बना लेंगे।

★

सन्धिः

दो वर्णोंके अति सन्निकट होनेके कारण एक दूसरेमें कुछ विकृत होकर मिल जानेको सन्धि[1] कहते हैं। वही अलग अलग होकर जब अपने पूर्वस्वरूपमें हो जाय तो उसे सन्धिविच्छेद कहते हैं। प्रधान सन्धियाँ तीन हैं--

(१) स्वर (अच्) सन्धि।
(२) व्यञ्जन (हल्) सन्धि।
(३) विसर्ग-सन्धि।

(१) स्वर सन्धि एक स्वरको दूसरे स्वरके साथ कुछ विकार करके मिलानेको कहते हैं। जैसे राम+अयण = रामायण। देव+आलय = देवालय।

(२) व्यञ्जन सन्धि व्यञ्जनको स्वर या व्यञ्जनके साथ होनेसे कुछ विकार करके जोड़ देनेको कहते हैं। जैसे वाक्+ईश = वागीश। जगत्+नाथ = जगन्नाथ।

(३) विसर्ग-सन्धि—विसर्गका स्वर या व्यञ्जनके साथ होने से कुछ विकार करके जोड़ देनेको कहते हैं। जैसे रामः+अस्ति = रामोऽस्ति। रामः+तथा = रामस्तथा।

सन्धि विचार

स्वर सन्धिके मुख्य पाँच भेद होते हैं

१ दीर्घ। २ गुण।
३ वृद्धि। ४ यण्।
५ अयादि।

१ दीर्घ--अक्+अक् = दीर्घ। अक् के बाद सवर्ण अक् हो तो दोनों मिलकर दीर्घ हो जाते हैं।[2]

सफाई—ह्रस्व या दीर्घ अक् (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के बाद इसीके सवर्ण (समान) ह्रस्व या दीर्घ स्वर (अक्) हो तो दोनों मिलकर दीर्घ हो जाता है।

---

१. संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।

२. अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१।

जैसे—राम+अयन=रामायण। देव+आगार=देवागार। महा+अधिकार=महाधिकार। महा+आलय=महालय। कपि+इन्द्र=कपीन्द्र। हरि+ईश=हरीश। गौरी+इच्छा=गौरीच्छा। गौरी+ईश=गौरीश। लघु+उत्सव=लघूत्सव। भानु+ऊर्ध्वं=भानूर्ध्वम्। वधू+उत्सव=वधूत्सव। वधू+ऊर्ध्वम्=वधूर्ध्वम्। (सरयू+ऊर्मिः=सरयूर्मिः) इत्यादि।

२ गुणसन्धि—अ, आ+इक्=एङ् अर् अल्। 'अ आ' से, इक् परे हो तो गुण हो जाता है। ए. ओ. अ को गुण कहते हैं।[१]

सफाई—ह्रस्व या दीर्घ आकार के बाद ह्रस्व या दीर्घ इ उ, ऋ, ऌ हो तो दोनों मिलकर क्रमशः ए, ओ और अर्, अल् हो जाता है। जैसे—देव+इन्द्र=देवेन्द्र। देव+ईश=देवेश। रमा+इच्छा=रमेच्छा। गङ्गा+ईश=गङ्गेश। सूर्य्य+उदय=सूर्य्योदय। चन्द्र+ऊर्ध्वम=चन्द्रोर्ध्वम्। गङ्गा+उत्सव=गङ्गोत्सव। लता+ऊर्ध्वम्=लतोर्ध्वम्। देव+ऋषि=देवर्षि। महा+ऋषि=महर्षि। तव+ऌकारः=तवल्कारः। महा+ऌकारः=महल्कारः।

३ वृद्धिसन्धि—अ, आ+एच्=ऐच्। अ, आसे एच् परे हो तो वृद्धि होती है। आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं।[२]

सफाई—ह्रस्व या दीर्घ अकारके बाद, ए, ओ, ऐ, औ हो तो दोनों मिलकर ऐ औ हो जाता है। जैसे—एक+एकम्=एकैकम्। सदा+एव=सदैव। लता+एधते=लतैधते। महा+ऐश्वर्य्यम्=महैश्वर्य्यम्। जल+ओघः=जलौघः। महा+ओषधिः=महौषधिः। कृष्ण+औत्सुक्यम्=कृष्णौत्सुक्यम्। महा+औदार्य्यम्=महौदार्य्यम्।

४ यण् सन्धि—इक्+अच्=यण् अच्। इक्का यण् होता है यदि आगे अच् परे हो।[३]

सफाई—ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, ऌ, के बाद कोई भी विजातीय स्वर हो तो क्रमशः य् व् र् ल् हो जाता है। जैसे यदि+अपि=यद्यपि। इति+आदि=इत्यादि। दधि+उदकम्=दध्युदकम्। दधि+ऋणम्=दध्यृणम्। अश्विनी+ऋक्षम्=अश्विन्यृक्षम्। वारि+एधते=वार्य्येधते। नदी+ओघः=नद्योघः। गौरी+ऐश्वर्य्यम्=गौर्य्यैश्वर्य्यम्। लक्ष्मी+औत्सुक्यम्=लक्ष्म्यौत्सुक्यम्। ननु+अत्र=नन्वत्र। धेनु+आ

---

१. आद्गुणः ६।१।८७ अदेङ् गुणः १।१।२

२. वृद्धिरेचि ६।१।८८ वृद्धिरादैच् १।१।१

३. इको यणचि ६।१।७७

मनम् = धेन्वागमनम् । ननु+इह = नन्विह । मृदु + ईशः = मृद्वीशः । मधु + ऋतुः मध्वृतुः । मधु+एधते = मध्वेधते । सूनु + ओजः = सून्वोजः । वधू + ऐश्वर्य्यम् = वध्वैश्वर्यम् । पितृ + अर्थः = पित्रर्थः । पितृ + आखुः=पित्राखुः । मातृ + इच्छा = मात्रिच्छा । स्वसृ+उत्सवः = स्वस्रुत्सवः । मातृ + एधनम् = मात्रेधनम् । नृ+ओजः = न्रोजः । दातृ + ऐश्वर्य्यम् = दात्रैश्वर्य्यम् । मातृ + औत्सुक्यम् = मात्रौत्सुक्यम् । ऌ + अकारौ = लकारौ । ऌ+इति = लिति ।

५ अयादि सन्धि—एच्+अच् = अयादि । एच्के बाद यदि अच् हो तो एच्का क्रमशः अय्, अव्, आय् आव् होता है ।[1]

सफाई – ए ओ ऐ औका क्रमशः अय् अव् आय् आव् हो जाता है यदि आगे कोई भी स्वर हो जैसे--ने + अनम् = नयनम् । भो + अनम् = भवनम् । नै + अकः = नायकः । पौ + अकः = पावकः । गो + आ = गवा । गो + ए = गवे । गो + इ=गवि । गो + ओः = गवोः । गो + औत्कण्ठ्यम् = गवौत्कण्ठ्यम् । नौ + आ = नावा । नौ + ए=नावे । नौ + ओः=नावोः । नौ + इ=नावि । इत्यादि ।

अपवाद :--६ पूर्वरूप । ७ प्रकृतिभाव ।

६—पदान्त एङ् + ह्रस्व अ = एङ्ऽ । पदान्त एङ्से अ परे हो तो 'अ' एङ् में मिल जाता है ।[2]

सफाई पदान्त ए, ओ, के बाद यदि सिर्फ अ हो तो अ उसी ए, ओ में मिल जाता है । जैसे—रामे + अत्र = रामेऽत्र । भानो + अव=भानोऽव ।

७ – द्विवचन ई ऊ, ए + अच्=यथापूर्व । धातु या शब्दके द्विवचन रूप, दीर्घ ई, ऊ और ए की कोई सन्धि नहीं होती ।[3]

सफाई—किसी धातु या शब्दके द्विवचन रूप यदि दीर्घ ई, ऊ और ए हो तो उसकी कोई सन्धि नहीं होती है, आगे कोई भी स्वर हो । जैसे—कवी + इह । हरी+ आगतौ । भानू + उदितौ । साधू + आगच्छतः । माले + आनय । अञ्जने + अधुना । लते + एते । नेत्रे + अमू । पचेते + अमू ।

---

१. एचोऽयवायावः ६।१।७८

२. एङः पदान्तादति । ६।१।१०९

३. ईदूदेद् द्विवचनम् प्रगृह्यम् ।१।१।११

व्यंजन-(हल्) सन्धि

(१) ह्रस्वस्वर-ङम् + अच्=दो ङम् अच्। ह्रस्व स्वरके बाद ङ्, ण् न् (ङम्) डबल हो जाते हैं यदि उसके बाद कोई भी स्वर हो।

सफाई—ह्रस्व स्वर अ इ उ ऋ के बाद यदि ङ्, ण् न् हो और उसके बाद नवों स्वरों में कोई भी स्वर हो तो ङ्, ण्, न् दो लिखे और बोले जायेंगे जैसे—प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा, युङ्+इह=युङ्ङिह, प्रत्यङ्+एधते=प्रत्यङ्ङेधते, सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः, तस्मिन्+अद्रौ=तस्मिन्नद्रौ, तस्मिन्+आरामे=तस्मिन्नारामे, तस्मिन्+उत्सवे=तस्मिन्नुत्सवे, सन्+एधते—सन्नेधते[१]।

(२) न्+छव्=अनुस्वार शर्, छव्। 'न्' के बाद (छव्) प्रत्याहारके (छठथ चटत छः) अक्षर हों तो 'न्' का अनुस्वार हो जाता है और आगे अक्षरके स्थानानुसार सकार, शकार षकार (छव्) प्रत्याहारके अक्षरमें लग जाता है।[२]

सफाई—यदि हलन्त 'न्' कार अक्षर के बाद 'छव्' अर्थात् त, थ, च, छ, ट, ठ ये ही दन्त्य तालव्य मूर्द्धन्य छ अक्षर हों तो 'न्' का तो अनुस्वार हो जाता है और दन्त्य तालव्य और मूर्द्धन्य अक्षरोंमें क्रमशः दन्त्य तालव्य और मूर्द्धन्य स्, श् और ष् जुट जाता है। जैसे राजन्+तथा=राजंस्तथा, तस्मिन+थकारे=तस्मिंस्थकारे। राजन्+चल=राजंश्चल। दोषान्+छादय=दोषांश्छादय। गच्छन्+टीकते=गच्छंष्टीकते। पठन्+ठक्कुरः=पठंष्ठक्कुरः।

(३) म्, न्+शल, रेफ=अनुस्वार+शल् र। शल् और रकारसे पहले यदि पदान्त या अपदान्त 'म्' और सिर्फ अपदान्त न् हो तो उनका अनुस्वार हो जाता है। स्वरसे पहले यदि म् या न् हो तो वह उसी स्वरमें मिल जाता है।[३]

सफाई—कोई भी म् और सिर्फ अपदान्त न् के बाद यदि कोई भी (शल्) श ष स ह व्यंजन और रेफ हो तो उस म् और न् का अनुस्वार हो जायगा। हाँ यदि म्, न् के बाद कोई स्वर हो तो वह उसी स्वरमें मिल जाता है। जैसे-हरिम्+हरति=हरिं हरति। हरिम्+श्रितः=हरिं श्रितः। रामम्+सरति

---

१. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्।८।३।३२

२. नश्छव्यप्रशान् ८।३।४ (अमरे रु)
खरवसानयो र्विसर्जनीयः ८।३।१५ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४
स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०। ष्टुना ष्टुः ८।४।४१।

३. मोऽनुस्वारः ८।३।२३ नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४।

=रामं सरति। फलम्+षष्ठम्=फलं षष्ठम्। चक्रम्+रौति=चक्रं रौति। नेत्रम् + रुजति=नेत्रं रुजति। सम्+स्था=संस्था। पुम्+सः=पुंसः। भ्रम्+शः=भ्रंशः। आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते।हन्+सः=हंसः। विन्+शः =विंशः। सिन्+हः=सिंहः। विद्वान्+सः=विद्वांसः। दन्+ष्ट्रा=दंष्ट्रा। पिन्+षन्ति=पिंषन्ति।[१] किम्+अत्र=किमत्र। रामान्+इह=रामानिह।

(४) म्+यय्=(ं) अनुस्वार या परसवर्ण। पदान्त 'म्' के बाद यदि 'यय्' (स्पर्श और य, व, ल) हो तो विकल्प से अनुस्वार होता है। जहाँ अनुस्वार नहीं होता वहाँ परसवर्ण हो जाता है।

सफाई – पदान्त 'म्' का तो 'यय्' (वर्णके सभी अक्षर और य व ल,) से पहले विकल्पसे अनुस्वर होता है। दूसरे पक्षमें परसवर्ण अर्थात् आगेके वर्गका पंचम अक्षर य, व, ल के पहले स्वरके ऊपर चन्द्र बिन्दु देकर य, व, ल को डबल कर देते हैं और अपदान्त म् न् का तो यय् के पहले यही अन्तिम एक परसवर्ण वाली ही क्रिया होती है। जैसे पदान्तमें त्वम्+करोषि=त्वं करोषि, त्वङ्करोषि। सम्+यावः=संयावः, सँय्यावः। सम्+वादः=संवादः, सँव्वादः। सम्+वत्=संवत्, सव्वत्। सम्+लापः=संलापः, सँल्लापः। अपदान्त में पम्पा, लङ्का, चञ्चलः, दण्ड, तन्तु, हिन्दी इत्यादि।

(५) चय्+अश्=जश् अश् पदके अन्तके चय् का जश् हो जाता है।[२]

सफाई झल् में सिर्फ चय् (च् ट् त् क् प्) का जश् (ज् ड् द् ग् ब्) होताहै, यदि चय् के बाद अश् हो जैसे–वाक्+ईशः=वागीशः। तत्+गच्छति= तद्गच्छति। तत्+बन्धनम्=तद् बन्धनम्। षट्+डकाराः=षड्डकाराः। षट्+ वध्वः=षड्वध्वः। अच्+झल्=अज्झल् गुप्+बन्धः=गुब्बन्धः। ककुप्+ भासते=ककुब्भासते।

(६) चय्+ञम्=ञम्, ञम्। चय् के बाद यदि अनुनासिक (ञम्) अक्षर हो तो चय् विकल्पसे अनुनासिक (ञम्) हो जाता है। एक पक्ष में नं० ५ नियमके अनुसार अपना तीसरा अक्षर भी होता है।

सफाई – चय् (च् ट् त् क् प्) के बाद यदि कोई भी अनुनासिक 'ञम्' (ञ, ण, न, ङ, म) हो तो चय् अपना पंचम अनुनासिक (ञम्) भी हो

---

१. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८।
वा पदान्तस्य ८।४।५९ (ययि)।
२. झलां जशोऽन्ते ८।२।३९।

जाता है।[१] एक पक्षमें पाँचवा नियम भी लगता है। जैसे - वाक्+नयति= वाङ्नयति। वाक्+मय=वाङ्मय। जगत्+नाथ=जगन्नाथ। षट्+णकाराः= षण्णकाराः। आट्+नदी आण्नदी। ङ्मुट्+नित्यम्=ङ्मुण्नित्यम् इत्यादि।

(७) जश्+खर् चय् खर्। जश् के बाद खर् (अघोष) १३ अक्षर हो तो जश् क्रमशः चय् हो जाता है[२]।

सफाई--जश् (ज् ड् द् ग् ब्) के बाद कोई भी खर्) अघोषके १३ अक्षर (वर्गका पहला, दूसरा और श, स, ष) हो तो जश् क्रमशः चय् (च् ट् त् क् प्) हो जाता है। जैसे--वाग्+कृता=वाक्कृता। तद्+तनोति=तत्तनोति। गुब्+पचति=गुप्पचति। षड्+टीकाः=षट्टीकः। इत्यादि।

(८) स्तु+श्चु, ष्टु=श्चु, ष्टु। तवर्ग, सकार का चवर्ग, शकार और टवर्ग, षकार से योग रहने पर तवर्ग का चवर्ग और टवर्ग, सकार का शकार और षकार यथाक्रम हो जाता है।[३]

सफाई--यदि दन्त्य अक्षर 'तु और स' का तालव्य अक्षर 'चु' और 'श' तथा मूर्द्धन्य अक्षर 'टु' और 'ष' से योग हो तो 'तु' और 'स' का तालव्य अक्षरों के साथ तालव्य और मूर्द्धन्य अक्षरों के साथ मूर्द्धन्य अक्षर स्थान यत्नानुसार हो जाता है। अर्थात् तु (त, द, न) का चु (च, ज, ञ) तथा टु (ट ड ण) और 'स' का 'श' 'ष' हो जाताहै। जैसे-सत्+चित्=सच्चित्। शार्ङ्गिन्+जय= शार्ङ्गिञ्जय। तत्+टीका=तट्टीका। चक्रिन्+ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे। मरुद्+ जयः=मरुज्जयः। मरुद्+डिण्डिमः=मरुड्डिण्डिमः। रामस्+शेते=रामश्शेते। रामस्+षष्ठः रामष्षठः।

(९) चय्+श् अम्=चयछ अम्। चय्के बाद, श हो और उसके बाद अम् प्रत्याहार का कोई अक्षर हो तो 'श' का 'छ' हो जाता है।[४]

सफाई-च् ट् त् क् प् के बाद यदि तालव्य 'श' हो और उसके बाद 'अम्' प्रत्याहारका कोई अक्षर हो तो, 'श' का छ, हो जाता है। जैसे-तत्+ शिवः ताच्छिवः। वाक्+शूरः--वाक्छूरः। षट्+शेरते--षट्छेरते। ककुप्+ शेते=ककुप्छेते। तत्+श्लोकः--तच्छ्लोकः। इत्यादि।

---

१. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिकोवा ८।४।४५।
२. खरि च ८।४।५५.
३. स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४० ष्टुना ष्टुः ८।४।४१।
४. शश्छोऽटि ८।४।६३ (छत्वमतीति वाच्यम्)।

(१०) चय् + ह – जश्, झष्। चय् के बाद यदि 'ह' हो तो उसका 'झष्' पूर्व अक्षर का चौथा अक्षर हो जाता है और पूर्व अक्षर भी पाँचवें नियम के अनुसार अपना तीसरा जश् हो जाता है।[१]

सफाई—च ट त क प के बाद यदि 'ह' हो तो वह पूर्व वर्ण का चौथा झष् होगा और पूर्व वर्ण पांचवें नियम के अनुसार अपना तीसरा होगा। जैसेः—वाक् + हरि—वाग्घरिः। तत् + हविः—तद्धविः। षट् + हलानि—षड्ढलानि। ककुप् + हसति—ककुब्भसति। इत्यादि।

(११) तु + ल – ल्ल। 'त' वर्ग के बाद 'ल' हो तो तवर्ग का, ल हो जाता है।[२]

सफाई यदि त्, द्, न् के बाद 'ल' हो तो वे तीनों अक्षर 'ल' हो जायँगे। परन्तु 'न' अनुनासिक है तो उसका 'ल' भी अनुनासिक ही होगा। जैसे—तत् + लयः तल्लयः। विपद + लयः—विपल्लयः। विद्वान् + लिखति—विद्वाँल्लिखति।

(१२) ह्रस्वस्वर + छ—च्छ। ह्रस्व स्वर के बाद 'छ' हो तो वह 'च्छ' हो जाता है।[३] सफाई—ह्रस्व करके बाद केवल 'छ' हो तो उस 'छ' के पहले एक 'त्' लगता है, उस 'त्' का भी नं० ८ वें रूल से 'च' कर देने से च्छ हो जाता है। जैसे—संस्कृत + छात्रः— संस्कृतच्छात्रः। हरि + छाया हरिच्छाया। इति हल् सन्धिः।

विसर्ग–सन्धिः

विसर्ग सन्धि के मुख्य दो भेद हैं। एक (खर्) अघोष अक्षरों में विसर्ग की कुछ सन्धि होगी। दूसरा (अश्) घोष अक्षरों में विसर्ग की कुछ सन्धि होगी। इनमें पहले (अ.प्.) खर् में तो चार कार्य्य होते हैं। विसर्ग का ज्यों का त्यों रह जाना। जिह्वामूलीय। उपध्मानीय यथास्थान। दन्त्य, तालव्य, मूर्द्धन्य स, श, ष होना।[४] जैसे—

(१) विसर्ग (ः) + खर्=ःखरः। विसर्ग के बाद यदि (खर्) अघोष १३ अक्षर हों तो एक पक्ष में विसर्ग का विसर्ग ही रह जाता है। पक्षान्तर में (२) 'क ख' परे हो तो ≍ आधा विसर्ग जिह्वामूलीय (३) 'प फ' परे हो तो ≍ आधा विसर्ग उपध्मानीय। (४) त थ स में दन्त्य 'स', च, छ श में तालव्य 'श' और ट ठ ष में मूर्द्धन्य 'ष' हो जाता है। जैसेः—रामः करोपि=राम≍

---

१. झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२ २. तोर्लि ८।४।६०

३. छे च (तुक्) ६।१।७३

४. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५ कुप्वो ≍क ≍पौ च ८।३।३७ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४ (खरि) स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४० ष्टुना ष्टुः ।८।४।४१

करोति। रामः पचति=राम पचति। रामः तथा रामस्तथा। रामः चलति=रामश्चलति। रामः टीकते—रामष्टीकते। रामः + सरति—रामस्सरति। रामः शेते=रामश्शेते। रामः षष्ठः=रामष्षष्ठः (सशषमें पक्षमें विसर्ग भी होता है)

दूसरे ग्रुप (अश्) में विसर्गके पूर्व स्वरके अनुसार तीन कार्य होते हैं। जैसे--[1] इच् के बाद रेफ[2] आ, के बाद लोप[3] अ के बाद लोप और 'उ' दोनों होते हैं। जैसे-(१) इच् का विसर्ग + अश्—रेफ अश्। इच्के बादके विसर्गका रेफ हो जाता है यदि विसर्गके बाद अश् हो जैसेः-हरिः+अत्र—हरिरत्र, रामैः+अत्र—रामैरत्र। ग्लौः+हसति—ग्लौर्हसति।

(२) आ का विसर्गः + अश्—लोप अश्। आके बाद के विसर्ग का लोप होता है यदि विसर्ग के आगे 'अश्' हो (बाद सन्धि नहीं होती) जैसे--देवाः+अत्र—देवा अत्र देवाः+हसन्ति—देवा हसन्ति।

(३) अ का विसर्गः+आच्, अ, हश्—लोप, उ। अ के बाद के विसर्ग का 'आच्' परे रहने पर लोप और 'अ' तथा हश् परे रहने पर 'उ' होता है। (बाद लोपस्थल में सन्धि नहीं होती।) 'उ' होने पर स्वरसन्धि कर देने से पूरी सन्धि हो जाती है। जैसे:—रामः+आगच्छति—राम आगच्छति। रामः+अत्र—राम उ अत्र-रामो अत्र-रामोऽत्र। रामः हसति—रामो हसति।

(४) अपवाद—सः, एषः + आल्—स एष + आल्। सः और एषः के अन्तवाले विसर्गका लोप हो जाता है 'अ' छोड़कर कोई भी अक्षर आगे परे हो तो जैसे--सः+आयाति—स आयाति। एषः+आगच्छति—एष आगच्छति। सः+करोति—स करोति। एषः+सरति—एष सरति। आल्किम् सः+अत्र—सोऽत्र। एषः अत्र एषोऽत्र।[4]

(५) रेफ + रेफ—पूर्व दीर्घ, पूर्व-रेफ-लोप। रेफके बाद रेफ हो तो पूर्व रेफका लोप होकर पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है: जैसे--पुनर्+रमते—पुनारमते। हरिर्+रम्यः—हरीरम्यः।[5]

---

१. ससजुषो रुः ८।२।६६

२. भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७ लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९ हलि सर्वेषाम् ८।३।२२

३. अतोरोरप्लुतादप्लुते ८।१।११३ हशि च ६।१।११४

४. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२

५. रो रि ८।३।१४ (लोपः) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११

लिङ्गानुशासनम्

जो शब्द घञ्, अच्, अप् प्रत्यय लगा कर बने हैं, वे पुलिङ्ग होते हैं। जैसे—रम्+घञ्—अ— वृद्धि (अत उपदायाः) राम+सु रामः। कृ+अप्—अ—गुण (सार्व धातुकार्द्धधातुकयोः)—कर+सु करः। यु+अप् अ—गुण—(सार्व०) —ओ—यो—अवादेशः यव+सु यवः।

कि प्रत्यय वाले = घुसंज्ञक धातु से बने शब्द, जैसे—विधिः, निधिः। [1] दार अक्षत लाज असु प्राग ये शब्द पुंलिङ्ग और बहुवचन ही होते हैं। इमें दशरथस्य दाराः। अक्षताः पान्तु। वधूः लाजान् वपति वह्नौ। असवः कस्य न प्रियाः। 'ऊर्ध्वं प्राणा उत्क्रामन्ति, यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभि वादाभ्यां, पुनस्तान् प्रतिपद्यते' (मनुः २।१२०) जोपधमें ध्वज गज मुञ्ज पुञ्ज (पुंलिङ्ग) शोपधमें वंश अंश पुरोडाश (पुंलिङ्ग) आहव और संग्राम सारथि अतिथि कुक्षि वस्ति पाणि अञ्जलि (पुंलिङ्ग) भृत्र अमित्र छात्र पुत्र मन्त्र वृत्र मेढ्र उष्ट्र (पुंलिङ्ग)

मि, ति, नि अन्त वाले शब्द स्त्रीलिंग होते हैं—जैसे—भूमिः कृतिः, मतिः, अवनिः, हानिः। विंशत्यादि आनवति संख्यावाची शब्द स्त्रीलिंग और एकवचन होते हैं। जैसे—विंशतिः, त्रिंशत्। [2]

भावार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त नपुंसक होता है। जैसे—हसनम् गमनम्। इष् उष् प्रत्यय वाले शब्द भी नपुंसक होते हैं। जैसे—सर्पिष्, धनुष्, लोपध-त्रोपध शब्द भी नपुंसक होते हैं। जैसे—फलम्, मूलम्, मित्रम्, छत्रम्। इत्यादि। [3] त्व ष्यञ् प्रत्यय वाले तद्धितान्त शब्द (नपुंसक) घटत्वम्। ब्राह्मण्यम् इत्यादि। समाहार-द्वन्द्व समास नपुंस तथा एकवचन ही होता है। पाणिपादम्। शतादि संख्या शब्द नपुंसक एकवचन होते है। पर कोटि स्त्रीलिङ्ग है। शतं जनाः सन्ति। सहस्रं स्त्रियः सन्ति।

तीनों लिंगों के शब्दों के पद (रूप) बता चुके हैं। यहाँ स्त्रीलिंग शब्द बनाने के विशेष सूत्र संक्षेप में लिख देते हैं जो स्त्रियाम् ४।१।३ सूत्र के अधिकार में आते हैं।

---

१. ऋदोरप् ३।३।५७ एरच्—३।३।५६, उपसर्गे घोः किः ३।३।९२

२. स्त्रियांक्तिन् ३।३।९४। पंक्तिविंशति त्रिंशच्चत्वारिंशत् पञ्चाशत्षष्टि सप्तत्यशीति-नवतिशतम् ५।१।५८

३. युवोरनाकौ ७।१।१। नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४। ल्युट् च—३।३।११५

अजाद्यतष्टाप् ४।१।४ (प्रातिपदिकात् स्त्रियाम्) स्त्री लिंग में अजादिगण के शब्दोंसे तथा अदन्त शब्दों से टाप् प्रत्यय होता है। जैसे—अजा, अश्वा क्रुञ्चा देवविशा दिशा वाचा निशा गिरा आदयः। अदन्ता—देवदत्ता विष्णुदेवा आदि।

ऋन्नेभ्योङीप् ४।१।५ (प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियाम्) ऋदन्त शब्दों से नकारान्त शब्दों से तो ङीप् होता है। जैसे कर्त्री करिणी मालिनी आदि। स्त्रीलिंग में—उगितश्च ४।१।६ (स्त्रियां ङीप्) पठत् पठन्ती। पचत् पचन्ती। कुर्वत् कुर्वती। स्नान्तीवाम्यसिचज्जलैः (इति भट्टिः) स्नाती वा। तुदती तुदन्ती। भवती भगवती कृतवतीत्यादि। 'वयसि प्रथमे ४।१।२० (प्रातिपदिकात् स्त्रियांङीप्) प्रथम उम्रवाले शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् होता है—कुमारी, किशोरी, तरुणी आदि।

अन्यतो ङीष् ४।१४०। (प्रातिपदिकात् स्त्रियाम्) तोपधभिन्न प्रातिपदिकसे स्त्री लिङ्ग में ङीष् होता है। कल्माषी शार्ङ्गी आदि।

षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१ (ङीष् स्त्रियां प्रतिपदिकेभ्यः) षित् प्रत्ययान्त तथा गौरादि शब्दों से स्त्री लिंग में ङीष् होता है। नर्तकी, पराकी, गौरी, रोहिणी आदि।

'पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८' (प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्) पुरुष योग में प्रातिपदिक से ङीप् होता है। गोपस्य स्त्री गोपी। हंसी, कुक्कुटी। नृनरयोर्वृद्धिश्च नुः नरस्य वा स्त्री या नारी।

इन्द्र वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्य यवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक् ४।१।४९ (स्त्रियां ङीप्) इन्द्राणी वारुणानी भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी मृडानी (हिमारण्योर्महत्वे) महद् हिमम् हिमानी। महद् अरण्यम् अरण्यानी। यवनाद् लिप्याम् यवनानी। या स्वयं शिक्षयित्री सा आचार्या आचार्यस्य स्त्री आचार्याणी। आचार्यी (वानुक् मातुलाचार्ययोः) मातुलानी मातुली। 'यूनस्तिः ४।१।७७' यूनः स्त्री युवतिः युवत्वजाति विशिष्टा स्त्री वा युवतिः।

कुछ शब्द अविशिष्ट लिङ्गवाले होते हैं। जैसे—कति युष्मदस्मदः कति पुमांसः। कति स्त्रियः। कति पुस्तकानि। त्वं पुमान्। त्वं स्त्री। त्वं क्लीव मसि ब्रह्मन्। अहमपि तथा। ष्णान्ता संख्या। पञ्च प्राणाः पञ्च नद्यः। पञ्च रत्नानि। एवं षट्। कृत्य प्रत्ययान्ताः शब्दाः—पाठ्योग्रन्थः। पाठ्या संहिता। पाठ्यं व्याकरणम्। सर्वादीनि च। सर्वो लोकः। सर्वा उपनिषदः। सर्वं शास्त्रम्। द्विशब्द द्विवचन ही है। त्रिचतुरादिशब्दाः अष्टादशान्ता बहुत्वे। त्रयः पुमांसः। तिस्रः कन्याः। त्रीणि पदानि। चत्वारो वेदाः। चतस्रो नद्यः। चत्वारि पदानि। इत्यादि पाणिनि लिङ्गानुशासन देखें। अमर कोश से भी लिङ्गका ज्ञान होता है।

तद्धित

जैसे पुल्लिंग शब्द से स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते हैं, वैसे ही शब्द से तद्धित प्रत्यय लगाकर प्रातिपादिक बनाये जाते हैं। उन तद्धित प्रत्ययों के लिए 'तद्धिताः ४।१।७६' का अधिकार पञ्चम अध्यायके अन्तिमसूत्र 'निष्प्रमाणिश्च ५।४।१६०' तक है। इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि १११४ (एक हजार एकसौ चौदह) सूत्रोंसे जो भी प्रत्यय होंगे, वे सभी तद्धित होंगे। उन प्रत्ययोंके जोड़से बने सभी शब्द तद्धितान्त प्रातिपादिक कहायेंगे। उन के आगे स्वादि विभक्ति लगाकर सुबन्तपद बनाया जायगा। तद्धित शब्द का अर्थ है—तस्मै हितः हितकरः तद्धितः। अर्थात् तद्धितान्तका प्रयोग करने वालेका जो हितकरे वह तद्धित कहाता है। अर्थात् तद्धितान्त प्रयोग बोलने वाला बड़ा वैयाकरण कहाता है। तो तद्धित प्रत्ययने अपने प्रयोक्ताका हित किया। इसी कारण पाणिनिजीने उसका सार्थक नाम रखा है। तद्धित। जैसे— दशरथस्य पुत्रः ऐसा साधारण पण्डित जहां बोलेगा, वहां ही वैयाकरण पण्डित 'दाशरथिः' ऐसा प्रयोग बोलेगा। इससे लोगोंको भान होगा कि अहो यह ता बड़े पण्डित हैं। दशरथस्य पुत्रः न कहकर एकही पद दाशरथिः बोल गये। यहां पर 'दशरथस्य अपत्यम् पुमान्' इस विग्रहमें सुबन्त षष्ठ्यन्त दशरथ शब्दसे 'तद्धिताः ४।१।७६' तथा 'समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२' के अधिकारमें 'तस्यापत्यम् ४।१।९२' (अण्) से प्राप्त अण् प्रत्ययको बाँधकर 'अत इञ् ४।१।९५' (तस्यापत्यम् इत्यर्थे प्रथमात् समर्थात् इञ् प्रत्ययः परः भ्वति स च तद्धितः) से इञ् प्रत्यय करके तद्धितका विशेषकार्य्य 'तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७' (अङ्गस्य अचां आदेः अचः वृद्धिः ञिति णिति तद्धिते) से आदि अच् दशरथ शब्दके दवाले अकी आ वृद्धि हो जाती है। (यही तद्धितकी विशेषता है कि तद्धितेतरस्थलमें तो ञित् णित् प्रत्ययोंमें अन्तिम इक

---

१. विशेष्य निघ्न शब्दका अर्थ है विशेष्यके आधीन रहने वाला शब्द। यह है पारिभाषिक शब्द। वैयाकरणोंमें ही इसका प्रयोग होता है। जिस शब्दके लिङ्ग वचन विभक्ति आदि विशेष्यके अनुसार होते हैं, वेही शब्द विशेष्यनिघ्न कहाते हैं। जो शब्द विशिष्ट लिङ्ग वचन विभक्ति वाले होते हैं, उन्हें अजहल्लिङ्ग अजहद्वचन अजहद्विभक्ति आदि नाम दिये जाते हैं। जैसे मित्र शब्द अजहल्लिङ्ग शब्द है। दार शब्द अजहल्लिङ्ग वचन है। स्वयम् शब्द अजहद्विभक्तिवचन होता हुआ अव्यय है। एक द्वि, त्रि चतुर् आदि अजहद्वचन हैं।

और उपधा अकारकी वृद्धि होती है पर तद्धितमें आदि अचकी वृद्धि होती है। सो भी ञित् णित् और कित् प्रत्ययको निमित्त मानकर) थवाले अकारका तो भ-संज्ञा हो जाने पर 'यस्येतिच ६।४।१४८' (ईकारे तद्धिते च परे भस्य अवर्णस्य इवर्णस्य च लोपः) से लोपकर के प्रत्यय वाले इकारमें मिलाकर दाशरथि इकारान्त विशेष्य[1] निघ्नशब्द बना लेते हैं। कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६ से प्रातिपदिक संज्ञा करके स्वादि विभक्ति लाकर दाशरथिः दाशरथी दाशरथयः। इत्यादि पद बना लिया जाता है। योंही 'इन्द्रो देवता अस्य' इस विग्रहमें इन्द्र प्रातिपदिक से 'सास्य देवता ४।२।२३' (सा देवता अस्य इत्यर्थे प्रथमात् सुबन्तात् यथाविहितः प्रत्ययः स्यात्) से इन्द्रः इस प्रथमान्त पहले शब्दसे तद्धित अण् प्रत्यय होता है। तो इन्द्र सु अण्की स्थितिमें कृत्तद्धित समासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा हो जानेसे 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से सुप्का लुक् करके अनुबन्ध लोप करके इन्द्र + अकी स्थितिमें 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच इको ऐ वृद्धि होती है। इन्द्र वाले अका 'यस्येतिच' से लोप करके अ प्रत्ययमें मिलाकर ऐन्द्र ऐसा विशेष्यनिघ्न शब्द बन जाता है। स्त्रीलिङ्गमें 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् होने पर ऐन्द्री शब्दका नदीवत् रूप चलता है।

व्याकरणम् अधीते वेद वा इस अर्थमें व्याकरणम् इस द्वितीयान्त प्रातिपदिकसे 'तदधीते तद्वेद ४।२।५८' (तत् अधीते तत् वेद वा इत्यर्थे अण् प्रत्ययो भवति सच तद्धितः) से अण् प्रत्यय हुआ अनुबन्ध लोप करके व्याकरण + अकी स्थितिमें आदि वृद्धिको बाधकर नय्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौतु ताभ्यामैच् ७।३।३ (पदान्ताभ्यां यकार-वकाराभ्यां परावृद्धिर्न भवति। किन्तु ताभ्यां पूर्वौ ऐऔ भवतः) से य से पूर्व व् से परे ऐका आगम हो जानेसे वैयाकरण + अकी स्थितिमें 'यस्येतिच' से ण वाले अका लोप करके प्रत्ययसे योग करके वैयाकरण विशेष्यनिघ्न-शब्द बना। स्त्रीलिङ्गमें वैयाकरणी होगा। (व्याकरणज्ञात्री स्त्री) राष्ट्रे भवः इस अर्थ में शेषाधिकारके कारण 'राष्ट्रावार-पाराद् घखौ ४।२।९३' से घ प्रत्यय होता है घ का 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्यया-दीनाम् ७।१।२' अङ्गात् परेषां फादीनाम् आयनादय आदेशा भवन्ति। से घ को इय आदेश होने पर 'यस्येतिच' से ष्ट्र वाले अ का लोप करके इयमें जोड़कर राष्ट्रिय ऐसा विशेष्य निघ्न शब्द बन जाता है। योंही ग्रामे भवः जातो वा इस विग्रहमें 'ग्रामाद्य-खञौ ४।२।९४' से य और खञ् करके अनुबन्ध लोप कर ख के ईन करके 'यस्येतिच' से म-वाले अका लोप करके 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' से मको य और ईनमें सटाकर ग्राम्यः णत्व कर लेने पर ग्रामीणः ऐसा विशेष्य निघ्न शब्द बनता है। स्त्री लिङ्गमें टाप् होगा अनुबन्ध लोप दीर्घ ग्राम्या ग्रामीणा बनेगा। शालायां भवः इस अर्थमें शाला शब्दको 'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७३' से वृद्धसंज्ञा हो जाने से 'वृद्धाच्छः ४।२।११३' (शेषेऽर्थे वृद्धात्प्रातिपदिकात् ङ्यन्तादाबन्ताच्च छः प्रत्ययः परः भवति)

छ प्रत्यय करके उसका 'आयनेयीनीयियः०' से ईय् करके भ संज्ञा के बाद 'यस्येति च' से ला-वाले आ का लोप करके शालीय शब्द बन जाता है। जिसके तीनों लिङ्ग कुल० विभक्ति वचनों में रूप चलता है। क्योंकि वह शब्द विशेष्यनिघ्न है। पर्वत शब्द तो वृद्ध नहीं है पर्वताच्च ४।२।१३४' से छ होने से इसका भी पर्वतीयः (या) (यम्) रूप होगा। युष्माकम् इदम् अस्माकम् इदम् इस अर्थमें 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४।३।१' (शेषेऽर्थे चाच्छः अण्)से खञ् और अण् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप और ख के ईन् तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२ से युष्मद् के युष्माक और अस्मद्के अस्माक आदेश होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः'से आदि वृद्धि 'यस्येति च' से अलोप करके यौष्माकीन यौष्माक आस्मकीन और आस्माक दो दो शब्द तैयार हो जाते हैं। उनको तद्धितान्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञाके बाद स्वादि विभक्ति में यौष्माकः यौष्माकीणः आस्माकः आस्माकीनः ये प्रयोग बनते हैं। 'अट्कुप्वाङ्०' से न का ण होगा। एकवचनमें तो तव इदम्। मम इदम्—विग्रहमें अण् खञ् में युष्मदस्मद् को 'तवकममकावेकवचने ४।३।३' (युष्मदस्मदोः तस्मिन्नणि च) से तवक ममक आदेश करके आदि वृद्धि करके अन्त्य अ का लोप करके तावकः तावकीनः और मामकः मामकीनः ये रूप बनते हैं। पक्षमें 'वृद्धाच्छः' से छ करके उसका ईय् आदेश हो जाने पर युष्मदीयः। अस्मदीयः। एकवचनमें 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८' (त्वमावेकवचने) से त्वत् मत् आदेश करके त्वदीयः। मदीयः ये दो रूप बनते हैं। मध्ये भवः इस अर्थमें मध्य शब्दसे 'मध्यान्मः ४।३।८' (तत्र भव इत्यर्थे) से म प्रत्यय लग जाने पर मध्यम शब्द बन जाता है। काले भवः इस अर्थमें 'कालाट्ठञ् ४।३।११' (शेषे) इस सूत्रसे ठञ् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप करके 'ठस्येकः ७।३।५०' से इक करके अकार लोपकर कालिक शब्द बना लेते हैं। यों ही वर्षे भवः वार्षिकः, मासे भवः मासिकः। आदि बनता है। पाणिनिना प्रोक्तम् इस अर्थमें 'तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१' (छः) इससे छ होकर ईय् हो जाता है। यस्येति च से नि वाले इ का लोप करके न् को ईय में मिलाकर पाणिनीय शब्द बना लेते हैं। बाद तीनों लिङ्गोंमें विशेष्यके अनुसार रूप चलाते हैं। धर्मं चरति इस अर्थमें धर्म शब्दसे 'चरति ४।४।८'(ठक्) सूत्रसे ठक् प्रत्यय करके इक् आदेश कर देते हैं। आदि वृद्धिके बाद म वाले अ का 'यस्येतिच' से लोप करके मका इकसे योग करके धार्मिक शब्द विशेष्यनिघ्न बनता है। स्त्रीलिङ्गमें धार्मिकी होगा। सभायां साधुः इस अर्थमें सभा प्रातिपदिक से 'सभाया यः ४।४।१०५' (तत्र साधुरित्यर्थे) से य प्रत्यय करके 'यस्येति च' से सभाके भा वाले आ का लोप हो जाता है। सभ्य को प्रातिपदिक करके तीनों लिङ्गोंमें सभ्यः सभ्या सभ्यम् बना लेते हैं। सोदरे साधुः सोदर्यः यहां भी 'सोदराद्यः ४।४।१०९' से य करके अलोपकर सोदर्य शब्द विशेष्यनिघ्न बन जाता है। दन्ताय हितम् इस अर्थमें 'तस्मै हितम् ५।१।५'

के अधिकारमें 'शरीरावयवाद्यत् ५।१।६' से यत् प्रत्यय करके त् की इत्संज्ञा लोपकर यस्येति च से दन्त शब्द के भसंज्ञक अ का लोपकर य में मिलाकर अदन्त दन्त्य तद्धित विशेष्यनिघ्न शब्द बन जाता है। दण्डमर्हति इस अर्थमें दण्ड शब्दसे 'दण्डादिभ्यो यः ५।१।६६' (तदर्हति) से य प्रत्यय करके लोप हो जाने पर दण्ड्य ऐसा अदन्त विशेषण शब्द बन जाता है।

ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते इस अर्थमें 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५' (प्रातिपदिकात्) से ब्राह्मण प्रातिपदिकसे वति प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप हो जानेसे ब्राह्मणवत् ऐसा अव्यय प्रातिपदिक बन जाता है। उसके स्वादि विभक्तियों का 'अव्ययादाप्सुपः २।४।८२' (लुक्) लुक् हो जाने से ब्राह्मणवत् ऐसाही पद होता है। यों ही छात्रवत्। तद्वत् इत्यादि पद बनेंगे।

गोर्भावः इस अर्थमें गो प्रातिपदिकसे 'तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९' इस सूत्रसे त्व और तल् प्रत्यय होता है ल्की इत्संज्ञा लोप करके 'त्वान्तं नपुंसकं। तलन्तं स्त्रियाम्' के नियमसे घटत्वम् घटता इत्यादि रूप चलाते हैं। पृथोर्भावः इस अर्थमें 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२' से इमनिच् प्रत्यय होता है। अनुबन्ध लोप करके 'र ऋतोहलादेर्लघोः ६।४।१६१ (अङ्गस्य) से 'ऋ' का 'र' करके प्रथु+इमन् बनाते हैं बाद 'टेः ६।४।१५५' (लोः इष्ठेमेयस्सु) से उ का लोपकर प्रथिमन् शब्द बना लेते हैं। जिसका स्त्रीलिंग पुलिंगमें समान रूप होता है। यहां त्व और तल् भी विकल्पसे होता है। जिससे पृथुत्वम् पृथुता ये दो शब्द बनते हैं। पण्डा सञ्जाता अस्य इस अर्थमें पण्डा प्रातिपदिकसे 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६' से इतच् प्रत्यय करके 'यस्येति च' से आ का लोप करके पण्डितः, पण्डिता, पण्डितम् ऐसा विशेष्यनिघ्न शब्द बना लेते हैं। यत् परिमाणम् अस्य इस अर्थमें यद् शब्दसे 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९' से वतुप् हुआ अनुबन्ध लोप करके 'आ सर्वनाम्नः ६।३।९१' (दृग्दृशवतुषु) से द का आ हो जाता है। बाद 'अकः सवर्णे दीर्घः' करके विशेष्यनिघ्न यावत् शब्द बनता है। पुलिङ्गमें यावान्, स्त्रीलिङ्गमें यावती, नपुंसकमें यावत् करके रूप चलते हैं। योंही तावान् एतावान् इत्यादि होता है। किम् परिमाणम् अस्य इस अर्थमें 'किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०' (वतुप्) प्रत्यय करके व को घ करके घ को इय् करके किम् के टिका लोपकर देते हैं तो कियत् शब्द बन जाता है उसका रूप कियान्, कियती, कियत् इत्यादि चलता है। उसी अर्थमें किम्से 'किमः संख्यापरिमाणे डतिच ५।२।४१' से डति प्रत्यय करके अनुबन्ध लोपके बाद टिलोपकर प्रातिपदिक कति बन जाता है। इसका रूप' डतिच १।१।२५' (संख्या षट्) से षट्

संज्ञा करके 'षड्भ्यो लुक् ७।१।२२' (जश्शसोः) से लुक् हो जाने पर कति कतिभिः कतिभ्यः कतिभ्यः कतीनां कतिषु। तीनों लिङ्गोंमें ऐसेही पद होते हैं।

एकादशानां पूरणः इस अर्थमें एकादशन् शब्दसे 'तस्य पूरणे डट् ५।२।४८' (संख्यायाः) से डट् प्रत्यय करके टिलोप होने पर एकादश ऐसा अदन्त तद्धित शब्द बन जाता है। जिसका अजन्तवद्रूप तीनों लिङ्गोंमें चलेगा। पञ्चानां पूरणः इस अर्थमें पञ्चन् प्रातिपदिकसे 'नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९' (संख्यायाः डटः) से डट्के स्थानमें मट् आदेश कर देनेसे अनुबन्ध और नका लोप करके पञ्चम अदन्त स्त्री पञ्चमी बनता है। यों ही सप्तमः अष्टमः नवमः। चतुर्णां पूरणः अर्थमें चतुरसे डट् करके अनुबन्ध लोप करके चतुर्+अ की स्थितिमें 'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१' (डटि) से थुक् करके चतुर्थः। षष्ठः कतिथः भी इसीसे बनेगा। द्वयोः पूरणः अर्थमें 'द्वेस्तीयः ५।२।५४' (तस्य पूरणे)से तीय करके द्वितीयः। त्रि शब्दका 'त्रेः सम्प्रसारणञ्च ५।२।५५' (तस्य पूरणे तीयः) से तृतीयः बनेगा। योंही विंशति इत्यादि शब्दोंके पूरण अर्थमें 'विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ५।२।५६' से तमड् करके विंशतितमः विंशतितमी तथा डट् में 'तिविंशतेर्डिति ६।४।१४३' से तिलोप और अलोप करके विंशः विंशी रूप भी होते हैं।

धनमस्ति अस्य इस अर्थमें—धन प्रातिपदिकसे 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४' से मतुप् प्रत्यय होता है। उसके मका 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९' (मान्तादवर्णान्तात् मोपधादवर्णोपधादित्यर्थः) व करके धनवान् विद्यावान्। लक्ष्मीवान्। यशस्वान्। भास्वान् अकारान्तसे तो 'अत इनिठनौ ५।२।११५' (वा) से विकल्पसे इनि और ठन् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके 'ठस्येकः ७.३।५०' से ठके इक करके धनिन् और धनिक ये दो शब्द नान्त तथा अदन्त बनते हैं। योंही रामात् की जगह रामतः भी प्रयोग होता है। 'पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७' से पञ्चमीके स्थानमें तसिल् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके प्रयोग बना लेते हैं। वह अव्यय हो जाता है। योंही 'किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।१' के अधिकारमें 'सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०' से त्रल् करके पूर्वत्र। सर्वत्र। किम् शब्दमें 'कु तिहोः ७।२।१०४' से कु आदेश करके कुत्र इत्यादि अव्यय पद बन जाते हैं। अयमेषामतिशयेन आढ्यः। इस अर्थमें आढ्य शब्दसे "अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५' से तमप् प्रत्यय होता है प् को इत्संज्ञालोप करके आढ्यतमः बना देते है। योंही लघु शब्दसे लघुतमः लघिष्ठः बनाते हैं। इष्ठन्में तो 'टेः ६।४।१५५' (लुक् इष्ठेमेयःसु) से उका लुक् कर देते हैं। अनयोरयमतिशयेन लघुः। इस अर्थमें 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७' से तरप ईयसुन् करके लघुतरः तथा टिकालुक् करके लघीयान् बनाते हैं। तिङन्त पदोंसे भी

तरप् तमप् प्रत्यय होते हैं जैसे-अयमनयोरतिशयेन पचति की जगह पचतितराम् बोल सकते है। तिङश्च ५।३।५६ (तरप्तमपौ) यहां उत्तरसूत्रसे तरप् का अपकर्ष होता है। अनुबन्ध लोप करके 'तरप्तमपौघः १।१।२२' से घ संज्ञा कर देने पर 'किमेत्तिङ-व्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५ ४।११'से आम् करके दीर्घ करके पचतितराम्। अयमेषामतिशयेन पचति अर्थमें पचतितमाम् आदि तिङन्त रूप भी होते हैं।

पञ्चवारं करोति जहां बोलना है वहां पञ्चकृत्वः करोति ऐसा भी बोल सकते हैं। यहां पञ्चन् शब्द से 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगण ने कृत्वसुच् ५।४।१७' से कृत्वसुच् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके न लोप करके पञ्चकृत्वः यह अव्यय पद बनता है। द्वि त्रि चतुर् शब्दों से तो 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८' से सुच् करके द्विःत्रिः चतुः पद बन जाता है। एकवारम् अर्थमें 'एकस्य सकृत् ५।४।१९' से एक को सकृत् आदेश करके अव्यय पद बन जाता है। अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते इस अर्थमें 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०' से च्वि करके उसका सर्वापहारी लोपकर देने पर 'अस्य च्वौ ७।४।३२' (ई) से अ का ई करके भूधातु से योग शुक्लीभवति। ऐसा प्रयोग बनाते हैं। इति तद्धिताः।

उपसर्ग-निपात-

संस्कृत में शब्द चार प्रकार के हैं – १ सुबन्त (नाम) २ तिङन्त (आख्यात) ३ निपात (अव्यय) और ४ उपसर्ग (गति)। च, वा, ह, अहं, एव, एवम् नूनं शश्वत् आदि कुछ शब्द निपात हैं, जिनकी गणना अव्यय में की जाती है क्योंकि उनका रूप नहीं बदलता। उनका ज्ञान पाणिनि के गण पाठ से किया जा सकता है। उपसर्ग भी निपात ही के समान अव्यय हैं, जो धातुओं में पहले लगाये जाते हैं। उनकी संख्या २२ है:—

प्र, परा, अपसम् , अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

उपसर्गों का उपयोग आगे लिखे जाने वाले धातुरूप में होता है अतः धातुरूप जान लेने पर स्वयं इनका प्रयोग करें।

प्र परापसमन्ववनि र्दुरभिव्यधिसूदति निप्रति पर्यपयः
उप आङिति विंशतिरेष सखे उपसर्गगणः कथितः कविना (२२)

॥ इति पूर्वार्द्धम् ॥

पाणिनीय प्रदीपः

(उत्तरार्धः)

अक्षर विज्ञान, पद ज्ञान, समास, सन्धि, लिङ्गानुशासन तद्धित, उपसर्ग-निपात आदि का सामान्य ज्ञान करने के बाद धातु-रूप-प्रदर्शन का उपक्रम करते हैं। भू आदि दो हजार धातु हैं। उनमें कुछ प्रत्ययान्त धातु भी हैं जो णिच् सन् आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। उन्हीं में १० लकार लगाकर उन लकारों के स्थान में तिङ् प्रत्यय जोड़ने से तिङन्त पद बनते हैं।

तिङन्त के दो भेद हैं : १. कर्तृवाच्य २. कर्मवाच्य। १. कर्तृवाच्य में कर्ताके साथ क्रिया का मेल चलता है—जैसे कर्ता प्रथम पुरुष एकवचन होगा तो क्रिया भी प्रथम पुरुष एकवचन होगी। यों ही मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुषमें भी जिस वचनका कर्ता होगा उसी पुरुषके उसी वचन की क्रिया उसके साथ लगेगी। इसीसे वह क्रिया कर्तृवाच्य की क्रिया कही जायगी, जो कर्ता के साथ मिलता चलेगी।

२. कर्मवाच्य की क्रिया वह है जो कर्मके साथ मेल करती जायगी, जिस पुरुष जिस वचन का कर्म होगा उसी पुरुष उसी वचनकी क्रिया भी होगी। इसीसे वह कर्मवाच्यकी क्रिया कही जायगी। यहाँ मैं पहले कर्तृवाच्य क्रिया बताऊँगा।

तिङन्तकी दोनों क्रियाओंके लिये १८ तिङ् प्रत्यय हैं। जिनमें कर्तृवाच्यकी क्रियाओंमें तो १८ ही लगते हैं पर कर्मवाच्य की क्रियाओं में केवल आत्मनेपद के ही नौ प्रत्यय लगते हैं। वे तिङ् प्रत्यय ये हैं—तिप् तस् झि। सिप् थस् थ। मिप् वस् मस्। त आताम् झ। थास् आथाम् ध्वम्। इट् वहि महिङ्। ये १८ तिङ् प्रत्यय कहाते हैं। ये तिप् के 'ति' से लेकर महिङ् के 'ङ्' तक 'तिङ्' प्रत्याहार के भीतर आ जाते हैं। इसी कारण इनका नाम 'तिङ्' पड़ा है। इनके अन्दर दो भेद हैं—१. परस्मैपद २. आत्मनेपद। पहले ९ का परस्मैपद नाम है। दूसरे ९ का आत्मनेपद, तङ् भी नाम है। कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।

तिङ्-	परस्मैपद			आत्मनेपद		
पुरुष	एकवचन	द्वि वचन	बहु वचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ति	तः	अन्ति (अति)	ते	आते (इते)	अते (अन्ते)
मध्यमपुरुष	सि	थः	थ	से	आथे (इथे)	ध्वे
उत्तमपुरुष	मि	वः	मः	ए	वहे	महे

ये १८ तिङ् प्रत्यय धातुओं के साथ बैठकर उनको क्रिया रूपमें परिणत कर देते हैं।

महर्षि पाणिनि ने 'धातुपाठ' नाम की एक पुस्तक लिखी है जिनमें २००० दो हजार के करीब धातु हैं। उन धातुओं के तीन भेद होते हैं— १. परस्मैपद २. आत्मनेपद ३. उभयपद। जो धातु परस्मैपद होते हैं उनमें परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं। (पहले के नौ) 'ति' से लेकर 'मस्' तक। जो धातु आत्मनेपद होते हैं उनमें आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं। (नौ बादके नौ) 'त' से लेकर महिङ् तक। इनको 'तङ्' प्रत्यय कहते हैं क्योंकि 'त' से लेकर 'महिङ्' के ङ् तक 'तङ्' ऐसा एक प्रत्याहार बन जाता है। जो उभयपद धातु होंगे, उनमें दोनों पदोंके (परस्मैपद तथा आत्मनेपद) १८ प्रत्यय लगेंगे। इन प्रत्ययोंके लिये पाणिनि मुनिके कुछ संक्षिप्त सूत्र *हैं। उन्हें कण्ठकर लेनेसे बड़ी सुविधा रहेगी।

---

* लस्य ३।४।७७ तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८ लः परस्मैपदम् १।४।९९ तङानावात्मनेपदम् १।४।१०० अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२ (आत्मनेपदम्), शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८ भूवादयो धातवः १।३।१ सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२

धातुओंके आगे तिङ् प्रत्ययों को लगाने का उपाय पाणिनि ने इस प्रकार बताया है। पहले पहल वह धातुओंके आगे १० लकार लगाते हैं□। बाद उन लकारोंके स्थानोंमें ये तिङ् प्रत्यय आदेश होकर जुट जाते हैं।

किस अर्थमें कौन लकार धातुओंमें लगते हैं। इसी सुविधाके लिये १० लकार पढ़े गये हैं। उन लकारोंको क्रमसे जाननेका उपाय यह है कि लट्में अ की जगह इ उ ऋ ए ओ जोड़कर पढ़ दीजिये क्रमशः लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् छः हो जाते हैं। यों ही लङ् में अ की जगह इ उ ऋ जोड़कर पढ़िये क्रमशः लङ् लिङ् लुङ् लृङ् चार हो जाते हैं। यों १० लकारोंकी संख्या हो जाती है। जैसे लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् (ये ६ टित् लकार कहाते हैं) लङ् लिङ् लुङ् लृङ् (ये चार ङित् लकार कहाते हैं) लकारों में टित् और ङित् इन दो भेदोंसे भी पाणिनिजी ने सूत्र पढ़े हैं अतः ये भेद भी सार्थक हैं।

लोट् यद्यपि विधि आदि लिङर्थोंमें आता है तो भी उसका आज्ञा देना अर्थ रूढ़ हो गया है। और आशीर्वाद अर्थ में 'तात्' प्रत्यय वाले प्रयोग को ही माना जाता है। लिङ् के भी दो अर्थ होते हैं। एक विधि आदि, दूसरा आशीर्वाद अर्थ। यों लिङ् लकार के रूप भी दो प्रकार के भिन्न भिन्न होते हैं। दस लकारोंमें एक लेट् वेदमें चला जाता है। शेष नौ लकार लौकिक संस्कृत में रह जाते हैं। उनमें लिङ्के दो भेद एक विधिलिङ् (संभावना अर्थ वाला) दूसरा आशीर्लिङ् (आशीर्वाद अर्थ वाला) होने से लोक में भी दस लकार हो जाते हैं।

ये दस लकार एक-एक धातुके आगे लगते चलते हैं और उन्ही लकारोंकी जगह ये १८ तिङ् प्रत्यय तीन प्रकारके धातु-भेदके अनुसार कहीं परस्मैपद कहीं आत्मनेपद कहीं उभयपद आते जाते हैं। उन्हीं लकारोंके अनुरूप इन १८ प्रत्ययों में भी कुछ अदलबदल हो जानेसे और कुछ इनके तथा धातुके बीचमें विकरणभेद एवं धातुके भी रूप में कुछ हेर फेर करके भिन्न भिन्न धातुरूप तैयार होते जाते हैं। यों एक ही धातुमें लकार भेद से भिन्न-भिन्न रूप होते है। जैसे एक पठ धातुसे यदि इन लकारों में लट् के रूप बनाना चाहेंगे तो यों बनेगें।

□ वर्तमाने लट् ३।२।१२३ परोक्षे लिट् ३।२।११५ अनद्यतने लुट् ३।३।१५ लृट् शेषे च ३।३।१३ लिङर्थे लेट् ३।४।७ लोट् च ३।३।१६२ अनद्यतने लङ् ३।२।१११ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१ आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३ लुङ् ३।२।११० लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९

पठ=व्यक्तायां वाचि (स्पष्टबोलने अर्थमें) पठ धातुको पाणिनिजी ने धातुपाठमें पढ़ा है । उसकी 'भूवादयो धातवः १।३।१' सूत्रसे धातु संज्ञा करके 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२' से पट के ठ वाले अं की अनुनासिक होनेके कारण इत् संज्ञा हुई। तब 'तस्य लोपः १।३।६' से उस अ का लोप हुआ । यहाँ लोप का अर्थ भी पाणिनि ने स्वयं सूत्र से बताया है 'अदर्शनं लोपः १ १।६०' अब पठ् ऐसा धातु हो गया तब 'वर्तमाने लट् ३।२।१२३' (धातोः प्रत्ययः परश्च भवति) से लट् प्रत्यय वतमान काल में आता है । आगे पठ् लट्के टका 'हलन्त्यम् १।३।३' (उपदेशे इत्) से तथा अ का 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'से इत् सज्ञा होने पर 'तस्य लोपः' से लोप हो जाने पर 'लस्य ३।४।७७' के अधिकारमें प्राप्त 'तिप्तस्झि०, आदि सूत्रसे १८ प्रत्यय प्राप्त होते हैं । वहाँ 'तङानावात्मनेपदम् १।४।१००' से तङ्की आत्मनेपद संज्ञा हो जाने से तिबादि नौ की 'लः परस्मैपदम् १।४.९९' से परस्मैपद संज्ञा हो जाती है । तब 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८' से पठ परस्मैपद है, इसलिये इससे परस्मैपद के ही प्रत्यय आवेंगे। उनमें 'तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१००' से तीन तीन प्रत्ययों की क्रमशः प्रथम, मध्यम, उत्तम संज्ञा होकर 'तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०१' तीन-तीन वर्गोंमें एक-एक की एक द्वि बहुवचन संज्ञा हो जानसे तिप्की एकवचन संज्ञा हुई । तब 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२' से एककी इच्छा करने के कारण एकवचन तिप् आया । उस तिप् की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३' (धातोः परः प्रत्ययः) से सार्वधातुक संज्ञा हो जाने से 'कर्तरि शप् ३।१।६८' (सार्वधातुके धातोः परः प्रत्ययः)से पठ्धातु और तिप् प्रत्ययके बीचमें विकरण शप्का आगम हो गया तो पठ् शप् तिप् हो गया । यहाँ 'हलन्त्यम्' से दोनों प्की 'लशक्वतद्धिते १।३।८' (प्रत्ययस्य आदि इत् उपदेशे) से शकी इत् सज्ञा होनेसे 'तस्य लोपः' से लोप हो जाने पर पठ् अति ऐसी स्थितिमें पाणिनि के (अज्झीनम् परेण संयोज्यम्) वैयाकरणों में प्रसिद्ध इस सर्वतन्त्र सिद्धान्तसे ठ् को 'अ' से मिला देने पर पठति बनता है । यों ही पठतस् हो जाने पर 'ससजुषो रुः ८।२।६६' (पदस्य) इस सूत्र के लगने से पहले 'सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४' से पद संज्ञा हो जायगी । तब पदान्त स् का रु हो जाने से उकी इत्संज्ञा लोप हो जानेके बाद 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५' (पदस्य रः) से विसर्ग होकर पठतः बनता है । पठ् से बहुतकी इच्छा करने पर 'बहुषु बहुवचनम् १।४।२१' से जब झि प्रत्यय आ जायगा तो 'झोऽन्तः ७।१।३' (प्रत्ययस्य) से झ्के अन्त् हो जानेसे पठ्+अन्ति बनेगा । पुनः पूर्ववत् शप् इत् संज्ञादि कार्य्य करके पठ+अन्ति

होने पर 'अतो गुणे ६।१।९७' (अपदान्तात् पूर्वपरयोः एकम् पररूपम् संहितायाम्) से पररूप होकर पठन्ति बनता है। पठसि, पठथः में कोई विशेष कार्य्य नहीं होता। पठ+मि हो जाने पर 'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३' से पठका अङ्ग संज्ञा हो जाने पर 'अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१' (अङ्गस्य सार्वधातुके) से ठ वाले अकारके दीर्घ होनेसे पठामि बनता है। ऐसा ही पठावः पठामः में भी होता है। धातु विकरण एवं प्रत्ययों के बीच में तथा सभी लकारों में भी कुछ न कुछ अदल बदल हुआ करता है। और जैसे इन दस लकारोंके कारण धातु रूपोंमें भेद होता है वैसे ही दस गणों के कारण भी धातुओं के रूपों में भेद होता है। वे दस गण (विषय प्रवेश भूमिका में हैं)

भ्वादि (भू आदि) अदादि (अद आदि) जुहोत्यादि (हु आदि) दिवादि (दिव आदि) स्वादि (सूञ् आदि) तुदादि (तुद आदि) रुधादि (रुध आदि) तनादि (तन आदि) क्रयादि (डुक्रीञ् आदि) और चुरादि (चुर आदि)। धातुओंके ये दस विभाग हैं। इन दस विभागों में दस प्रकार के भिन्न-भिन्न विकरण सार्वधातुक प्रत्ययों में लगते हैं।

सार्वधातुक आर्द्धधातुक ये दो भेद प्रत्ययों में होते हैं। इन दो भेदों के कारण भी धातुओंके रूपों में अन्तर होता है। सार्वधातुक प्रत्ययों में तो गणभेद के कारण विकरणों में भेद होता है। पर आर्द्धधातुक प्रत्ययोंमें गणभेद होनेसे कोई भेद नहीं होता, किन्तु सेट्, अनिट्, वेट् इत्यादि धातुभेदके कारण उन प्रत्ययों में इट् विकरण का भेद हो जाता है। कहीं इट्का होना, कहीं इट् का नहीं होना, कहीं विकल्पसे होना, कार्य्य होते हैं जिससे भिन्न-भिन्न धातुरूप होते हैं। सार्वधातुक प्रत्ययों (लकारों) में ही गणभेद वाले विकरण लगते हैं।

यहाँ अदन्त विकरण वाले गणों के (भ्वादि, दिवादि, तुदादि, चुरादि णिजन्तसे लेकर भावकर्मान्त सभी प्रक्रियाओंके) सार्वधातुक लकारों में लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ्गमें एक ही प्रकारके प्रत्यय लगते हैं—

उनको एक जगह अभ्यास के लिए लिख दिया जाता है—

लट् परस्मैपद—				आत्मनेपद		
१ ति	तः	अन्ति	१	ते	इते	अन्ते
२ सि	थः	थ	२	से	इथे	ध्वे
३ मि	वः	मः	३	ए	वहे	महे

लङ् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१ त्	ताम	अन्	१	त	इताम्	अन्त
२ स्	तम्	त	२	थाः	इथाम्	ध्वम्
३ अम्	व	म	३	इ	वहि	महि

लोट् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१ तु (तात्)	ताम्	अन्तु	१	ताम्	इताम्	अन्ताम्
२ हि (तात्)	तम्	त	२	स्व	इथाम्	ध्वम्
३ आनि	आव	आम	३	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१ इत्	इताम्	इयुः	१	ईत	ईयाताम्	ईरन्
२ इः	इतम्	इत	२	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
३ इयम्	इव	इम	३	ईय	ईवहि	ईमहि

लट् लङ् दोनों लकारों के दोनों पदोंमें उत्तम पु० के यञादि प्रत्ययों में विकरण का अ दीर्घ होता है। सूत्रः—'अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१।'

अदन्त विकरण भिन्न वाले गणों के प्रत्यय-अर्थात् अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि रुधादि, तनादि और क्र्यादि गणों के सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय –

लट् परस्मैपद में तो वे ही हैं—

+ +

आत्मनेपदमें

१	ते	आते	अते
२	से	आथे	ध्वे
३	ए	वहे	महे

लङ् परस्मैपद में वे ही हैं।

+ +

आत्मनेपद में

१	त	आताम्	अत
२	थाः	आथाम्	ध्वम्
३	इ	वहि	महि

लोट् परस्मैपद में वे ही हैं

+ +

आत्मनेपद में

१	ताम्	आताम्	अताम्
२	स्व	आथाम्	ध्वम्
३	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ् परस्मैपद बिलकुल भिन्न — आत्मनेपद में वे ही हैं

१—यात्	याताम्	युः		
२—याः	यातम्	यात	+	+
३—याम्	याव	याम		

लट् लकार में—केवल जुहोत्यादि में अन्ति का अति होगा। 'अदभ्यस्ताद् ७।१।४' सूत्र है

लङ् लकार में – जुहोत्यादि के अन् की जगह उः होता है और धातु का गुण हो जाता है ।

लोट् लकार में – जुहोत्यादि में अन्तु का अतु हो जाता है ।

लट् लङ् लोट् के परस्मैपद तथा केवल विधि लिङ् का आत्मनेपद प्रत्यय सभी गणों में एक सा ही होता है तथा अदन्त विकरण वाले चार गणों के लट् लङ् के दोनों पदों में उत्तम पुरुष में 'अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१' से दीर्घ हो जाता है। ये बातें ही याद रखनी है। लोट् के उत्तम पुरुष समीपित् हैं।

अब विकरणके भेद और गणभेद से धातुओं के रूपभेद को देखिये। भ्वादि में भू=सत्तायाम् अर्थ वाला धातु है। उससे पूर्वोक्त प्रकारसे तिप् आने पर भू+ति बनेगा तब भ्वादि होने के कारण 'कर्तरि शप्' से शप् होने पर अनुबन्ध [1]लोप हो जानेसे भू+अति बनेगा। तब शित् होनेसे 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से अ की भी सार्वधातुक संज्ञा हो जाने से उसको परे मान कर 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४' (इकः अङ्गस्य गुणः) से गुण हो कर भो+अति बनता है। तब 'एचोऽयवायावः ६।१।७८' (अचि संहितायाम्) से अवादेश होकर भवति बनता है। इसी प्रकार भवतः भवन्ति। भवसि भवथः भवथ। भवामि भवावः भवामः। भ्वादि धातुओंके रूप इसी प्रकार चलेंगे। हलन्तों के पठ के समान और अजन्तों के भू के समान। जैसे पचति, पतति, गदति, वदति, व्रजति, वहति, भजति, च्यवति, स्रवति, द्रवति, क्षयति, जयति, हरति, भरति, धरति आदि। लघूपधा वाले धातुओं के भी 'पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८५' (सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः) से गुण होकर सेधति, चेतति, मेहति। शोधति, शोचति, बोधति, च्यु तति, कर्षति आदि रूप होंगे। इति भ्वादिः।

अदादि में अद=भक्षणे धातु से पूर्ववत् तिप् शप् आने पर 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२' (लुक्) से शप् का लुक् हो जाने से और 'खरि च ८।४।५५'

---

१. उच्चरित प्रध्वंसोऽनुबन्धः – उच्चारण मात्र से जिसका लोप हो जाय। जैसे—शप् में श् और प् है।

(झलां चर्) से द् के त् होने पर अत्ति बनता है। लुक् भी लोप के समान प्रत्यय के अदर्शन की ही एक संज्ञा है। इसका सूत्र है। 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६०' (अदर्शनम्) आगे भी अत्तः अदन्ति। अत्सि अत्थः अत्थ। अद्मि अद्वः अद्मः।

इसी प्रकार अदादिके अन्य धातुओं के रूप चलेंगे। जैसे--अस् = भुवि, धातु से अस्ति स्तः सन्ति। असि स्थः स्थ। अस्मि स्वः स्मः। यहाँ पित् भिन्न प्रत्ययों को 'सार्वधातुकमपित् १।२।४' (ङित्) से ङित् हो जाने पर उनके परे रहने पर 'श्नसोरल्लोपः ६।४।१११' (सार्वधातुके ङ्किति) से अकार का लोप होता है और सि परे रहने पर 'तासस्त्योर्लोपः ७।४।५०' (सः सि) से सकार का लोप होता है।

हन=हिंसागत्योः धातु का हन्ति हतः। यहां 'अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७' (अङ्गस्य) से न् का लोप होता है। यों ही थस् और थ में भी जानना चाहिये हन् + अन्ति 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८' (अङ्गानां उपधाया अचि) से हन्के अ का लोप हो जानेपर ह्न् अन्ति में 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४' (कुः) से ह का घ हो जाने पर घ्नन्ति बन गया। हन् + सि में 'नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४' (मोऽनुस्वारः) से न् का अनुस्वार होता है। हंसि हथः हथ। हन्मि हन्वः हन्मः।

ब्रूञ् = व्यक्तायां वाचि धातु का 'ब्रुव ईट् ७।३।९३' (हलि पिति सार्वधातुके) ईट् होने पर गुण करके ब्रवीति ब्रूतः ब्रू+अन्ति। यहां पर 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७' से उवङ् होगा तब ब्रुवन्ति, 'आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९' (इण्कोः अपदान्तयोः सः मूर्द्धन्यः) से मूर्द्धन्यादेश होने पर ब्रवीषि। ब्रूथः ब्रूथ। ब्रवीमि ब्रूवः ब्रूमः। दूसरा रूप भी पाँच प्रत्ययों तक ब्रूधातुका होता है। 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४' (लटः परस्मैपदानां णलादयो वा) से आह आदेश हो जाता है और क्रम से तिसस्झि सिप्थस् का णल् अतुस् उस् थस् अथुस् आदेश होकर--आह आहतुः आहुः। आह् + थ मे 'आहस्थः ८।२।३५' (झलि) से ह् के थ् होने पर 'खरि च ८।४।५५' (झलां चर्) से थ्का त् हो जाता है। आत्थ आहथुः। ये पाँच ही रूप विकल्प से बनते हैं। रुदिर् = अश्रुविमोचने धातुसे तिबादि प्रत्ययों के आने पर 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।२।७६' (वलादेः इट्) से वलादि प्रत्ययोंमें इट् करने पर लघूपधा के यथाप्राप्त गुण करके और ङित् प्रत्ययों में गुण का निषेधकरके रोदिति रुदितः रुदन्ति। रोदिषि (यहां स का मूर्द्धन्य भी होगा) रुदिथः रुदिथ। रोदिमि रुदिवः

रुदिमः रूप बनेंगे। इसी प्रकार ञिष्वप = शये। श्वस = प्राणने। अन = प्राणने जक्ष=भक्ष-हसनयोः धातुओंके भी रूप होतेहैं। अदादिमें उकारान्त धातुओंकी वृद्धि होती है। यु+तिमें 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९' (सार्वधातुके पिति) से 'वृद्धिरादैच् १।१।१' 'स्थानेऽन्तरतमः १।१।४९' (आदेशः) के बल पर उ की औ वृद्धि होने से यौति युतः युवन्ति (उवङ्) यौषि युथः युथ। यौमि युवः युमः। इसी तरह उकारान्त कु= शब्दे। णु=स्तुतौ इत्यादिके रूप होते हैं या=प्रापणे का याति इत्यादि। इसी तरह ला=आदाने, मा=माने, दाप्=लवने, पा=रक्षणे, वा=गन्धने इत्यादि अदादि गणके धातु रूप चलेंगे। इति अदादिः।

जुहोत्यादि में धातु का द्वित्व करके रूप चलाना होता है जैसे—डुदाञ्= दाने धातु है। डु का 'आदिर्ञिटुडवः १।३।५' (उपदेशे इत्) से और ञ् का 'हलन्त्यम्' से इत्हो जानेसे दा+शप् ति की स्थिति में 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५' (शपः) से शप्का श्लु हो जाता है। तब 'श्लौ ६।१।१०' (एकाचो द्वे प्रथमस्य) से द्वित्व होकर दादाति बनने पर 'पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४' (द्वयोः) से द्वित्वके पूर्व अंशकी अभ्यास सज्ञा होती है। तब 'ह्रस्वः ७।४।५९' (अभ्यासस्य) से अभ्यास के दा को ह्रस्व हो जाता है। तब ददाति ऐसा रूप बनता है। ददा+तः में 'उभे अभ्यस्तम् ६।१.५' से अभ्यस्तसंज्ञा होने पर 'श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२' (लोपः सार्वधातुके क्ङिति) से आ के लोप हो जाने पर दद्+तः में 'खरि च' से द् के त् करके दत्तः बनता है। ददति में ददा+झि ऐसा होने पर 'अदभ्यस्तात् ७ १।४' (झः प्रत्ययस्य) से झ के अत् होने से ददा+अति हो जाने पर आ का लोप होता है। आगे ददासि दत्थः दत्थ। ददामि दद्वः दद्मः। इसी तरह डुधाञ्=धारण-पोषणयोः धातुका भी रूप होता है। दधाति। यहाँ धधाति बनाने पर 'अभ्यासे चर्च ८.४।५४' (झलां जश्) से पूर्व ध का द हो जाता है। धत्तः में आ के लोप होने पर दध्+तः इस दशा में 'दधस्तथोश्च ८।२।३८' (बशो भष् स्ध्वोः) से द का ध कर देने पर धध्+तः बनता है। तब 'खरि च'से अन्त के धकार का त् हो जाता है धत्तः दधा+अति दध्+अति दधति। दधासि धत्थः धत्थ। दधामि दध्वः दध्मः। हु= दानादनयोः धातु का तो द्वित्व होने पर अभ्यास का 'कुहोश्चुः ७।४।६२' (अभ्यास स्य) से झु होगा बाद 'अभ्यासे चर्च ८।४।५४' (झलां जश्) से जु हो जाने पर 'सार्व धातुकार्द्धधातुकयोः' से गुण होगा जुहोति। ङित् होनेसे 'क्ङिति च' से गुण का निषेध होगा जुहुतः। जुहु+अति 'हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८८' (अचि यण्) से यण् होकर जुह्वति होगा। अन्य रूपों में कोई विशेषता नहीं है। जुहोमि जुहुवः जुहुमः। इति जुहोत्यादिः।

दिवादि गणमें धातुके आगे श्यन् प्रत्यय लगता है। जैसे दिवु=क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु के अनुबन्ध उका लोप करके लट्लकारके स्थानमें तिप् आकर दिव् + ति होने पर शप्को बाधकर 'दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९' से श्यन विकरण आनेपर अनुबन्ध लोप हो जानेसे दिव्यति बनता है। तब 'हलि च ८।२।७७' (र्वोरुपधाया दीर्घ इकः) से लघूपधाको दीर्घ होकर दीव्यति, दीव्यतः दीव्यन्ति। दीव्यसि दीव्यथः दीव्यथ दीव्यामि दीव्यावः दीव्यामः। इसी तरह षिवु= तन्तुसन्ताने धातुका 'धात्वादेः षः सः ६।१।६२' से दन्त्य स होकर पूर्ववत् दीर्घ होता है। सीव्यति सीव्यतः सीव्यन्ति। इसी तरह दिवादिगण के सभी धातुओंके रूप चलते हैं। जैसे—पुष=पुष्टौ पुष्यति। मुह=वैचित्ये मुह्यति। स्निह=प्रीतौ स्निह्यति। बुध=अवगमने बुध्यते। मन ज्ञाने मन्यते क्रुध, कुप=क्रोधे। द्रुह= जिघांसायाम् नृती=गात्रविक्षेपे। क्रुध्यति आदि। इति दिवादिः।

स्वादिगण के धातुओं में 'नु' लगाकर रूप बनाते हैं। जैसे षुञ्=अभिषवे धातु से तिप् आने पर शप् को बाध कर 'स्वादिभ्यःश्नुः ३।१।७३' से श्नु होगा। अनुबन्ध लोप करके 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४' से नु के उको ओ होकर सुनोति बनता है 'श्नु' भी तो शित् होनेसे 'तिङ् शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३' (धातोः परः प्रत्ययः) से सार्वधातुक है, तो उसको मानकर सुधातु को गुण नहीं होता, क्योंकि श्नु होनेसे 'सार्वधातुकमपित् १।२।४' से ङित् हो जाता है। इसलिये 'क्ङिति च १।१।५' (न इको गुणवृद्धी) से निषेध हो जाता है। इसी प्रकार सुनुतः में श्नुके साथ तस् भी ङित् है। अतः दोनोंको गुण नहीं होता। सुनु + अन्तमें 'इको यणचि ६।१।७७' से प्राप्त यण् को 'विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२' के बलपर परत्वात् बाधकर 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७' से उवङ् प्राप्त होता है। उसको भी परत्वात् बाधकर 'हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७' से यण् हो जानेसे सुन्वन्ति बनता है। सुनोषि में 'आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९' (इण्कोः अपदान्तयोः मूर्द्धन्यः सः) से दन्त्य स को मूर्द्धन्य ष हो जाता है। सुनुथः सुनुथ। सुनोमि सुनु + वः सुनुमः में विकल्पसे 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७' (उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्) से उ का लोप होता है जिससे सुन्वः सुन्मः भी एक-एक रूप होता है। इसी तरह धूञ्=कम्पने। चिञ्=चयने। टुदु=उपतापे। हि=गतौ। हिध तु में प्र उपसर्ग बराबर लगा ही रहता है। प्रहिणोति। 'हिनुमीना ८।४।१५' (उपसर्गस्थान्निमित्तात् नः णः) से न को ण हो जाता है। इति स्वादिः।

तुदादिगण के कुलरूप भ्वादि के समान ही होते हैं। अन्तर इतना ही होता है कि, वहाँ धातु का गुण होता है। यहाँ नहीं होता है। जैसे—तुद=व्यथने धातु से लट्की जगह तिप् आने पर तुद् + तिप् की स्थिति में प्राप्त शप को बाधकर

तुदादि गण के धातु होने से 'तुदादिभ्यः शः ३।१।७७' से श हो जाता है 'सार्वधातुकमपित्' से उसकी ङित् संज्ञा हो जाती है। 'क्ङिति च' से सभी गुणों का निषेध हो जाता है तो यहाँ 'पुगन्तलघूपधस्य च' से जो उपधागुण प्राप्त था सो नहीं हुआ। तुदति तुदतः तुदन्ति। तुदसि तुदथः तुदथ। तुदामि तुदावः तुदामः। इसी तरह सृजति, सृज=विसर्गे, धातु का। कृषति कृष=विलेखने, लिखति लिख=अक्षरविन्यासे। रुजति रुजो=भङ्गे। विशति विश=प्रवेशने। दिशति दिश=उपदेशे। मुञ्चति मुच्लृ=विमोचने। धातु का होगा। मुच्+अति होने पर 'शे मुचादीनाम् ७।१।५६' (धातूनां नुम्) से नुम् 'मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४६' से उ के बाद नुम् होगा अनुबन्ध लोप होने पर न् का 'नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४' से अनुस्वार होकर 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५७' से परसवर्ण होने पर मुञ्चति इत्यादि रूप बनते हैं। इसी तरह षिच=क्षरणे का सिञ्चति, लिप=उपदेहे का लिम्पति, विदॢ=लाभे का विन्दति, लुपॢ=छेदने का लुम्पति आदि रूप होते हैं। इति तुदादिः।

रुधादि गण में श्नम् विकरण, धातु प्रत्यय के बीच में न होकर धातु के ही दोनों अक्षरों के बीच में होता है। जैसे—रुधिर=आवरणे धातुसे अनुबन्ध लोप कर देने पर रुध्+ति ऐसी स्थिति में 'रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८' (धातुभ्यः) से श्नम् जब होने लगता है तो मित् होनेसे 'मिदचोऽन्त्यात् परः' से रु के आगे और ध् के पहले होता है। अनुबन्ध के लोप हो जानेसे रुनध् ति बनने पर 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२' (रषाभ्यां नो णः समानपदे) से न का ण होता है। तब 'झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०' से त का ध होता है और 'झलां जश् झशि ८।४।४२' से धातु के ध् का द् हो जाता है। रुणद्धि। रुन्द्धः बनने पर 'श्नसोरल्लोपः ६।४।१११' (क्ङिति सार्वधातुके) से न के अ का लोप कर देते हैं। बाद णत्वको असिद्ध करके 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार होता है। तब 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से अनुस्वारका पर सवर्ण हो जाता है यहाँ 'झरो झरि सवर्णे ८।४।६५' (हलः लोपः) से धातुके धका लोप हो जाता है। रुन्धः बनता है। रुन्धन्ति। रुणत्सि में 'खरि च' से ध् का त् होता है। रुणध्मि रुन्ध्वः रुन्ध्मः।

इसी प्रकार भिदिर्=विदारणे का भिनत्ति 'झरो झरि सवर्णे' से द् का लोप हो जाता है भिन्तः। भिन्दन्ति। भिनत्सि भिन्थः भिन्थ। भिनद्मि भिन्द्वः भिन्द्मः। छिदिर्=द्वैधीकरणे का छिनत्ति छिन्तः इत्यादि। युजिर्=योगे। यहां 'चोः कुः ८।२।३०' (झलि पदान्ते) से कुत्व होकर ज् का ग् होगा बाद 'खरि च' से ग् का क् हो जाता है। युनक्ति युङ्क्तः युञ्जन्ति। यहां अनुस्वार परसवर्ण भी होता है। युनक्षि यहां 'आदेशप्रत्यययोः' से स का ष होता है। युङ्क्थः युङ्क्थ। युनज्मि युञ्ज्वः

भुङ्क्तः। भुज=पालनाभ्यवहारयोः का भुनक्ति, भुङ्क्तः भुञ्जन्ति आदि। रुधादिगण के धातु ऐसे ही हलन्त हैं जिनके बीचमें श्नम् बैठ जाता है। इति रुधादिः।

तनादिगणके धातुओं में उ लगता है। जैसे--डुकृञ्=करणे धातु के अनुबन्ध का लोप कर देने पर कृ + ति की स्थितिमें 'तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९' (कर्तरि सार्वधातुके) से उप्रत्यय होता है बाद 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४' से कृ का कर गुण होकर करुति होता है। पुनः उसी सूत्रसे उ की जगह ओ गुण होकर 'करोति' बनता है। करुतः होने पर तः के ङित् होनेसे उ का तो गुण होता नहीं है, किन्तु क के अकार का 'अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०' (क्ङिति करोतेः) से उ हो जाता हैं। कुरुतः। कुर्वन्ति। करोषि कुरुथः कुरुथ। करोमि कुरुवः की स्थिति में 'नित्यं करोतेः ६।४।१०८' (प्रत्ययस्योतः लोपः म्वोः) से उ प्रत्यय का लोप हो जानेसे कुर्वः कुर्मः बनता है। यहां 'न भकुर्छुराम् ८।२।७९' (र्वोः दीर्घः) से दीर्घ का निषेध हो जाता है। यों ही तनु = विस्तारे के अनुबन्ध का लोप कर उप्रत्यय का गुण करके तनोति। गुणके निषेध होनेसे तनुतः। यण् करके तन्वन्ति, तनोषि तनुथः तनुथ। तनोमि तनुवः तनुमः में विकल्प से 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः' से उ का लोप कर के तन्वः तन्मः भी रूप बनते हैं। इसी प्रकार तृणु = अदने आदि धातुओंके रूप होंगे। इति तनादिः।

क्र्यादि में धातुके और प्रत्ययके बीचमें श्ना विकरण प्रत्यय होता है। जैसे— डुक्रीञ्=द्रव्यविनिमये धातुका अनुबन्ध लोप करके जब लट्से योग होगा और लट्के स्थानमें तिप् आ जाने पर क्री + ति बनने पर 'क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१' (कर्तरि सार्वधातुके) से श्ना अनुबन्धलोप 'अट्कुपु०' से न का ण क्रीणाति 'ई हल्यघोः ६।४।११३' (श्नान्तानामङ्गानाम् अभ्यस्तस्य च आतः सार्वधातुके क्ङिति) से ई करके क्रीणीतः बनेगा। क्रीणा + अन्ति में 'श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२' (अङ्गयोः लोपः सार्वधातुके क्ङिति) से आका लोप करके क्रीणन्ति बनेगा। क्रीणासि क्रीणीथः क्रीणीथ। क्रीणामि क्रीणीवः क्रीणीमः। यों ही प्रीञ्=तर्पणे प्रीणाति। श्रीञ्= पाके श्रीणाति। षिञ्=बन्धने सिनाति। पूञ्=पवने। लूञ्=छेदने। धूञ्=कम्पने। इत्यादि का तो 'प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०' (शिति)से ह्रस्व होकर पुनाति, लुनाति धुनाति आदि बनेंगे। ग्रह=उपादाने धातु का 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६' (किति सम्प्रसारणम्) से र का ऋ सम्प्रसारण होकर 'सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०८' (अचि एकः पूर्वपरयोः पूर्वः) से पूर्व रूप होकर गृह्णाति गृह्णीतः गृह्णन्ति गृह्णासि गृह्णीथः गृह्णीथ। गृह्णामि। ज्ञा=अवबोधने का 'ज्ञाजनोर्जा ७।३।७९' (शिति) से जा होकर जानाति इत्यादि होगा। मुष = स्तेये का मुष्णाति। पुष = पुष्टौ का पुष्णाति इत्यादि। इति क्र्यादिः।

चुरादिगण के धातुओं में णिच् प्रत्यय लगाकर दूसरा स्वरूप ही बना लेते हैं। बाद धातु संज्ञा करके लडादि प्रत्यय लगाकर पद बनाते हैं। जैसे – चुर=(स्तेये) धातु से 'सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५' से णिच् होता है। अनुबन्ध लोप करके 'पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६' (सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः) से गुण करके चोरि धातु बना लेते हैं। यहाँ 'सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२' से धातु संज्ञा होती है। तब चोरि धातु से 'वर्तमाने लट्' से लट् लेजाकर उस के स्थान में तिबादि प्रत्यय करके शप् विकरण लगाकर भ्वादि के समान ही गुण अयादेश करके चोरयति चोरयतः चोरयन्ति। चोरयसि चोरयथः चोरयथ। चोरयामि चोरयावः चोरयामः। इसी प्रकार मूल धातु के आगे णिच् प्रत्यय लगाकर इन आवश्यक कार्यों के साथ इकारान्त धातु बनाकर भ्वादिगण का कार्य्य करते चलना होगा। जैसे भू=(सत्तायाम्) धातु का भावि धातु बनाकर भावयति इत्यादि। तिज्=(निशाने) का तेजि धातु बनाकर तेजयति। गुप=(गोपने) का गोपि बनाकर गोपयति। तड्=(ताडने) का ताडि बनाकर ताडयति। घुष (विशब्दने) का घोषि बनाकर घोषयति। पट=(विदारणे) पाटि का पाटयति। भक्ष=भक्षि= भक्षयति। पीड=पीडि=पीडयति। अर्ह=अर्हि=अर्हयति। पूज=पूजि=पूजयति। भूष=भूषि=भूषयति आदि रूप चलते हैं। इति चुरादिः।

धातुओं के दस गणों में लट् का रूप दिखा दिया गया है। इसी प्रकार सभी गणों के धातुओं के लङ् लोट् लिङ् (विधि) में रूप चलेंगे। केवल तिबादि प्रत्ययों में ही भेद होगा। विकरण एवं धातु का अदल-बदल भी वही रहता है जो लट् में हुआ है। लङ् के प्रत्यय त् ताम् अन्। स् तम् त। अम् व म।

जैसे – भूधातु से लङ् के स्थान में तिप् आदेश हो जाने पर जब भवति बन गया तब 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१' (अङ्गस्य) से अङ्ग=भव के आदि में अट् के आगम हो जाने पर ट् की इत्संज्ञा करके लोप कर देने पर अभवति की स्थिति में 'इतश्च ३।४,१००' (ङितो लस्य परस्मैपदानाम् इतो लोपः) से इकार का भी लोप करके अभवत् रूप बन जाता है। योंही अभवतः की स्थिति में 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः ३।४।१०१' (ङितो लस्य तस् थस् थ मिप् इत्येषां ताम् तम् त अम् इति आदेशा भवन्ति) से तस् का ताम् करके अभवताम्। अभवन्ति में इकारके लोप हो जाने पर 'संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३' (पदस्य) से त् का लोप करके अभवन् बना देना होगा। अभवः में रुत्व और विसर्जनीय होगा। अभवम् में मिप् के 'तस्थस्थमिपां तांततामः' से अम् करके 'अतो गुणे' से पररूप होगा। अभवावस् अभवामस् में 'नित्यं ङितः ३।४।९९' (उत्तमस्य सः लोपः) से स् का लोप करके अभवाव अभवाम सिद्ध होंगे। इसी प्रकार भ्वादिगणमें लङ् लकारके सभी रूप होंगे। प्रत्ययों

का विकार और अडागम दो कार्य अधिक होंगे। अन्य सभी लङ्वत् होंगे। यदि अजादि धातु होगा तो 'आडजादीनाम् ६।४।७२' (लुङ् लङ् लृङ्क्षु अजादीनाम् अङ्गस्य आट्) से आट् होकर 'आटश्च ६।१।८९' (अचि पूर्वपरयोः एका वृद्धिः संहितायाम्) से वृद्धि होगी।

लङ्में भ्वादि गणके पचतिका अपचत् होगा। 'इतश्च' से इका लोप और 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अडागम होगा। पततिका अपतत्। गदतिका अगदत्। अवदत्। अव्रजत्। अवहत्। अभजत्। अजन्त में उकारान्त धातु का भ्वादि में लट् लकारका च्यवति इत्यादिरूप लङ् में आकर अच्यवत्। अस्रवत्। अद्रवत्, इकारान्त का अक्षयत्। अनयत्। अश्रयत्। अजयत्। ऋकारान्त का अहरत्। अभरत्। अधरत्। आदि होगा। लघूपधों का सेधति आदि असेधत्। अचेतत्। अमेहत्। अशोधत्। अशोचत्। अबोधत्। अच्योतत्। आदि स्वयं समझना होगा। इति भ्वादिः।

अदादिगण के अद धातु के लट्का अत्ति रूप लङ् में आकर आदत् हो जाता है। क्योंकि अद् + ति की स्थिति मे 'अद्' धातु अजादि है इसलिये 'आडजादीनाम्' से आट् का आगम 'आद्यन्तौ टकितौ' के कारण आदि में होगा। 'आटश्च' से वृद्धि हुई तो आद्ति बना 'इतश्च' से इकार का लोप करके जब आद्त् बनता है। तभी 'अदः सर्वेषाम् ७।३।१००' (अदः परस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य सर्वेषां मते अड् भवति) से अट् का आगम अपृक्त सार्वधातुक त् के आदि में 'आद्यन्तौ टकितौ' के बलपर हुआ आद् अट् त् होने पर अनुबन्ध लोप कर लेने पर 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' आदत्। अत्तः, आत्ताम् हो जाता है। 'आडजादीनाम्' आट् करेगा 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः' होगा। आदन्ति होने पर जब इ का लोप होगा तो 'संयोगान्तस्य लोपः' से त् का लोप करके आदन् हो जायगा। आद् + सि में इ के लोप होने पर अपृक्त स् के आदि में 'अदः सर्वेषाम्' से अट् करके अनुबन्ध लोप करके आदस् बनेगा। स्का रुत्व विसर्ग करके आदः हो जायगा। आत्तम् आत्त। आदम् में वही आट् और मिप् के 'तस्थस्थमिपाम्०' से अम् कर देना है। आद्व आद्म में 'नित्यं ङितः' से स् लोप विशेष होना है।

अस् धातु का आसीत् बनाने में 'आडजादीनाम्' और [1]'अस्तिसिचोऽपृक्ते

(१) सिच् च अस् च तयोः समाहारः सिचस्, अस्ति च तत् सिचस् अस्ति सिचस्, तस्मात् अस्तिसिचसः होना चाहिये। किन्तु सूत्र होने से पञ्चमी का लुक् हो गया है। इसका अर्थ है विद्यमान सिच् और अस् धातुसे परे अपृक्त सार्वधातुक को ईट्का आगम होता है।

७।३।९६' (विद्यमानात् सिचः अस् धातोश्च परस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईट् भवति) की ही करामात है। अस्तः की स्थिति में ही 'आडजादीनाम्' और 'तस्थस्थमिपाम्॰ के द्वारा आस्ताम् बन जायगा। आसन् आसीः आस्तम् आस्त। आसम् आस्व आस्म। अहन् में भी हन् ति की स्थिति में केवल अडागमकरके इ का लोप और संयोगान्त लोप कर देना है। शप् का लुक् तो अदादिगण में हता ही है। अहताम् में भी हतः को ही अट् ताम् करके बिगाड़ देना है। घ्नन्तिको अघ्नन् करने में क्या देर है। अडागम इलोप संयोगान्त लोप काफी है। अहन् अहतम् अहत। अहनम् अहन्व अहन्म। बना देनाही चाहिये। ब्रवीति का अब्रवीत् बना लीजिये। ब्रूतः का अब्रूताम् होगा। ब्रुवन्ति का अब्रुवन् होगा। अब्रवीः अब्रूतम् अब्रूत। ब्रवीमि को अब्रवम् बनाना है। 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' इस परिभाषाके कारण मिप्को ईट् नहीं होगा। 'तस्यस्थमिपाम्॰' से मिप् को अम् होना है। अब्रू अम् की स्थिति में गुण अवादेश अब्रवम् हो गया।

रोदितिको अरोदीत् बनाना है। यहां रोद्ति की स्थिति में लङ् में 'इतश्च' से इकारका लोप होने पर 'रुदश्च पञ्चभ्यः ७।३।९८' (पञ्चभ्यः रुदादिभ्यः परस्य हलादेः अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईट् भवति) से ईट् हो जाने से अरोदीत् होगा। नया काम केवल दीर्घ ईट् है। अडागम इलोप तो होता ही आता है। अरुदिताम् रुदितः से बन गया। रुदन्ति अरुदन् है। अरोदीः अरुदितम् अरुदित। अरोदम्में तो ईट् की प्राप्ति ही नहीं है। अरुदिव अरुदिम में अडागम स लोप हो गया। योंही अश्वसीत् अश्वसिताम् अश्वसन्। अश्वसीः अश्वसितम् अश्वसित। अश्वसम् अश्वसिव अश्वसिम। प्राणीत् अजक्षीत् आदि बुद्धिका खेल है।

यौतिका अयौत् अयुताम् अयुवन्। अयौः अयुतम् अयुत। अयवम् में मिप्के अम् हो जाने पर गुण अवादेश अधिक कार्य हुआ है। कौति का अकौत्। नौतिका अनौत्। यातिका अयात् अयाताम्। झि प्रत्यय में अया+झि की स्थिति में 'लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११' (आतः धातोः परस्य झेर्जुस् भवति शाकटायनस्यैव मते) से झि की जुस् करके 'उस्यपदान्तात् ६।१।९६' (अपदान्ताद् आत् उसि परे पूर्वपरयोः एकम् पररूपम् भवति) से आ उ मिलकर उ मात्र हो जाने से अयुस् होता है। बाद में रुत्व विसर्जनीय करके अयुः बना लेना है। अयाः अयातम् अयात। अयाम् अयाव अयाम। इसी तरह अलात्। अमात्। अदात्। अपात्। अवात्। इत्यादि अदादिगणके धातुओंके रूप बनते हैं। इति अदादिः।

जुहोत्यादिमें जुहोतिका अजुहोत् अजुहुताम्। अजुहवुः में अजुहु + झि की स्थिति में 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९' (सिच् अभ्यस्तविदिभ्यः परस्य ङितः

र्झेः जुस् भवति) से झि की जुस् करके अनुबन्ध लोप करने पर अजुहु + उस् की स्थिति में 'जुसि च ७।३।८३' (इगन्तस्याङ्गस्य जुसि गुणः) से गुण होने पर अजुहो उस् होने पर अवादेश करके अजुहवुस् होता है। रुत्व विसर्ग हो जाने पर अजुहवुः। अजुहोः अजुहुतम् अजुहुत। अजुहवम् अजुहुव अजुहुम। ददातिका अददात् अदत्ताम् में कोई नयी बात नहीं है। अददुः में अददा + झि की स्थिति में 'लङः शाकटायनस्यैव' से झि को जुस् करके 'उस्यपदान्तात्' से पररूप करने पर अददुः हो सकता है पर आलोप हो जाता है। अददाः अदत्तम् अदत्त। अददाम् अदद्व अदद्म। इति जुहोत्यादिः।

दिवादि के रूपों में भ्वादि वालाही क्रम है। दीव्यति का अदीव्यत् अदीव्यताम् अदीव्यन्। अदीव्यः अदीव्यतम् अदीव्यत। अदीव्यम् अदीव्याव अदीव्याम। योंही दिवादिके सभी धातुओंके रूप होंगे। सीव्यति असीव्यत्। पुष्यति अपुष्यत् आदि। इति दिवादिः।

स्वादि में भी जुहोत्यादि के ही क्रम पर सुनोति का असुनोत् असुनुताम् असुन्वन् (यहां कोई अन्य कार्य्य नहीं होता) 'सुन्वन्ति' के ही इका लोप करके संयोगान्त लोपकर देते हैं और धातु के पहले अ लगा देते हैं। जैसे भ्वादिमें होता है। असुनोः असुनुतम् असुनुत। असुनु + अम् में गुण अवादेश करके असुनवम् असुन्व असुनुव असुन्म असुनुम। योंही धूनोति का अधूनोत्। दुनोति का अदुनोत्। चिनोति का अचिनोत् प्रहिणोति का प्राहिणोत् होगा। इति स्वादिः।

तुदादि का भी भ्वादि के समान ही लङ् के रूप होते हैं। तुदति का अतुदत्। कृषति अकृषत् आदि कुछ भी अन्तर नहीं है। इति तुदादिः।

रुधादि के लङ् में तिप् सिप् के ति, सि के इकार लोप हो जाते हैं जैसे—भ्वादि में अन्ति की इ का लोप होने पर संयोगान्त लोप की प्राप्ति होती है। वैसा ही यहां तीनों जगहों में होगा (तिप् सिप् अन्ति में) अतः इस गणका रूप कुछ विलक्षण होगा। अन्य कार्य तो सभी वेही होंगे, जो अन्य गणों में होते हैं—केवल 'झलां जशोऽन्ते' से धकार होने पर 'वावसाने ८।४।५६' (झलां चर्) से विकल्प से त् भी होता चलता है। जैसे रुणद्धिका अरुणत् (द्) अरुन्धाम् अरुन्धन्। अरुणत् अरुणद् अरुन्धम् अरुन्ध। अरुणधम् अरुन्ध्व अरुन्ध्म। छिनत्ति का अच्छिनत् (द्), यहां अच्छिनः भी लङ् के मध्यम पुरुष एकवचन में 'दश्च। ८।२।७५' से रु करके बनता है। भिनत्तिका अभिनत् (द्), युनक्तिका अयुनक् (ग्) अयुङ्क्ताम् अयुञ्जन् आदि। इति रुधादि।

तनादि गण का भी स्वादि के समान लङ् में रूप का क्रम रहता है जैसे—करोति का अकरोत् अकुरुताम् अकुर्वन्। अकरोः अकुरुतम् अकुरुत। अकरवम्

अकुर्व अकुर्म। योंही अतनोत् अतनुताम् अतन्वन्। अतनोः अतनुतम् अतनुत। अतनवम् अतनुव अतन्व अतनुम अतन्म। इति तनादिः।

क्रयादि में भी प्रत्यय परिवर्तनके अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य नहीं है। विकरण कार्य वही है जो लट् में हुआ है। जैसे—क्रीणाति का अक्रीणात्। क्रीणीतः का अक्रीणीताम्। क्रीणन्ति का अक्रीणन्। अक्रीणाः अक्रीणीतम् अक्रीणीत। अक्रीणाम् अक्रीणीव अक्रीणीम। योंही सभी धातुओं का रूप जानना चाहिये। लुनाति का अलुनात्। पुनाति का अपुनात्। गृह्णाति का अगृह्णात्। जानाति का अजानात्। जानीतः का अजानीताम्। जानन्ति का अजानन्। अजानाः अजानीतम् अजानीत। अजानाम् अजानीव अजानीम। इति क्रयादिः।

चुरादिमें भी भ्वादि वाला ही क्रम है जैसे—चोरयति का अचोरयत् अचोरयताम् अचोरयन्। अचोरयः अचोरयतम् अचोरयत। अचोरयम् अचोरयाव अचोरयाय आदि। सभी का केवल प्रत्यय में ही परिवर्तन होगा और धातुके पहले 'अ' लगता है। इति चुरादिः।

धातुओं में लट् और लङ् का प्रयोग समझने के बाद लोट् के प्रयोग समझना आवश्यक है। [1]लोट लकार में प्रत्यय का ही परिवर्तन होता है। जो धातु जिस गण का है उस गण के लट्के रूप में केवल प्रत्यय को लोट् लकारके अनुरूप बनाते चलिये, लोट् लकार का रूप बनता जायगा। जहां तहां धातुके साथ सन्धि आदि करने में जो कुछ अन्तर होगा, वह दिखा दिया जायगा। जैसे भ्वादि के भूधातु का लट्में भवति होता है। लोट् में 'एरुः ३।४।८६' (लोटः) से इ के उ करके भवतु बनता है। उसी 'तु' को आशीर्वाद अर्थमें 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५' से तातङ् आदेश करके भवतात् बनता है। भवतः बनने पर 'लोटो लङ्वत् ३।४।८५' से लङ् के कार्यका अतिदेश करके 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः' आदि आदेश के अतिदेश में तत् का ताम् करके भवताम्। भवन्ति का भवन्तु। भवसि में सि के 'सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७' (लोटः) से हि करके 'अतो हेः ६।४।१०५' (लुक्) से हि का लुक् करके भव। हि की 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' से तातङ् आदेश करके आशीर्वाद अर्थमें भवतात् होता है। भवतम् भवत। भवमि की स्थितिमें 'मेर्निः ३।४।८९' (लोटः) से मि की नि करके 'आडुत्तमस्य पिच्च ३।४' (लोटः) से प्रत्ययके पहले आट् आगम करके दीर्घादेश करने पर भवानि

---

१. लोट्का प्रत्यय—तु (तात्) ताम् अन्तु। हि (तात्) तम् त। आनि आव आम।

भवावस् भवामस् में 'नित्यं ङ्कितः' से स लोप नित्यही होता है भवाव भवाम। योंही जितने भी लट् लकारमें धातु आ चुके है उन सबों के ऐसे ही रूप होंगे। पठति का पठतु पठतात् पठताम् पठन्तु। पठ पठतात् पठतं पठत। पठानि पठाव पठाम। इति भ्वादिः।

अदादि गण के धातु अत्तिका अत्तु अत्तात् अत्ताम् अदन्तु। अत्सिके स्थानमें अद्+सि की स्थिति में ही 'सेर्ह्यपिच्च' से सि का हि करके 'हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१' से हि का धि हो जायगा अद्धि अत्तात् अत्तम् अत्त। अदानि अदाव अदाम। इसी तरह हन्तिका हन्तु हतात् यहां जब तु का तात् हो जायगा तो जैसे तस् प्रभृति ङित् प्रत्ययों में न का लोप होता है वैसाही तात्में भी 'अनुदात्तोपदेश०' इत्यादि लम्बे सूत्रसे न का लोप हो जायगा। हतः का हताम्। घ्नन्ति का घ्नन्तु। हसिके स्थान में जहि होगा। क्योंकि 'सि' के हि हो जाने पर हन्तेर्जः ६।४।३६ (हौ) से हन् का ज हो जायगा। ज हो जाने पर अतो हेः' से हि का लुक् नहीं होता क्योंकि पाणिनिने 'असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२' सूत्र लिखा है। जिसका अर्थ होता है। यहां से अर्थात् ६।४।२२' से लेकर भाधिकार तक अर्थात् ६।४।१७५ सूत्र तक (क्योंकि भाधिकार चतुर्थ पाद तक है) जो भी कार्य होगा उसको मान कर कोई दूसरा कार्य उसी भाधिकार के भीतर का होने लगेगा तो वह असिद्ध हो जायगा। उसी सूत्र के बलपर हि का लोप करते समय ज असिद्ध हो जाता है तो हन् आ जाता है जिससे लोप की प्राप्ति रुक जाती है। हतात् हतम् हत। हनानि हनाव हनाम।

ब्रवीति का ब्रवीतु ब्रूतात् (ङित्के कारण ईट् नहीं होगा) ब्रूताम् ब्रुवन्तु। ब्रूहि में सि का हि अपित् होता है। अतः ईट् और गुण दोनों नहीं होते। हिके तातङ् पक्ष में ब्रूतात् ब्रूतं ब्रूत। मि के नि होने पर आट् पित् होता है जिससे तीनों जगह गुण होता है, ब्रवाणि ब्रवाव ब्रवाम। रोदिति का रोदितु तातङ् पक्ष में ङित् होने के कारण गुण नहीं होगा। रुदितः का रुदिताम् रुदन्तु। हिके ङित् होनेके कारण गुण नहीं होता रुदिहि रुदितात् रुदितं रुदित। रोदानि रोदाव रोदाम। श्वसितु श्वसितात् एवं प्राणितु प्राणितात्। यौतु युतात्। यातु यातात्। आदि अदादि गणके धातुओं के रूप है। केवल प्रत्यय के ही भेद से धातु में भी जहां तहां रूप का भेद हो जाता है। इति अदादिः।

जुहोति का जुहोतु जुहुतात् (तातङ् ङित् है अतः गुण नहीं है) जुहुतः का जुहुताम् जुहति का जुहतु। जुहोषि का जुहुधि हो जाता है। क्योंकि सि के हि हो जाने पर चाहे 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इस परिभाषा से गुणका अभाव करलें चाहे 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' इस परिभाषा से पहले ही गुण न होने दें क्योंकि

त्न का हि होने वाला है जो ङित् है इसलिये गुण नहीं होगा। जुहुसि की स्थिति में ही 'सि' का 'सेर्ह्यपिच्च' से हि हो जायगा। जब हि हो गया तब 'हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१' से हि का धि हो जाता है। तातङ् पक्ष में जुहुतात्। जुहुथः का जुहुतम्, जुहुथ का जुहुत। आनि बन जाने पर गुण हो जाने से जुहवानि जुहवाव जुहवाम। योंही ददातु दत्तात् दत्ताम् ददतु। ददासि का देहि हो जाता है, क्योंकि सि के हि करने पर 'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९' से अभ्यास के लोप और दा के आ का ए हो जाता है। हि का तातङ् कर देने पर ददा + तात् की स्थिति में 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से आ का लोप करके दत्तात् दत्त दत्त। ददानि ददाव ददाम। यहां आनि आव आम प्रत्यय ही हो जाता है। तब दीर्घ होकर रूप बनता है। योंहि धा धातुका भी जानना चाहिये। दधातु। धेहि। दधानि आदि। इति जुहोत्यादिः।

दिवादि तुदादि चुरादिमें तो भ्वादिके समानही रूप चलेंगे। दीव्यति का दीव्यतु। तुदति का तुदतु। चोरयति का चोरयतु आदि भ्वादि के समान ही हैं। कुछ भेद ही नहीं है। इसलिए अब गण का निर्देश नहीं किया जा रहा है।

स्वादि का भी जुहोत्यादि का ही क्रम है। पर कहीं कहीं भेद है। सुनोतु सुनुतात् सुनुताम् सुन्वन्तु। सुनोषि यहां हिके ङित् होने से गुण नहीं होता है। 'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ३।४।१०६' (हेर्लुक्) से हि का ही लुक् हो जाता है। उसके चले जाने पर भी पाणिनि जी का सूत्र है—'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२' उसीके बल पर हिका लक्षण ङित्व बना रहता है, जिससे गुण नहीं होने पाता। सुनुतात् सुनुतम् सुनुत। सुनवानि सुनवाव सुनवाम। इसी प्रकार धुनोतु चिनोतु प्रहिणोतु बना लेना चाहिये कोई भेद है ही नहीं।

रुधादि गण में रुणद्धि का रुणद्धु (तातङ् पक्ष में) रुन्धात् रुन्धाम् रुन्धन्तु। रुन्धि में सि के हि हो जानेसे 'श्नसोरल्लोपः' श्नम् के अ का लोप होगा ही। लोप होने पर अनुस्वार और परसवर्ण होकर 'झरो झरि सवर्णे' से पूर्व ध का लोप भी होगा ही। रुन्धात् रुन्धम् रुन्ध। रुणधानि रुणधाव रुणधाम। योंही भिनत्ति का भिनत्तु। छिनत्ति का छिनत्तु। युनक्ति का युनक्तु आदि रूप होंगे।

तनादिके रूप स्वादिके समान ही चलेंगे। करोतिके करोतु कुरुतात्। कुरुतः का कुरुताम्। कुर्वन्ति का कुर्वन्तु। योंही करोषि इत्यादि का कुरु कुरुतात् कुरुतं कुरुत। करवाणि करवाव करवाम। इसी क्रम से अन्य तनोत्यादि के भी रूप चला लेना होगा।

क्रीणातिका क्रीणातु क्रीणीतात्। क्रीणीतः का क्रीणीताम्। क्रीणन्तु। क्रीणीहि क्रीणीतात् क्रीणीतम् क्रीणीत। क्रीणानि क्रीणाव क्रीणाम। योंही पुनाति आदिके पुनातु आदि रूप

चलेंगे—गृह्णाति आदिके गृह्णातु गृह्णीतात् गृह्णीताम् गृह्णन्तु। गृह्णा+हि की स्थिति में 'हलःश्नः शानज्झौ ३।१।८३' से श्ना का शानच् करके अनुबन्ध लोप कर देने से गृहान+हि बनने पर 'अतो हेः' से हि का लुक् करके और न का ण करके गृहाण बना देते हैं। गृह्णीतम् गृह्णीत। गृह्णानि गृह्णाव गृह्णाम। जानातु जानीतात् जानीताम् जानन्तु। जानीहि जानीतात् जानीतम् जानीत। जानानि जानाव जानाम।

चोरयति का चोरयतु आदि तो भ्वादि गणस्थ धातुओं के समान ही चलेंगे। कहीं भी कुछ भी अन्तर नहीं होगा।

सार्वधातुक लकारों में तीन की चर्चा ऊपर हो चुकी। अवशिष्ट विधिलिङ् है। इस विधिलिङ् में भवति का ही भवेत् करना है। ङित् लकार होने के कारण 'इतश्च' से इ का लोप हो जायगा। बाद 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३' (लिङः) से यासुट् का आगम होगा 'सुट्तिथोः ३।४।१०७' (लिङः) से सुट् का आगम होगा, तभी अनुबन्ध का लोप होगा। 'अतो येयः ७।२।८०' (लिङः सार्वधातुके) से यास् के इय् होगा। 'लोपो व्योर्वलि ६।१।६६' से य् का लोप हो जाने पर भव+इत् बनेगा। बाद 'आद्गुणः' से गुण करके भवेत् बन जायगा। योंही भवतः के स्थान में भव+इताम् बनाकर गुण करके भवेताम् बना लेंगे। भव+झिकी स्थिति में ही 'झेर्जुस् ३।४।१०८' (लिङः) से झि के जुस् करने पर अनुबन्ध लोप करके उसमें यास् के इय् करके इयुस् का रुत्वविसर्ग करके इयुः बना लेंगे बाद गुण करके भवेयुः। भवेः भवेतं भवेत। भव+मि के स्थान में मि के अम् करके यास् के इय् करके इयम् बनाकर भव+इयम् को 'आद्गुणः' से गुण करके भवेयम् आगे भव + इव = भवेव। भव+इम=भवेम। योंही भ्वादि के सभी धातुओं के रूप बनाते चलेंगे। पतेत् पतेताम् पतेयुः। पतेः पतेतम् पतेत। पतेयम् पतेव पतेम। गदेत् वदेत् व्रजेत् वहेत् भजेत् चलेत्। हलन्तों का रूप होता है। अजन्तों का भू के समान द्रवेत् च्यवेत् स्रवेत् क्षयेत् नयेत् श्रयेत् जयेत् हरेत् भरेत् धरेत् इत्यादि। लघूपध धातुओं के रूप सेधेत् चेतेत् मेहेत् शोधेत् शोचेत् बोधेत् च्योतेत् इत्यादि रूप स्वयं समझ लेने होंगे।

अदादि में लट् में अत्ति का लिङ् (विधि) में अद्यात् होगा। क्योंकि इसमें 'ति' के इ के लोप होने पर यासुट् का पुनः सुट्का आगम होगा उसके बाद अनुबन्धों का लोप होने पर 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९' (सार्वधातुके) से दोनों सका लोप हो जाने से यात् बनेगा उसमें अद्का योग हो जाने पर अद्यात् बन जायगा। योंही याताम् युः। याः यातम् यात। याम् याव याम। ये प्रत्यय लग जायेंगे ता अद्याताम्। अद्युः। अद्याः अद्यातम् अद्यात। अद्याम् अद्याव अद्याम। ऐसे रूप बन

जायेंगे। यहां केवल प्रत्यय में ही विकार होगा, जैसे यास्+तस् की स्थिति में 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' से स लोप होगा और 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः' से तस् का ताम् होकर याताम् बनेगा यास्+झिके स्थान में 'झेर्जुस्' से झि के जुस् होने पर अनुबन्ध लोप करके यास् के स् लोप हो जाने पर 'उस्यपदान्तात्' से पररूप करके युः बन जायगा। योंही सलोप और थस्थ मिप् के तं त अम् करके याः यातं यात। याम् याव याम। बन जायगा। वस् मस् का स लोप 'नित्यं ङितः' से होगा। योंही अदादि-गण के सभी धातुओं के रूप चलेंगे। जैसे हन्का हन्यात् हन्याताम् हन्युः। हन्याः हन्यातम् हन्यात। हन्याम् हन्याव हन्याम। इत्यादि। असका यात् इत्यादि प्रत्ययोंके योग होने पर 'श्नसोरल्लोपः से अ का लोप हो जायगा। स्यात् स्याताम् स्युः। स्याः स्यातं स्यात। स्याम् स्याव स्याम।

ब्रवीत का ब्रूयात् होगा क्योंकि ब्रूति की स्थिति में ही इ का लोप और यासुट् का आगम और अनुबन्ध का लोप करके यात् बना देंगे। बाद यासुट् प्रत्ययके ङित् होने से गुण होगा नहीं और ईट् भी हलादि पित् सार्वधातुक को होता है। इसलिये यासुट् के ङित् होने के कारण नहीं होता। तिप् का पित्व धर्म ङित् यासुट् में नहीं लगता क्योंकि भाष्यकार पत-ञ्जलि ने कहा है 'ङिच्च पिन्न पिच्च ङिन्न। ङित्पित् नहीं होता और पित्, ङित् नहीं होता। योंही आगे याताम् इत्यादि प्रत्ययों को लगाते चलें। ब्रूयाताम् ब्रूयुः। ब्रूया ब्रूयातं ब्रूयात। ब्रूयाम् ब्रूयाव ब्रूयाम। ऐसे रूप बन जायेंगे। रोदिति आदि का रुद्यात् रुद्याताम् रुद्युः। इत्यादि रूप होंगे। स्वप् का तो स्वप्यात् इत्यादि रूप होंगे। योंही श्वस्का श्वस्यात्। जक्षका जक्ष्यात्। अन् का प्राण्यात्। यु का युयात्। नु का नुयात्। कुका कुयात्। याति का यायात्। लाति का लायात्। माति का मायात्, दाति का दायात्, याति का यायात्। वाति का वायात् इत्यादि रूप होते हैं।

जुहोति का लिङ् (विधि) में जुहुयात् जुहुयाताम् जुहुयुः। जुहुयाः जुहुयातम् जुहुयात। जुहुयाम् जुहुयाव जुहुयाम। ददाति का दद्यात् दद्याताम् दद्युः। दद्याः दद्यातम् दद्यात। दद्याम् दद्याव दद्याम। यहां आ का लोप 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से होगा। योंही दधाति का दध्यात् आदि जानना चाहिये।

दिवादि में भ्वादि के ही समान दीव्येत् दीव्येताम् दीव्येयुः दीव्येः दीव्येतम् दीव्येत। दीव्येयम् दीव्येव दीव्येम। आदि सभी धातुओं के रूप होंगे।

स्वादि में सुनोति का सुनुयात् सुनुयाताम् सुनुयुः। सुनुयाः सुनुयातम् सुनुयात। सुनुयाम् सुनुयाव सुनुयाम। आदि। योंही सभी धातुओं के रूप होंगे।

तुदादि में भी भ्वादि के ही समान तुदेत् तुदेताम् तुदेयुः। तुदेः तुदेतम् तुदेत। तुदेयम् तुदेव तुदेम। आदि। रुणद्धि का रुन्ध्यात् रुन्ध्याताम् रुन्ध्युः। रुन्ध्याः रुन्ध्यातम्

रुन्ध्यात। रुन्ध्याम् रुन्ध्याव रुन्ध्याम। तनोति का तनुयात् तनुयाताम् तनुयुः। तनुयाः तनुयातम् अनुयात। तनुयाम् तनुयाव तनुयाम। क्रीणाति का क्रीणीयात् क्रीणीयाताम् क्रीणीयुः। क्रीणीयाः क्रीणीयातम् क्रीणीयात। क्रीणीयाम् क्रीणीयाव क्रीणीयाम। आदि सभी क्रयादि धातुओं के ना विकरण के आ का 'ईहल्यघोः' से ई करके यात् यातम् इत्यादि प्रत्यय जोड़ देना होता है।

चुरादि में भी भ्वादि के ही समान चोरयेत् चोरयेताम् चोरयेयुः। आदि होगा। सार्वधातुक लकारों के रूप समाप्त हुए। इति सार्वधातुक रूपम्।

आर्द्धधातुक प्रत्यय

आर्द्धधातुक लकारों में तो गणभेद का कोई कार्य्य होता ही नहीं है। वहां सभी गणोंके धातुओं का एकही प्रकारका रूप होता है। चाहे सेट् वाला हो, चाहे अनिट् वाला हो, चाहे वेट्वाला हो। वहां 'लस्य ३।४।७७ तिप्तसझि० ७८'से लकारों का तिङ् आदेश होगा। सभी लकारों का विकरण भेद से तथा 'इतश्च ३।४।१०० नित्यं ङित ३।४।९६ आदि सूत्रों से भिन्न-भिन्न प्रत्यय बन जाते हैं। यद्यपि लकारों के साथ प्रत्यय बनाया भी जाएगा तथापि कण्ठस्थ कर लेने की दृष्टि से प्रारम्भ में ही सभी आर्धधातुक लकारों के प्रत्यय लिख दिए जाते हैं।

लृट् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	१ स्यते	स्येते	स्यन्ते
२	स्यसि	स्यथः	स्यथ	२ स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
३	स्यामि	स्यावः	स्यामः	३ स्ये	स्यावहे	स्यामहे

अदन्त विकरण वाले लट् के प्रत्ययों में स्य लगाकर सन्धि करके लृट् के प्रत्यय बन जाते हैं।

लृङ् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	१ स्यत	स्येताम्	स्यन्त
२	स्यः	स्यतम्	स्यत	२ स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
३	स्यम्	स्याव	स्याम	३ स्ये	स्यावहि	स्यामहि

लङ् लकार अदन्त विकरण वाले प्रत्ययों में स्य लगाकर सन्धि कर लृङ् लकार का प्रत्यय बनता है।

लुट् परस्मैपद				आत्मनेपद		
१	ता	तारौ	तारः	१ ता	तारौ	तारः
२	तासि	तास्थः	तास्थ	२ तासे	तासाथे	ताध्वे
३	तास्मि	तास्वः	तास्मः	३ ताहे	तास्वहे	तास्महे

लुङ् परस्मैपद सेट्

१	ईत्	इष्टाम्	इषुः
२	ईः	इष्टम्	इष्ट
३	इषम्	इष्व	इष्म

आत्मनेपद सेट्

१	इष्ट	इषाताम्	इषत
२	इष्ठाः	इषाथाम्	इड्वम्
३	इषि	इष्वहि	इष्महि

लुङ् परस्मैपद अनिट्

१	सीत्	स्ताम्	सुः
२	सीः	स्तम्	स्त
३	सम्	स्व	स्म

आत्मनेपद अनिट्

१	स्त	साताम्	सत
२	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
३	सि	स्वहि	स्महि

कहीं सिज् लुक् तथा अङ् चङ् क्स आदेश होने पर लङ् वाला प्रत्यय बनता है।

लिट् परस्मैपद

१	अ	अतुः	उः
२	थ	अथुः	अ
३	अ	व	म

आत्मनेपद

१	ए	आते	इरे
२	से	आथे	ध्वे
३	ए	वहे	महे

'परस्मैपदानाम्० ३।४।८२' 'लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४ ८१

आशीर्लिङ् परस्मैपद

१	यात्	यास्ताम्	यासुः
२	याः	यास्तम्	यास्त
३	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

१	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
२	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
३	सीय	सीवहि	सीमहि

आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में सेट् धातुओं के आगे इ लगाकर इषीष्ट इत्यादि होंगे 'लिङः सीयुट् ३।४।१०२' इत्यादि सूत्रों से ये प्रत्यय बनते हैं।

जैसे—भूधातु का 'लृट् शेषे च ३।३।१३' से लृट् लकार होगा। उसके स्थान में तिप् तस् आदि आदेश होने पर भू + ति बनेगा, बाद 'स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३' से स्यविकरण होकर भू + स्यति बनेगा। धातु को सेट् होने के कारण 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५'से इट् होने पर गुण होकर अव् होनेसे भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति। भविष्यसि भविष्यथः भविष्यथ। भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः यौंही पठिष्यति। गमिष्यति। अनिट् अद् का अत्स्यति अत्स्यतः अत्स्यन्ति। अत्स्यसि अत्स्यथः अत्स्यथ। अत्स्यामि अत्स्यावः अत्स्यामः। हनिष्यति, रोदिष्यति। ब्रूञ्= व्यक्तायां वाचि धातुका 'आर्द्धधातुके २।४।३५ के अधिकार में 'ब्रुवो वचिः २।४।५३' से वच् आदेश करके 'चोः कुः ८।२।३०' से च् का क् करके 'आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९' से स् का ष् करके वक्+ष्यति = वक्ष्यति इत्यादि पद बनेंगे। रोदिष्यति।

होष्यति दास्यति धास्यति । देविष्यति । सोष्यति । तोत्स्यति । लेखिष्यति । रोत्स्यति । तनिष्यति । क्रेष्यति । ग्रहीष्यति । ज्ञास्यति । चोरयिष्यति । कथयिष्यति । आदि । इट् अनिट् का ही भेद होता है ।

कौन धातु अनिट् है और कौन धातु सेट् है इसका भी ज्ञान अनायासही हो सकता है । इसका नियम यह है अजन्त धातु सभी अनिट् होते हैं । कुछ गिने धातु हैं जो सेट् हैं । हलन्त धातु सभी सेट् होते हैं । कुछ गिने धातु अनिट् होते हैं । अजन्त धातुओं में इतने ही धातु सेट् गिनाये हैं, जो नीचेकी कारिका में बताए गये हैं बाकी सभी अनिट् हैं—

अदन्तमृदन्तमृताश्च वृङ्वृञौ श्विडीङिवर्णेष्वथशीङ् श्रिञावपि ।
गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ क्षुवं तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः ॥

हलन्त धातुओंमें तो नीचे गिनाए ही अनिट् हैं । अन्य सभी सेट् हैं –

शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी
रभिश्च भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे
यमिरमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ।
दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः ।
इमेऽनिटोऽष्टाविह मुक्तसंशया गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्त्तिताः ।
दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्
लिशिं च शान्ताननिटः पुराणगाः पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ।
रुधिः सराधियुधिबन्धि साधयः क्रुधिः क्षुधिः शुध्यतिबुध्यती व्यधिः ।
इमे तु धान्ता दश चानिटो मतास्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे ।
शिषिं पिषिं शुष्यति-पुष्यति त्विषिं श्लिषिं विषिं तुष्यतिदुष्यती द्विषिम् ।
इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषु षान्तान् कृषकर्षती तथा
तर्पिं तिर्पिं चापि मथो वपिस्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यति–दृप्यति-सृपिम्
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्तान् गणिताँस्त्रयोदश ।
अदिं हदिं स्कन्दिभिदिक्षुदिच्छिदीन् शदिं सदिं स्विद्यतिपद्यती खिदिम् ।
तुदिं नुदिं विद्यतिविन्त इत्यपि प्रतीहि दान्तान् दश पञ्च चानिटः ।
पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन् निजिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन्
त्यजिं यजिं युजिरुजिसञ्जिमज्जतीन् भुजिं स्वजिं सृजिमृजी विद्ध्यनिट्स्वरान्

लृङ् लकार में वे ही लृट् लकार वाले जो रूप हैं उनमें 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वड्उदात्तः ६।४।७१' से अट् का आगम करके इतश्च ३।४।१०० से इकार लोप करके भविष्यति

का अभविष्यत्, भविष्यतः में 'तस्थस्थमिपां तातंतामः ३।४।१०१' से तस् का ताम् करके अभविष्यताम् होगा। भविष्यन्ति का अभविष्यन्। यहाँ इ के लोप हो जाने पर 'संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३' एक विशेष सूत्र लगेगा। इससे त् के लोप होने पर ऐसा रूप बनेगा। भविष्यसि का अभविष्यः इकार के लोप होने से होगा, पर स् का रुत्व विसर्ग हो जायेगा। अभविष्यतम् अभविष्यत। मिप् के अम् हो जाने से अभविष्यम्। 'नित्यं ङितः ३।४।९९' से सलोप तो सभी ङित् लकारों में होता है। प्रत्युत यह तो 'लोटो लङ्वत् ३।४।८५' के बल पर लोट् टित् लकार में भी पहुँचता है। अभविष्याव, अभविष्याम।

लुट् में भी वे ही आर्धधातुक कार्य होंगे। 'अनद्यतने लुट् ३।३।१५' (भविष्यति धातोः प्रत्ययः परश्च) लुट् होने पर अनुबन्ध लोप करके 'तिप्तस्० ३।४।७८' से तिप् आने पर भू+ति की स्थिति में शप् को बाधकर 'स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३' से तासि विकरण होगा। बाद 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८८' से क्रमेण ति तस् झि को डा रौ रस् आदेश हो जाने से अनुबन्ध लोप करके भू तास् आ की स्थिति में 'डित्-सामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः ६।४।१४३' वा० के बल से 'टेः ६।४।१४३' (डिति लोपः) इस सूत्रसे तास् की टि आस् का लोप करके भू+त्+आ=भूता होने पर 'आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४' से ता की आर्धधातुक संज्ञा होने से तथा भू धातु के सेट् होने से 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५' से ता को इट् का आगम होता है। वह भी 'आद्यन्तौ टकितौ १।१।४३' से ता के आदि में होगा। आर्द्धधातुक परे होने से 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४' से गुण होकर अवादेश करके 'भविता' बनता है। भवितास् रौ की स्थिति में 'रि च ७।४।५१' (तासस्त्योर्लोपः) से तास् के स् का लोप होकर भवितारौ, यों ही भवितारः भवितास्+सि की स्थिति में 'तासस्त्योर्लोपः ७।४।५०' से स् का लोप होगा। भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ। भवितास्मि, भवितास्वः भवितास्मः।

लुङ् भी इसी लकार से मिलता-जुलता है। इट् तास् में होगा तो समझना होगा कि लुङ् में भी सिच् वाला इट् होगा ही, हाँ सिच् का ही लोप हो जाये या कोई दूसरा 'अङ्' आदि आदेश हो जाये तभी इट् नहीं होगा। जैसे-भू+लुङ्=भू+ति सार्वधातुक शप् को बाधकर 'च्लि लुङि ३।१।४३', 'च्लेः सिच् ३।१।४४' हो जाने पर 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७' (लुक्) से सिच् का लुक् हो जाता है। 'इतश्च' से ति के इकार लोप होगा। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अडागम कर अभूत् बन गया। यहाँ इट् होने का मौका ही नहीं आया। सार्वधातुक तिप् मानकर भू का गुण तो 'भूसुवोस्तिङि ७।३।८८' (सार्वधातुके न गुणः) से

निषेध हो जाता है। केवल 'तस्थस्थमिपाम्॰' से तसादि के तामादि काम अधिक होंगे। अभूताम्, अभूवन्। यहाँ तो 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६।४।८८' (अचि) से वुक् होने पर अनुबन्ध लोप कर अडागम बाद 'इतश्च' से इकार लोप कर संयोगान्तलोप करके अभूवन्। अभूः अभूतम् अभूत। अभूवम् यहाँ तो गुण वुक् को कित् हो जाने से भी नहीं होगा। 'भूसुवोस्तिङि' तो है ही। अभूव, अभूम 'नित्यं ङितः' स को गायब करेगा।

लिट् में तो सभी प्रत्यय ही बदल जाते हैं। जैसे—'भूवादयो धातवः १।३।१' से धातु संज्ञा हो जाने पर जब 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६९' (सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्त्तरि) से लकार आने का विधान होता है। तब 'परोक्षे लिट् ३।२। ११५' (अनद्यतने भूते धातोः परः प्रत्ययः) से लिट् लकार आने पर 'तिप्तस्॰' इत्यादि से तिप् आकर। भू+तिप् की स्थिति में 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२' (लिटः) से तिप् के णल् हो जाने पर अनुवन्ध लोप करके भू+अ की स्थिति में 'भुवो वुग्लुङ् लिटोः ६।४।८८' (अचि) से भू के आगे वुगागम करके अनुवन्ध लोप के बाद 'भूव्+अ' की स्थिति में 'लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८' (एकाचो द्वे प्रथमस्य) से द्वित्व करके (यहाँ वृक्षप्रचलनन्याय से भूव् का द्वित्त्व होता है) 'भूव्+भूव्+अ' बनता है। 'पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४' से पहले भूव् की अभ्यास संज्ञा होती है। तब वह 'हलादिः शेषः ७।४।६०' (अभ्यासस्य) से आदि हल् शेष रहा व् का लोप हो गया। बाद 'ह्रस्वः ७।४।५९' (अभ्यासस्य) से भू का ह्रस्व होकर 'भवतेरः ७।४।७३' (अभ्यासस्य) भु का भ हो गया। बाद 'अभ्यासे चर्च ८।४।५३' (झलां जश् चर्) से झश् भ का जश् ब हो जाने से बभूव। आगे केवल तस् को अतुस् झि को उस् होता है, द्वित्त्वादि कार्य तो वे ही सर्वत्र होंगे। बभूवतुः बभूवुः। भू+सि की स्थिति में 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२' (लिटः) से सि का थल् करके अनुबन्ध लोप हो जायेगा। बाद थ की आर्धधातुक संज्ञा करके 'आर्द्धधातुस्येड् वलादेः ७।२।३५' से थ से पहले 'आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६' के कारण इट् होता है अनुबन्ध लोप करके भू+इ+थ की स्थिति में भू के आगे 'भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६।४।८८' (अचि) से वुक् के आगम करके द्वित्त्वादि सारे कार्य होंगे। बभूविथ, बभूवथुः बभूव। बभूव, बभूविव, बभूविम। इन प्रयोगों में केवल परस्मैपदानाम्॰ यही सूत्र प्रत्ययादेश करेगा, और द्वित्त्वादिं तो पूर्ववत् होंगे।

आशीर्लिङ् में 'आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३' से जब आशिष् अर्थ में लकार आया अनुबन्ध लोप करके ल् के स्थान में ति आ जाने पर भू+ति की स्थिति में

'लिङाशिषि ३।४।११६' (आर्द्धधातुकम्) से ति की आर्द्धधातु संज्ञा हो गई तब 'कर्त्तरिशप्' से शप् तो हुआ नहीं, किन्तु 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३' से यासुट् और 'सुट् तिथोः ३।४।१०७' से सुट् होने पर 'किदाशिषि ३।४।१०४' (आशिषि, लिङो, यासुट्, कित्) से आशीर्लिङ् वाला यासुट् तो कित् माना जाता है। जिससे 'क्ङिति च १।१।६' (न, इकोगुणवृद्धी) से गुण का निषेध हो जाता है। दोनों सकारों को 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२६' (झलि, च, पदस्य, लोपः) से, लोप करके भूयात् बन जायेगा। यों ही भूयास्ताम् में भी झल् परे मानकर यासुट् वाले स् का तो लोप होगा, पर सुट् वाला स् रह जायेगा। आगे तो यथास्थान यासुट् वाला सकार भी रहा करेगा जैसे—भूयासुः यहाँ झि का जुस् होना एक विशेष कार्य है। भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त। भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म। इसी प्रकार सभी आर्द्धधातुक लकारों में धातुओं के रूप होंगे। केवल लिट् में तथा लुङ् में ही कुछ ज्यादे फेर-फार होता है। उन लकारों में पाँच-चार धातुओं के रूप जान लेने से पूर्णतया काम चल जायेगा। जैसे—'पठ' धातु का लृट् में तो पठिष्यति साधा ही है। लृङ् में अपठिष्यत्, लुट् में पठिता, लुङ् में इसकी विशेषता यह है कि पठ्+ति की स्थिति में शप् को बाधकर 'च्लि लुङि ३।१।४३' से च्लि होने पर 'च्लेः सिच् ३।१।४४' ने च्लि को सिच् कर दिया। अनुबन्ध लोप हो जाने पर 'इतश्च ३।४।१०१' (ङितो लस्य, लोपः) से इ को लोप कर देने पर पठ्+स्+त् की स्थिति में 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५' से सिच् को 'अस्ति सिचोऽपृक्ते ७।३।९६' (विद्यमानात् सिचः अस्तेश्च परस्य अपृक्तस्य ईट्) इससे त् के आदि में ही ईडागमे जाते अनुबन्ध लोप करके पठ् + इ + स् + ई + त् की स्थिति में 'इट ईटि ८।२।२८' (सस्य लोपः) से सिच् का लोप करके (सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः) इस वार्तिक बलसे 'अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१' (पूर्वपरयोः, एकः, अचि, संहितायाम्) इससे दीर्घ होते समय 'पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१' से सिच् का लोप असिद्ध नहीं होता 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१' से अडागम होकर 'नेटि ७।२।४' से वृद्धिनिषेध कर अपठीत्, अपठिष्टाम् में केवल आर्द्धधातुक इट् करके 'आदेश प्रत्यययोः ८।३।५९' (इण्कोः, अपदान्तस्य मूर्धन्यः सस्य) से स् का ष् हो जाने पर 'ष्टुनाष्टुः ८।४।४१' से ष्टुत्व होकर बनेगा, अपठिषुः। अपठीः, अपठिष्टम्, अपठिष्ट अपठिषम्, अपठिष्व, अपठिष्म। यहाँ 'अतो हलादेर्लघोः ७।२।७।' (हलादेरङ्गस्य लघोरकारस्य परस्मैपदपरके इडादौ सिचि वा वृद्धिर्न भवति) से विकल्प से वृद्धि निषेध होने के कारण एक पक्ष में वृद्धि भी होगी ही अपाठीत्, अपाठिष्टाम्, अपाठिषुः। अपाठीः, अपाठिष्टम्, अपाठिष्ट। अपाठिषम्, अपाठिष्व, अपाठिष्म। इसी प्रकार सेट्, गद, नद इत्यादि धातुओं के दो-दो रूप होंगे।

लुङ् लकार में 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९' से झि का जुस् हुआ करेगा, इसका ध्यान रखना है। अनिट् अजन्त तथा अनिट् हलन्त का भी रूप जानना आवश्यक है। अनिट् अजन्त धातु क्षिका 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१' (इगन्तस्याङ्गस्य) से वृद्धि होकर अक्षैषीत्, अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः। अक्षैषीः, अक्षैष्टम् अक्षैष्ट। अक्षैषम् अक्षैष्व, अक्षैष्म। यों ही सभी अनिट् अजन्तों का रूप होगा अकार्षीत्, अहार्षीत्, अनैषीत्, अचैषीत् इत्यादि। यहाँ तो सभी कार्य वे ही होंगे, केवल 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः' वाला इट् नहीं होगा। यों ही हलन्त अनिट् पच् धातु का रूप 'वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३' (वदव्रजोर्हलन्तानां चाङ्गानाम् अचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदे परे) से वृद्धि होकर अ+पाच्+स्+ई+त्=सीत् बनेगा बाद 'चोः कुः ८।२।३०' (झलिपदान्ते) से कुत्त्व होने पर आदेश प्रत्यययोः से स् का ष् हो जाने पर क्+षीत्=क्षीत् होकर अपाक्षीत्, अपाच्+स्+ताम् स्लोप 'चोः कुः' से च् का क् कर देना है। अपाक्ताम् अपाक्षुः। अपाक्षीः, अपाक्तम्, अपाक्त। अपाक्षम्, अपाक्ष्व, अपाक्ष्म। अजन्त सेट् धातु की भी वृद्धि, 'सिचि वृद्धिःपरस्मैपदेषु ७।२।१' से ही होना है जैसे—अलावीत् अपावीत् इत्यादि। बस, लुङ् में चार प्रकार के रूप अधिक मिलेंगे। कहीं सिच् का लुक्, कहीं अङ्, कहीं क्स इत्यादि भेद तो अकिञ्चित् कर है। वैसे भी लङ् लकार के समान बोले जाते हैं। जैसे—गम् धातु का 'पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५' (च्लेरङ्) से च्लि का अङ् होकर लङ् के समान रूप चलेंगे। अगमत्, अगमताम्, अगमन्। अगमः, अगमतम्, अगमत। अगमम्, अगमाव, अगमाम। इत्यादि विशेष रूप होंगे।

लिट् लकार में भी धातु का तो बभूव इत्यादि विशेष रूप होते हैं पर सामान्य रूप तो लिट् लकार में अजन्त धातुओं में क्षि धातु होगा। क्षि+अ की स्थिति में 'लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८' (एकाचो द्वे प्रथमस्य से द्वित्व होने पर क्षि+क्षि+अ होगा। 'पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४' से पहले क्षि की अभ्यास संज्ञा हो जाने पर 'हलादिः शेषः ७।४।६०' से कि क्षि अ बनता है। 'कुहोश्चुः ७।४।६२' (अभ्यासस्य) से कि का चि हो जाता है। क्षि का 'अचोऽञ्णिति ७।२।११५' (अङ्गस्य वृद्धिः) से ऐ हो जाने पर 'एचोऽयवायावः ६।१।७८' (अचि संहितायाम्) ये आय् हो जाने पर चिक्षाय। अतुस् में चिक्षियतुः यहां 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७' से इयङ् होता है चिक्षियुः। चिक्षि+थ की स्थिति में अजन्त धातु होने से 'अचस्तास्वत्थल्यनिटोनित्यम् ७।२।६१ (तासौ ये नित्यम् अनिटः अजन्ताः तेभ्यः तासाविव थलि न इट्) से इट् निषेध प्राप्त हुआ पर 'ऋतो भारद्वाजस्य ६।२।६३' (भारद्वाजस्य मतेन तासौ नित्यम् अनिटः ऋदन्तादेव धातोः तास्वत् थलि इट् न

भवति अन्यस्य तु स्यादेव) से विकल्प इट् होगा। चिक्षि+इथ गुणायादेश होकर चिक्षयिथ इडभाव में चिक्षेथ। चिक्षियथुः। चिक्षिय। चिक्षि+अ यहाँ 'णलुत्तमो वा ७।१।९१' (णित्) से विकल्प णित् हो जाने से वृद्धि भी णित् पक्षमें होगी अणित् पक्षमें गुण होगा चिक्षाय, चिक्षय। वृद्धि ऐ होगी चिक्षै+अ=चिक्षाय। अणित्पक्षमें (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) ७।३।८४'से गुण अयादेश होने से चिक्षय होगा। चिक्षि+व में अनिट् धातु होने पर भी 'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।१३' (एभ्य एव लिट् इण् न स्यात् अन्यस्मादनिटोऽपि स्यादेव) नियम से नित्य इट् होगा। कित्त्वात् गुण न होकर 'अचिश्नु०' से इयङ् होकर चिक्षियिव, चिक्षियिम। यों ही सभी इवर्णान्त तथा उवर्णान्त अनिट् धातुओं का रूप चलेगा। संयोगादि वालों का इयङ् उवङ् होगा फरक च दोनों का नहीं होगा। उवर्णान्तों में तो चाहे संयोग रखें या न रखें उनका तो उवङ् ही होना है। जैसे—क्षि के समान चिक्राय, चिक्रियतुः, चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ, चिक्रियथुः चिक्रिय। चिक्राय-चिक्रय, चिक्रियिव चिक्रियिम। पर नी का तो निनाय निन्यतुः, निन्युः। यहाँ 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२।' (संयोग पूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुः तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यात् अचि परे) से यण् होता है क्योंकि यण् इयङ् से पर है। निनयिथ-निनेथ, निन्यथुः, निन्य। निनाय-निनय, निन्यिव, निन्यिम। यों ही उवर्णान्त दोनों का उवङ् होता है। दुद्राव, दुद्रुवतुः दुद्रुवुः। दुद्रविथ-दुद्रोथ, दुद्रुवथुः, दुद्रुव। दुद्राव-दुद्रव, दुद्रुव, दुद्रुम। जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः। जुहुविव जुहुविम। यहां इट् होगा।

यहाँ लिट् लकार सम्बन्धी द्वित्वादि कार्य इट् अनिट् भेद दिखाये हैं। अजन्त ऋवर्णान्तों में कृ धातु का चकार चक्रतुः चक्रुः आदि रूप होंगे। यहाँ कृ + कृ + अ की स्थिति में 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास सज्ञा होने पर 'उरत् ७।४।६६' से ऋ का अर् करके कर् + कृ + अ बनाकर 'हलादिः शेषः' पुनः 'कुहोश्चुः' लगाकर च + कृ + अ की स्थिति में 'अचोञ्णिति' से आर् वृद्धि करके चकार। आगे कित् में 'इको यणचि' से यण् करके चक्रतुः चक्रुः। थल् में गुण करके चकर्थ। यहाँ 'ऋतो भारद्वाजस्य' से इट् का नित्य ही निषेध होगा। 'कृसृ भृवृ०' उसी का साथी है, वह 'व' 'म' में भी इट् नहीं होने देगा। चक्रथुः चक्र। चकार चकर, चकृव, चकृम। ऐसा ही ऋदन्त हृ धातु भी है, पर उसका रूप व म में इसी कृसृ भृवृ० के नियम से तो इट् वाला होगा। उसके व म को इट् हो जायेगा। जहार, जहृतुः, जहृः। जहर्थ, जहृथुः, जहृ। जहार-जहर, जहृिव, जहृिम। सस्मार, सस्मरतुः, सस्मर्थ, सस्मरिव, सस्मरिम। यों ही अन्यान्य ऋदन्तों के रूप होंगे।

अजन्त धातुओं में आदन्त धातुओं को तो प पा + अ की स्थिति में 'आत औ णलः ७।१।३४' से णल् का औ करके वृद्धि एकादेश करके पपौ बनेगा। प + पा + अतुस् 'आतो लोप इटि च ६।४।६४' से आ का लोप करके पपतुः पपुः। पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप। पपौ, पपिव, पपिम। बस अजन्तों के भेद समाप्त।

हलन्तों में दो ही भेद हैं। एक गद + अ की स्थिति में द्वित्वादि अभ्यास कार्य कर चुकने पर जगद + अ में 'अत उपधायाः ७।२।११६' से उपधा वृद्धि करके जगाद, जगदतुः, जगदुः। जगदिथ, जगदथुः, जगद। जगाद जगद जगदिव जगदिम। यह धातु सेट् है अतः थल् में विकल्प इट् नहीं होता। अनिट् धातुओं का ही थल् में विकल्प से इट् होता है। यह इट् की विशेषता है। दूसरी विशेषता हलन्त धातुओं में अभ्यास लोप की है। जैसे—पठ् सेट् धातु का भी पपाठ, पेठतुः, पेठुः होगा। पच् अनिट् का भी पपाच, पेचतुः, पेचुः होगा। क्योंकि इसका सूत्र है 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०' से अतुस् प्रभृति कित् प्रत्ययों में अभ्यास का तो लोप हो जाता है। धातु का अकार एकार हो जाता है। जो पेठतुः, पेठुः पेचतुः पेचुः में हो गया। उसकी शर्त यही है कि लिट् मानकर धातु का कोई आदेश होना नहीं चाहिये। जगदतु में तो ग का ज होता है। यहाँ पठ, पच में प का कोई आदेश नहीं होता। पपच + अतुस् की स्थिति में अभ्यास प का लोप और धातु के अ का ए करके पेचतुः, पेचुः रूप बनते चलेंगे। पठ् का तो केवल पेठथ, पर पच् का पेचिथ, पपक्थ। जब इट् होगा तब तो अभ्यास लोप और एकार होगा नहीं तो नहीं होगा क्योंकि वह सूत्र इट् परे रहने पर ही अभ्यास लोप और एत्त्व करता है। आगे के रूप दोनों के समान होंगे। पेठथुः, पेठ, पपाठ-पपठ, पेठिव, पेठिम। यों ही पेचथुः पेच। पपाच-पपच, पेचिव पेचिम।

धातु रूप प्रदर्शन के संदर्भ में इट् की समस्या को भी सुलझा लेना चाहिये। थल् में अनिट् हलन्त धातुओं के लिये 'उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२' इससे इट् का निषेध होता है और 'ऋतो भारद्वाजस्य' इट् होने का हठ करता है। यों अनिट् हलन्तों को विकल्प से इट् होता है। सेटों को यह झंझट झेलना नहीं पड़ता। वे सेठ (सेठ जो) हैं। इसकी भी एक कारिका है, उसे छात्रों को याद रखना चाहिये—

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त इदृङ्नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

अजन्त या अकार वाले हलन्त जो भी धातु यदि तास् में अनिट् हैं तो उनको थल् में विकल्प से इट् होगा। परन्तु ऋदन्त धातु तो थल् में नित्य ही अनिट् रहेगा

तां। 'कृसभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि' इन आठ धातुओं को छोड़कर अन्य अजन्त या हलन्त अनिट् या सेट उन सब को लिट् लकार में (व म तथा आत्मने पद के से, ध्वे, वहे, महे) सभी को नित्य ही इट् होता है। बस, परस्मैपद में सभी गणों के सभी सामान्य धातुओं के ऐसे ही आर्धधातुक रूप होते हैं। इति परस्मैपदीयम् आर्धधातुकरूपम्।

भावकर्मवाच्यम्

धातु रूपों के सामान्यतः दो भेद प्रसिद्ध हैं १—कर्तृवाच्यका रूप। २—कर्मवाच्य का रूप। अभीतक कर्तृवाच्य रूप बताये जा चुके हैं। कर्मवाच्य के रूप उनसे भी सरल हैं। क्योंकि यहां गणभेदका कोई कार्य नहीं होता। सभी धातुओं के आगे अदन्त विकरण वाले आत्मनेपद के प्रत्ययों के आ जाने पर बीच में यक् विकरण लगाकर रूप बना लेते हैं।

जैसे—भ्वादिगण का पढ़ने अर्थ में पठ=व्यक्तायां वाचि पठ धातु है। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से ठके अ की इत्संज्ञा करके लोपकर देने पर 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' से कर्ममें जब लकार लाना चाहते हैं तो पूर्ववत् 'वर्तमाने लट्' से लट्लकार आता है। उसके स्थानमें 'भावकर्मणोः १।३।१३' (आत्मनेपदम् भवति) से आत्मने पद के प्रत्यय ते आदि जुटते हैं। तो पठ+ते बनता है। बाद 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से ते की सार्वधातुक संज्ञा हो जाने पर 'सार्वधातुके यक् ३।१।६७' से धातु और प्रत्ययके बीचमें यक् विकरण लग जाता है। क् की इत्संज्ञा करके लोप कर देने पर 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' से ठ् को यमें मिला देने पर पठ्यते बनता है। पठ्य+इते की स्थिति में 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होने पर पठ्येते बनता है। पठ्य+अन्ते मे 'अतो गुणे' से पररूप होने पर पठ्यन्ते बनता है। पठ्यसे पठ्येथे पठ्यध्वे। पठ्य+ए में पररूप होने पर पठ्ये। पठ्य+वहे पठ्य+महे में 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घ करके पठ्यावहे पठ्यामहे बनता है।

कर्मवाच्यकी विशेषता यह है कि यहाँ कर्म अर्थमें प्रत्यय होनेके कारण कर्म उक्त हो जाता है। 'यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः' ऐसाही नियम है। कर्मके उक्त हो जाने से 'तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा' इस भाष्यानुसार उसमें प्रथमा विभक्ति होती है। 'कर्मणि द्वितीया' इत्यादि विभक्तियां अनुक्त कर्मादि कारकों में ही होती हैं। इसीसे यह नियम निकल पड़ा है कि उक्त कर्ममें प्रथमा विभक्ति होती है, अनुक्त कर्म में द्वितीया। उक्त कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है और अनुक्त कर्ता में तृतीया। उसी कर्मके अनुसार कर्मवाच्यके प्रत्यय ते इते इत्यादि लगते हैं। प्रथम पुरुषका एकवचन कर्म होगा तो प्रथम पुरुषकी एकवचन क्रिया होगी। अर्थात्

कर्मवाच्यमें पुरुष वचन इत्यादि जो भी क्रियामें लगेंगे उनका सामानाधिकरण्य (जिम्मेवारी) कर्मके साथ रहेगा। जैसे—'स ग्रन्थं पठति'। यह कर्तृवाच्य (उक्त कर्तावाला) वाक्य है। यहां कर्तामें प्रथमा विभक्ति का एकवचन और प्रथम पुरुष है तो क्रिया भी प्रथम पुरुषकी एकवचनान्त 'पठति' है। कर्म अनुक्त है। उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है, उससे क्रिया का सामानाधिकरण्य सम्बन्ध नहीं है। यही वाक्य जब कर्मवाच्यमें परिवर्तित किया जायगा तो 'तेन ग्रन्थः पठ्यते' हो जायगा। यहां कर्म ग्रन्थमें प्रथमा विभक्ति हो गयी। क्योंकि वही उक्त है और क्रिया भी प्रथम पुरुषका एकवचनान्तही रही। क्योंकि ग्रन्थः यह प्रथम पुरुषकी एकवचनान्त कर्म है। द्वितीया यहाँ नहीं होगी, क्योंकि उक्त हो गया है। इसलिये उसमें उपर्युक्त भाष्यानुसार प्रथमा विभक्ति हुई है। यौंही जैसे यहां प्रथम पुरुषके एकवचन कर्म होने से प्रथम पुरुषके एकवचनान्त क्रिया है। वैसेही जब मध्यम पुरुषका कर्म होगा तो मध्यम पुरुषकी क्रिया होगी। उत्तम पुरुषका कर्म होगा तो उत्तम पुरुषकी क्रिया होगी। जैसे—स त्वां पठति। तेन त्वं पठ्यसे। सः मां पठति। तेन अहं पठ्ये। वचनभी वेही होते हैं, जो उन कर्मोंमें होंगे। जैसे—त्वम् एकवचन है तो पठ्यसे भी एकवचन है। अहम् एकवचन है तो पठ्ये भी एकवचन है। कर्तामें तृतीया इसलिये हुई कि वह अनुक्त है। क्योंकि कर्ममें प्रत्यय होनेसे कर्मही तो उक्त है। कर्तामें तो यहां प्रत्यय नहीं, अतः वह अनुक्त है। उसमें तृतीया होगी ही। उसमें लिङ्ग और वचन तो वेही होंगे जो पूर्व प्रथमान्त कर्तामें थे। जैसे—सः पुलिङ्ग एकवचन है तो तेन भी पुलिङ्ग एकवचनही रहा।

तौ ग्रन्थौ पठतः=ताभ्यां ग्रन्थौ पठ्येते। ते ग्रन्थान् पठन्ति=तैः ग्रन्थाः पठ्यन्ते। स त्वां पठति तेन त्वं पठ्यसे। स युवां पठति=तेन युवां पठ्येथे। स युष्मान् पठति=तेन यूयं पठ्यध्वे। त्वं मां पठसि=त्वया अहं पठ्ये। त्वम्=आवां पठसि=त्वया आवां पठ्यावहे। त्वम् अस्मान् पठसि=त्वया वयं पठ्यामहे। इसी प्रकार सभी सकर्मक हलन्त धातुओंके रूप बनेंगे और कर्तृवाच्यके कर्ममें द्वितीया की जगह प्रथमा होगी और कर्तामें प्रथमा की जगह तृतीया विभक्ति होगी। जैसे—स ग्रामं गच्छति=तेन ग्रामः गम्यते। त्वं ग्रामं गच्छसि=त्वया ग्रामः गम्यते। अहं ग्रामं गच्छामि=मया ग्रामः गम्यते आदि। हलन्तोंमें भी य और व तथा र वाला धातुओंके क्रमसे इ, उ, ऋ सम्प्रसारण हो जाता है जैसे—स देवान् यजति=तेन देवा इज्यन्ते। यहां यज्+यतेकी स्थितिमें 'वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५' से य् का इ सम्प्रसारण हो जायगा बाद 'सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०४' से पूर्वरूप हो जानेसे इज्यते इज्येते आदि

रूप बनेंगे। वद धातुका उद्यते उद्येते उद्यन्ते। वस धातुका उष्यते होगा। ग्रह धातुका गृह्यते। वरः वध्वाः पाणिम् गृह्णाति = वरेण वध्वाःपाणिः गृह्यते। रामादिभिः सीतामाण्डव्युर्मिलाश्रुतकीर्तीनां पाणयो गृह्यन्ते। स प्रश्नं पृच्छति = तेन प्रश्नः पृच्छ्यते आदन्त धातुओं के 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६।४।६६' से ई हो जाने पर 'अकृत्सार्वधातु कयोर्दीर्घः ७।४।२५' से दीर्घ का ही दीर्घ होकर दीयते। धीयते। मीयते। स्थीयते। गीयते पीयते। हीयते सीयते आदि।

एक बात प्रसङ्गसे यहां ही कह दी जाती है कि, संस्कृत भाषामें अकर्मक धातुओं भाववाच्य होता है। जिसमें सारी कार्यवाही कर्मवाच्यके समानही होती है। अन्तर इतनाही होता है कि, भाववाच्यके लकारोंमें केवल प्रथम पुरुषका एकवचन प्रत्ययही धातुमें लगेगा। धातु और प्रत्ययके बीचमें 'य' लगाकर केवल प्रथम पुरुषके एकवचन-रूप बनाते हैं। जैसे—स तिष्ठसि = तेन स्थीयते। तौ तिष्ठतः = ताभ्यां स्थीयते। ते तिष्ठन्ति = तैः स्थीयते। त्वं तिष्ठसि = त्वया स्थीयते। युवां तिष्ठथः = युवाभ्यां स्थीयते। यूयं तिष्ठथ = युष्माभिः स्थीयते। अहं तिष्ठामि = मया स्थीयते। आवां तिष्ठावः = आवाभ्यां स्थीयते। वयं तिष्ठामः = अस्माभिः स्थीयते। इसका कारण यह है कि, भाववाच्यमें प्रत्यय होनेसे भावही उक्त होता है। भाव तो क्रियाको ही कहते हैं; क्रियामें तो पुरुष वचनका चिन्ह होता नहीं है। अतः लकारोंमें स्वभावतः प्रथम पुरुषका एकवचन क 'त' का चिन्ह लगाकर काम चलाते हैं। योंही सभी अकर्मक धातुओंका रूप केवल प्रथम पुरुषका एकवचन मात्र होताहै। स हसति = तेन हस्यते। ते हसन्ति = तैः हस्यते। स भवति = तेन भूयते। ते भवन्ति = तैः भूयते। स जीवति = तेन जीव्यते। ते जीवन्ति = तैः जीव्यते। त्वं = जीवसि = त्वया जीव्यते। इत्यादि रूप होते हैं। अकर्मक धातुओंका विषयप्रवेशमें उल्लेख हो चुका है।

आकारान्तोंमे भी 'घुमास्थागापाजहातिसां' को छोड़कर अन्य आकारान्तों का 'आ' ज्यों कात्यों रहता है। जैसे स ग्रामं याति = तेन ग्रामः यायते। त्वं ग्रामं यासि = त्वया ग्रामः यायते। अहं ग्रामं यामि = मया ग्रामः यायते। ज्ञा = अवबोधने। ज्ञायते। पा = रक्षणे पायते। ला आदाने लायते। इकारान्त उकारान्तका दीर्घ हो जाता है। जैसे-सः शत्रून् जयति = तेन शत्रवः जीयन्ते। त्वम् महाभारतं काव्यं शृणोषि - त्वया महाभारतं काव्यं श्रूयते। ऋकारान्त धातुओंका रूप तो 'रिङ्शयग्लिङ्क्षु ७-४-२८' से ऋके रि कर देनेसे क्रियते, व्रियते, भ्रियते, ध्रियते, आद्रियते आदि होता है।

वाक्य बनानेका प्रकार जैसे—सा कवितां करोति = तया कविता क्रियते। त्वं कवितां करोषि = त्वया कविता क्रियते। सावित्री सत्यवन्तं वृणोति = सावित्र्या

सत्यवान् ध्रियते । श्रीकृष्णः गोवर्द्धनं धरति = श्रीकृष्णेन गोवर्द्धनःध्रियते । भृत्यः घ
भरति । भृत्येन घटः ध्रियते । स ध्रियते = तेन ध्रियते । स आद्रियते गुरुम्=ते
आद्रियते गुरुः । संयोगादि ऋकारान्त धातुओंमे स्मृ धातुका रूप स्मर्यते गुरुः होग
स्मृ + यतेकी स्थितिमें 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९' से गुण होता है । दीर्घ ऋ
रान्तका यक् प्रत्ययपरे रहने पर 'ऋत इद्धातोः ७।१।१००'से ऋके इर् हाने पर 'हलि
८।२।७७ से दीर्घ होने से कीर्यते, तीर्यते । आदि रूप होता है । लोट लकारमें-पठ
ताम् , भूयताम् । लङ् लकारमें अपठ्यत, अभूयत । विधिमें पठ्येत भूयेत आ
स्वयं रूपोंको समझना चाहिये । आर्धधातुकम 'स्यसिच्० ६।४।६२' से सभी क
होंगे ।

आत्मनेपदे सार्वधातुक रूपम्

यद्यपि भावकर्मवाच्य के प्रसङ्ग में आत्मनेपदी प्रत्ययों का प्रयोग तो हो ग
है ।' पर गणों के अनुसार उनका प्रयोग नहीं आया है । अनुगमार्थ सभी लकारों
आत्मनेपदी प्रत्यय पहले बताये जाते हैं । भ्वादि दिवादि, तुदादि, चुरादि के
में एक ही प्रकार के आत्मनेपदी प्रत्यय होते हैं, जो पहले लिख दिये गये हैं । य
मूल प्रत्यय तो-त, आताम्, झ । थास्,आ थाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् हैं । पर इन
आदेश करके चार गणों में ऐसे ही रूप बनते हैं । 'टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४
७९' से त में अकार मात्र की टि संज्ञा हुई है । उसी अ का ए
जाता है । यों ही आताम् के आम् झ के अ आथाम् के आम् ध्वम्
अम् का तथा ईट का, वहिङ् महिङ् के इङ् का ए कर देने पर ते, आते आदि
बनते हैं । थास् का तो 'थासः से ३।४।८०' से 'से' हो जाता है । आगे अङ्ग सं
होगी अतः 'झोऽन्तः ७।१।३' से झ का अन्त करके अन्ते हो जाता है । अंग सं
होने से आते और आथे के आकार का 'आतो ङितः ७।२।८१' से इय् आदे
कर 'लोपो व्योर्वलि ६।१।६४' से य् का लोप करके इते, इथे हो जाते हैं । यों च
गण के प्रत्यय एक प्रकार के होते हैं । इनसे भिन्न छ गणों में 'ते आते, अते ।
आथे, ध्वे । ए, वहे, महे ।' ऐसे ही प्रत्यय होंगे । इनमें झ का 'आत्मनेपदेष्वन
७।१।५' से अत् आदेश करके अते बना लेंगे । अब इन्हीं प्रत्ययों में धातुओं
जोड़ते चलना है । बीच में धातुओं और प्रत्ययों के उन उन गणों के विकरणों
भी जोड़ देना है । जैसे—एध=वृद्धौ यह, भ्वादि का आत्मनेपदी धातु है ।
धातु की 'भूवादयो धातवः १।३।१' से धातु संज्ञा होने के कारण ध के अ की इत्
लोप करके एध् से वर्त्तमान समय में 'वर्त्तमाने लट् ३।२।१२३' से लट् आ
पर उसके स्थान में ते, इते इत्यादि ९ नव आत्मनेपदी सभी प्रत्यय क्रम से आवें
संक्षेप से उसका क्रम यही है—कि जब एध्+लट् बनता है तब लस्य ३।४

के अधिकार में 'तिप्तस्झि सिप् थस् थ मिब्वस् मस् तातांझ थासाथांध्वमिड्वहि महिङ् ३।४।७८' से ९ आत्मनेपदी प्रत्यय ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि एध् धातु अनुदात्तेत् है तो उसके आगे 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२' से ते इते चलेंगे तो 'तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१' से तीन-तीन को प्रथम-पुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष ये तीन संज्ञायें हो जाती हैं। तब 'शेषे प्रथमः १।४।१०८' से प्रथमपुरुष ते, इते अन्ते तीनों प्रत्यय प्राप्त होते हैं। 'तान्येकवचन-द्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२' से इन तीनों में एक-एक की क्रमशः एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञा हो जाने पर 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२' से एकवचन ते आ जाता है। तो एध्+ते की स्थिति में ते की 'तिङ्शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३' से सार्वधातुक संज्ञा करके 'कर्त्तरि शप् ३।१।६८' से धातु के आगे शप् करके अनुबन्धलोप हो जाने पर ध् को अ से मिला कर एधते रूप बनता है। यों ही शप् होने पर अ के साथ ध् को मिलाकर एध+इते की स्थिति में 'आद् गुणः ६।१।८७' से ऐ गुण एकादेश करके एधेते बना देते हैं। एध+अन्ते में 'अतो गुणे ६।१।९७' से पर रूप करके एधन्ते बनता है। एधसे एधेथे तो एधेते के ऐसा ही होता है। एधध्वे। एध+ए पररूप हो जाने पर एधे बनेगा। एध+वहे, महे में 'अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१' से दीर्घ करके एधावहे एधामहे बन जाता है। यों ही जितने भी भ्वादिगण के अनुदात्तेत् और ङित् धातु होंगे, उनका ऐसा ही रूप होगा। भाष = व्यक्तवाचि। ईक्ष=दर्शनाङ्कनयोः। ईह=चेष्टायाम्। इत्यादि धातुओं के रूप होंगे। जैसे—भाषते, भाषेते, भाषन्ते। भाषसे भाषेथे, भाषध्वे। भाषे, भाषावहे भाषामहे। ईक्षते। ईहते। इत्यादि।

इन्हीं धातुओं के लङ् में एध + त की स्थिति में 'आडजादीनां ६।४।७२' से आट् का आगम करके 'आटश्च ६।१।९०' से वृद्धि करके ऐधत, ऐधेताम् ऐधन्त। ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम्। ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि। यहाँ तो प्रत्यय का आदेश कुछ होना नहीं है। केवल शप् करके लङ् के प्रत्यय जोड़कर प्राप्त सन्धि करनी है। यों ही अन्य धातुओं के भी रूप होंगे—अभाषत, अभाषेताम्, अभाषन्त। अभाषथाः, अभाषेथाम्, अभाषध्वम्। अभाषे, अभाषावहि, अभाषामहि। ऐक्षत। ऐहत। अकम्पत अकम्पेताम् अकम्पन्त।

अब लोट् में तो लट् के ही रूपों को बदलते चलना है। एधते का 'आमेतः ३।४।९०' (लोटः) से ए का आम् हो जाता है। एधताम् एधेते का एधेताम्। एधन्ते का एधन्ताम्। एधसे में 'सवाभ्यां वामौ ३।४।९१' (लोटः) से ए का व कर देने से एधस्व हो जायेगा। एधेथे का एधेथाम्। एधध्वे का एधध्वम्। एधे का एधै

हो जायगा। 'एत ऐ ३।४।९३' (लोटः) से ए क ऐ करके, उसी को 'आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२' (लोटः) से आट् का आगम करके 'आटश्च' से वृद्धि करके एध ऐ करके पुनः 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि करके एधै होगा। एध के साथ आवहै, आमहै का सवर्ण दीर्घ कर देने से एधावहै, एधामहै होगा। यों ही अन्यान्य धातुओं के रूप लोट् लकार में बना लेना होगा। भाषताम्, भाषेताम्, भाषन्ताम्। भाषस्व, भाषेथाम्, भाषध्वम्। भाषै, भाषावहै, भाषामहै। ईक्षताम्। ईहताम्। इत्यादि।

इसी प्रकार विधिलिङ् में भी जब एध् धातु के आगे आत्मनेपदी प्रत्यय त लगेगा तो 'लिङः—सीयुट् ३।४।१०२' से सीयुट् का आगम होगा, 'सुट् तिथोः ३।४।१०७' से त से पूर्व 'आद्यन्तौ टकितौ' के बल से सुट् का आगम भी होगा। अनुबन्ध लोप करके एध् + सीय् + स् + त की स्थिति में 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९' से दोनों सकारों को लोप करके 'लोपो व्योर्वलि' से य् का लोप करके ईत + बना लेने पर 'कर्त्तरि शप्' से शप् करके अनुबन्ध लोप कर 'आद् गुणः' से गुण करके एधेत। इताम् में य् लोप नहीं होगा इयाताम् के साथ। एधेयाताम्, 'झस्य रन् ३।४।१०५' से झ के स्थान में रन् करके पूर्ववत् सीयुट् करके ईरन् = एधेरन्। एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्। 'इटोऽत् ३।४।१०६' (लिङः) से इट् का अत् कर अनुबन्ध लोप करके पूर्ववत् ईय = एधेय बनता है, एधेवहि, एधेमहि। इन सार्वधातुक लकारों में शप् तो सभी जगह होता ही है। केवल प्रत्ययों के भेदों को याद कर लेना चाहिये, जो पहले ही बताये गये हैं। ये ही प्रत्यय भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि एवं सभी ण्यन्तादि प्रक्रियाओं में लगते हैं।

अदादि प्रभृति गणों में केवल आ का इ नहीं होना है और झ का अन्त नहीं होना है। अन्य सभी विकार तो होंगे ही। अब अदादि गणों में आत्मनेपदी धातुओं को लेकर उन प्रत्ययों को जोड़कर गण का चिह्न विकरण लगाकर रूप बनाते चलना है। जैसे—अदादिगण का आत्मनेपदी धातु इङ् = अध्ययने है। 'इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः।' इङ् और इक् धातु का कभी भी अधि उपसर्ग से वियोग नहीं होता। उनमें इक् तो इक् = स्मरणे परस्मैपदी है। उसका अध्येति प्रभृति रूप होंगे और याद करना अर्थ होगा, पर इङ् धातु के ङ् की इत् संज्ञा लोप होकर इ + ते की स्थिति में सार्वधातुक शप् विकरण को 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२' से लुक् करके उपसर्ग धातु का कार्य दीर्घ करके अधीते। इ + आते में शप् का लुक् करके 'अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७' से इयङ् करके दीर्घादेश के बाद अधीयाते अधीयते। अधीषे अधीयाथे, अधीध्वे। अधीये, अधीवहे, अधीमहे। यों ही शीङ् = स्वप्ने। धातु के रूप शी + ते की स्थिति में शप् का लुक् करके

'शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१' से गुण करके शेते, अयादेश करके शयाते। शे + अते की स्थिति में 'शीङो रुट् ७।१।६' से रुडागम करके शेरते। शेषे, शयाथे, शेध्वे। शये, शेवहे, शेमहे। लङ् में–अशेत, अशयाताम्, अशेरत। अशेथाः, अशयाथाम्, अशेध्वम्। अशयि, अशेवहि, अशेमहि। लोट् में–शेताम्, शयाताम्, शेरताम्। शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम्। शयै, शयावहै, शयामहै। लिङ् में –शयीत, शयीयाताम्, शयीरन्। शयीयाः, शयीयाथाम्, शयीध्वम्। शयीय, शयीवहि, शयीमहि। इस धातु में गुण होना एक विलक्षण कार्य है। क्योंकि क्ङिति च का अपवाद यह गुण है। रुडागम भी अत को होना ही है। ब्रूञ्=व्यक्तायां वाचि यह धातु ञित् होने के कारण उभयपदी है, तो परस्मैपद का रूप बताये गये हैं। आत्मनेपद में बुद्धि से काम लेकर ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते। ब्रूषे, ब्रुवाथे, ब्रूध्वे। ब्रुवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे बना लेना चाहिये। केवल 'अचिश्नु०' से उवङ् होना है। लङ् में–अब्रूत अब्रुवाताम्, अब्रुवत। अब्रूथाः, अब्रुवाथाम्, अब्रूध्वम्, अब्रुवि, अब्रूवहि, अब्रूमहि। बुद्धिमान् छात्रों के लिये सिवाय अडागम के लट् वाला उवङ् ही तो है। यों ही लोट् में, प्रत्ययों के भेद मात्र हैं। ब्रूताम्, ब्रुवाताम् ब्रुवताम्। ब्रूष्व ब्रुवाथाम् ब्रूध्वम्। ब्रवै ब्रवावहै ब्रवामहै। उत्तम पुरुष में आडागम जो पित् है इसीलिये 'क्ङिति च' की दाल नहीं गली। लिङ् में तो प्रत्यय जोड़ कर उवङ् करते चलना है। ब्रुवीत, ब्रुवीयाताम्, ब्रुवीरन्। ब्रुवीथाः ब्रुवीयाथाम्, ब्रुवीध्वम्, ब्रुवीय, ब्रुवीवहि, ब्रुवीमहि। बस, अदादि आत्मनेपदी धातुओं के रूप अब चतुर छात्रों के लिये खिलौना है।

जुहोत्यादि गण में उभयपदी धातु दा है। जिसका परस्मैपद का रूप बताया गया है। आत्मनेपदी रूप भी परस्मैपद के तस् प्रत्यय वाले रूप को ही आत्मनेपद के प्रत्ययों के अनुरूप बनाते चलना है। जैसे–दत्त को ही दत्ते। ददाते ददते। दत्से ददाथे दद्ध्वे। ददे दद्वहे दद्महे। साधनिका भी वैसी ही है। दा + ते की स्थिति में शप् को श्लु करके 'श्लौ ६।१।१०' (एकाचो द्वे प्रथमस्य) से द्वित्व करके 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास संज्ञा करके 'ह्रस्वः' से ह्रस्व करके ददाते की स्थिति में 'श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२' से आ का लोप कर 'खरि च' से दद् के द् का त् कर देना है दत्ते। ददाते में आ लोप करके स्वर संयोग कर देना है। बस बुद्धि साथ रखिये सारे रूप बना लीजिये। लङ् में–अदत्त, अददाताम्, अददत। अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्। अददि, अदद्वहि, अदद्महि। लोट् में–दत्ताम्, ददाताम्, ददताम्। दत्स्व, ददाथाम्, दद्ध्वम्। ददै, ददावहै ददामहै। यहाँ क्रमशः वृद्धि सवर्ण दीर्घ करना है। विधिलिङ् में–ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्।

ददीथाः, ददीयाथाम्, ददीध्वम्। ददीय, ददीवहि, ददीमहि। 'धा' धातु में क्या बताना है। धत्तः के आधार पर धत्ते, दधाते, दधते। 'दधस्तथोश्च ८।२।३८', 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७' को ध्यान में रखना है। धत्से, दधाते, धद्ध्वे। दधे, दध्वहे, दध्महे। लङ् में–अधत्त, अदधाताम्, अदधत। अधत्थाः, अदधाथाम्, अधद्ध्वम्। अदधि, अदध्वहि, अदध्महि। लोट् में–धत्ताम्, दधाताम् दधताम्। धत्स्व, दधाथाम्, धद्ध्वम्। दधै, दधावहै, दधामहै। दीर्घ होता है। आ लोप नहीं करना है, यही तो बुद्धिमत्ता है। और विधिलिङ् में आलोप की ही प्रधानता है। दधीत, दधीयाताम्, दधीरन्। दधीथाः, दधीयाथाम्, दधीध्वम्। दधीय, दधीवहि, दधीमहि।

दिवादि गण में प्रत्यय तो वे ही भ्वादि वाले हैं, केवल विकरण 'दिवादिभ्यः श्यन्' होता है। अनुबन्ध लोप करके कर्मवाच्य वाला रूप लिख देना है। वस्तुतः कर्म वाच्य और दिवादि के रूपों का, कर्म और कर्त्ता ये ही दो भेद बताते हैं। दिवादि में कर्म में द्वितीया और कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होगी। क्रिया बेचारी कर्त्ता का साथ देगी। इसी से पता चलेगा कि यह दिवादि का रूप है। जब कर्म से प्रथमा और कर्त्ता से तृतीया हो, तथा क्रिया कर्म का साथ देती हो, तो आप समझ जायेंगे कि यह कर्मवाच्य है। युध = संग्रामे। युध्यते युध्येते, युध्यन्ते। युध्यसे, युध्येथे, युध्यध्वे। युध्ये, युध्यावहे, युध्यामहे। लङ्–अयुध्यत, अयुध्येताम्, अयुध्यन्त। अयुध्यथाः, अयुध्येथाम्, अयुध्यध्वम्। अयुध्ये अयुध्यावहि, अयुध्यमहि। लोट्–युध्यताम्, युध्येताम्, युध्यन्ताम्। युध्यस्व युध्येथाम्, युध्यध्वम्। युध्यै युध्यावहै, युध्यामहै। विधिलिङ्–युध्येत, युध्येयाताम्, युध्येरन्। युध्येथाः युध्येयाथाम्, युध्येध्वम्। युध्येय, युध्येवहि, युध्येमहि। भ्वादि से दिवादि में क्या भेद है? बुद्धिमान् छात्र कहेगा, वहाँ 'कर्त्तरि शप्' विकरण है यहाँ दिवादि में 'दिवादिभ्यः श्यन्' (श्यन्) विकरण है। वहाँ पित् विकरण है, जिससे गुण होता है। यहाँ ङित् विकरण है जिससे गुण नहीं होता।

स्वादि में षुञ्=अभिषवे। षुञ् धातु ञित् और षोपध है। 'धात्वादेः षः सः ६।१।६४' से ष का स हो जाता है। ञ् की इत्संज्ञा के बाद लोप हो जाता है। अब केवल 'सु' रहता है। षोपध होने से 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र का लगने का मौका मिलता है। ञित् होने से उभयपदी धातु हो जाता है। क्योंकि–'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२' से आत्मनेपद ते प्रत्यय लग जाता है, तो उसकी सार्वधातुक संज्ञा होने से अपवाद सूत्र 'स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३' लगता है। सुनुते बन

तो गया। अनुबन्ध लोप कर लेना विकरण तथा तिङ् दोनों के ङित् होने से 'क्ङिति च' से गुण निषेध है। आगे यण् होगा। शतरञ्ज खेलिये। पहली गोटी 'इको यणचि' उसे मारा 'अचिश्नु०' उसे मारा 'हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७' सुन्वाते, सुन्वते। सुनुषे, सुन्वाथे सुनुध्वे। सुन्वे, सुन्वहे-सुनुवहे, सुन्महे=सुनुमहे। यहाँ 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७' से विकल्प से उ लोप करना है। लङ् में धातु से पूर्व 'लुङ् लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अडागम धातु के आगे विकरण रखकर मूल प्रत्यय जोड़ कर लट् वाला प्रकृति कार्य कर देना है। असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत। असुनुथाः, असुन्वाथाम्, असुनुध्वम्। असुन्वि, असुन्वहि-असुनुवहि, असुन्महि-असुनुमहि। लोट्-सुनुताम्, सुन्वाताम्, सुन्वताम्। सुनुष्व सुन्वाथाम्, सुनुध्वम्। सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै। 'आडुत्तमस्य पिच्च' से ऐ, आवहै, आमहै के पित् हो जाने से 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः' से विकरण का गुण अवादेश हो जाने से पद में भी प्रशस्ति आ गई। विधिलिङ् में तो-सुन्वीत, सुन्वीयाताम्, सुन्वीरन्। सुन्वीथाः, सुन्वीयाथाम्, सुन्वीध्वम्। सुन्वीय, सुन्वीवहि, सुन्वीमहि। यहाँ तो प्रत्यय जोड़कर गोटी खेलना है यण् इयङ् यण्। यों हि धूञ्=कम्पने या धुञ्=कम्पने। चिञ् चयने। इत्यादि धातुओं के रूप चलेंगे।

तुदादि गण की विशेषता भी 'तुदादिभ्यः शः' से है। श ङित् है। जिससे गुण नहीं होता। यथा प्राप्त सम्प्रसारण रिङ् इयादेशादि कार्य हैं। तुद=व्यथने। तुदते अतुदत। तुदताम्। तुदेत। मृङ्=प्राण त्यागे। धातु के ङित् होने से 'ते' आत्मनेपद प्रत्यय लगा, मृ + अ + ते का स्थिति में 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' से रिङ् आदेश करके म्रि अ+ते की स्थिति में यण को मार कर 'अचिश्नुधातु' से इयङ् करके म्रियते, म्रियेते म्रियन्ते। म्रियसे, म्रियेथे, म्रियध्वे। म्रिये, म्रियावहे, म्रियामहे। यों ही दृङ्= आदरे। प्रायेणायम् आङ् पूर्वः। आद्रियते इत्यादि। पृङ्=व्यायामे। प्रायेणाय व्याङ्पूर्वः। व्याप्रियते। इत्यादि रूप, बुद्धि के बल से चारों सार्वधातुक लकारों में चल लेना चाहिये प्रत्ययका स्मरण रखकर।

रुधादिगण में 'रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८' से मित् श्नम् विकरण होता है वह 'मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७' से आखिरी अच् के आगे होता है। जैसे-रुध् धातु जब श्नम् होगा तो वह रु के बाद ध से पूर्व होकर रु+श्नम् + ध्+ते ऐसी स्थिति देगा। अनुबन्ध लोप होने पर रु न + ध्+ते में 'श्नसोरल्लोपः ६।४।१११' से न के का लोप करके अनुस्वार और परसवर्ण करके रुन्ध् + ते को 'झषस्तथोर्धोऽधः ८। ४०' से ध करके 'झलां जश् झशि ८।४।५२' से धातु के ध् का दकार करके 'झरो सवर्णे ८।४।६५' से विकल्प से द् लोप करके रुन्धे, रुन्द्धे, रुन्धाते, रुन्धते। रु

रुन्धाथे, रुन्ध्वे रुन्द्ध्वे। रुन्धे, रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे। लङ्—अरुन्ध अरुन्द्ध, अरुन्धाताम्, अरुन्धत। अरुन्धाः—अरुन्द्धाः, अरुन्धाथाम्, अरुन्ध्वम्—अरुन्द्ध्वम्। अरुन्धि, अरुन्ध्वहि, अरुन्ध्महि। लोट्—रुन्धाम् रुन्द्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुन्त्स्व, रुन्धाथाम्, रुन्ध्वम्-रुन्द्ध्वम्। रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै। उत्तमपुरुष के पित् आट् की करामात है कि 'श्नसोरल्लोपः' नहीं लगा। विधिलिङ् में तो प्रत्यय जोड़ना है रुन्धीत, रुन्धीयाताम्, रुन्धीरन्। रुन्धीथाः, रुन्धीयाथाम्, रुन्धीध्वम्। रुन्धीय, रुन्धीवहि, रुधीमहि। ऐसे ही छिदिर=द्वैधीकरणे, भिदिर्=वेदारणे, युजिर=योगे, पृचिर्=सम्पर्के, रिचिर्=विरेचने। इत्यादि उभयपदी धातुओं के आत्मनेपद में अक्षरकार्यकरने में बुद्धि का खेल है। 'चोः कुः ८।२।३०' काफी है 'खरि च ४।५५' 'झरोझरिसवर्णे ९।४।६५' भिन्ते भिन्त्ते आदि में सहायक हैं।

तनादि का केवल कृ धातु काफी है। उसके लिए कुरुतः के ऐसाही कुरुते करके आगे सन्धि करते चलना है। कुर्वाते, कुर्वते। कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुध्वे। कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे। लङ् में—अकुरुत, अकुर्वाताम् अकुर्वत। अकुरुथाः अकुर्वाथाम्। अकुरुध्वम्। अकुर्वि, अकुर्वहि, अकुर्महि। लोट् में भी केवल प्रत्यय जोड़ते जाना है। कुरुताम्, कुर्वाताम्, कुर्वताम। कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुध्वम्। करवै, करवावहै, करवामहै। कृ+ऐ की स्थिति में 'तनादिकृञ्भ्यः उः' से उ करने पर आर्द्धधातुक मानकर कृ का कर गुण हो जाता है। बाद करु+ऐ होने पर सार्वधातुक ऐ पित परे रहने से उ का गुण ओ हो जाने पर अवादेश करके करवै होता है। यों ही आगे भी जानें। विधिलिङ् में तो वही प्रक्रिया है। कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। कुर्वीथाः, कुर्वीयाथाम्, कुर्वीध्वम्। कुर्वीय, कुर्वीवहि कुर्वीमहि।

क्रयादिगण की भी वही स्थिति है। क्रीणीतः के ऐसा ही क्रीणीते होगा। क्रीणाते में 'श्नाभ्यस्तयोरातः' उत्सर्ग की प्रवृत्ति होगी। हलादिमें ही तो 'ई हल्यघोः' की प्रवृत्ति है। यों ही क्रीणते। क्रीणीषे, कीणाथे, कीणीध्वे। क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे। लङ् में अक्रीणीत काफी है। लोट् में क्रीणातान् काफी है। बुद्धिमान् छात्र क्रीणै क्रीणावहै, क्रीणामहै में वृद्धि सवर्ण दीर्घ ही करेगा।

विधिलिङ् में आलोप है। क्रीणीत, क्रीणीयाताम् क्रीणीरन्। बस है। ज्ञा का जानीते। जाने। 'ज्ञाजनोर्जा' है ग्रह का गृह्णीते, गृह्णाते गृह्णते इत्यादि। परस्मैपद में सम्प्रसारण करा ही दिया गया है। बस क्रयादि समाप्त। चुरादि का तो चोरयति,

चोरयते प्रसिद्ध ही है। बस, सार्वधातुक लकारों के सभी गणों के आत्मनेपदी धातुओं का संक्षिप्त परिचय पूर्णतः समाप्त है। इति आत्मनेपदे सार्वधातुक रूपम्।

आत्मनेपदे आर्धधातुक रूपम्

आर्द्धधातुक लकारों की विशेषता बता दी गयी है। यहाँ गण कार्य तो होना नहीं है। केवल अनिट् सेट् वेट् का भेद होता है। 'एध' धातु सेट् है। केवल आत्मनेपदी प्रत्यय जुटेंगे। जैसे—एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये एधिष्यावहे. एधिष्यामहे। यों ही लृङ् लकार में 'ऐधि' में प्रत्यय जोड़ना है। जैसे—ऐधिष्यत ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः ऐधिष्येथाम् ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये ऐधिष्यावहि ऐधिष्यामहि। यों हि अनिट धातु पच भी उभयपदी होने से आत्मनेपदी प्रत्यय, लृट् में स्यते स्येते इत्यादि। लृङ् में स्यत स्येताम् इत्यादि आवेंगे। उसका 'चोः कुः' से कुत्व होना है और क वर्ग से परे आदेश प्रत्यययोः से 'स' का 'ष' होकर क् ष् के योग में क्ष् होता है—पक्ष्यते पक्ष्येते, पक्ष्यन्ते। पक्ष्यसे पक्ष्येथे, पक्ष्यध्वे। पक्ष्ये पक्ष्यावहे, पक्ष्यामहे। लृङ् में—अपक्ष्यत अपक्ष्येताम्, अपक्ष्यन्त। अपक्ष्यथाः। अपक्ष्येथाम्, अपक्ष्यध्वम्। अपक्ष्ये, अपक्ष्यावहि आपक्ष्यामहि। यों ही लुट् में प्रत्यय जोड़ना है। एध धातु से लुट् आवे। उसके स्थान में ता तारौ तारः। इत्यादि प्रत्यय जोड़कर 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः' इट् करके एधिता, एधितारौ, एधितारः। एधितासे, एधितासाथे, एधिताध्वे। एधिताहे एधितास्वहे, एधितास्महे। अनिट् धातु पच् का 'चोः कुः' करना है—पक्ता पक्तारौ पक्तारः। पक्तासे, पक्तासाथे, पक्ताध्वे। पक्ताहे पक्तास्वहे, पक्तास्महे। लुङ् में कुछ विशेषता दिखानी है। सेट् धातुओं में इष्ट इत्यादि प्रत्यय जोड़ना होगा अजादि धातु होने से आडागम होगा हो जैसे—ऐधिष्ट ऐधिषाताम्, ऐधिषत। ऐधिष्ठाः ऐधिषाथाम् ऐधिध्वम् 'इणः सीध्वंलुङ् लिटां धोऽङ्गात्, ८।३।७८' से ध्व ढव नहीं होग ऐधिषि, एधिष्वहि, ऐधिष्महि। यहाँ आत्मनेपद के मूल प्रत्ययों मे 'च्लेः सिच् करके स् जोड़ते जाना है। बाद आर्द्धधातुक इट् करना है। 'आदेश प्रत्यययोः' स का ष कर देना है। अजादि धातु होने से आट् करके 'आटश्च' से वृद्धि होगी अनिट् धातु पच् का रूप तो, अपक्त अपक्षाताम्, आदि बनाना है। उसका भी प्रका वही है। पच्+स्+त की स्थिति में 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।११०' से इ निषेध होने पर 'झलो झलि ८।२।२६ से सलोप होने पर 'चोः कुः' करके अडाग कर दीजिये अपक्त। अजादि प्रत्ययों में क् ष् के योग में क्ष् हुआ करेगा। अपक्षाता अपक्षत। अपक्थाः, अपक्षाथाम्, अपग्ध्वम्। अपक्षि, अपक्ष्वहि, अपक्ष्महि। यों अनिट् सेट् धातुओं के कारण रूपों में आत्मनेपद धातुओं के दो ही भेद होते हैं।

लिट् लकार में द्वित्वादि प्रक्रिया तो परस्मैपद सी ही है। एध् धातु में तो एध् लिट् की स्थिति में 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६' से आम् होने पर 'आमः २।४।८१' से लिट् के लुक् होने पर 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०' से लिट् को लिये दिये कृ का अनु प्रयोग होता है। एधाम् + कृ + लिट् की स्थिति में लिट् के स्थान में 'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६२' से एध् के आत्मनेपदी होने से कृ से भी आत्मनेपदी ए आते इरे आदि प्रत्ययों के आने पर पूर्ववत् द्वित्वादि कार्य करके एधाम् + चकृ + ए की स्थिति में 'इको यणचि' से चक्रे बनाकर म् का भी अनुस्वार परसवर्ण कर देना है। एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे एधाञ्चकृध्वे को 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८' एधाञ्चकृढ्वे कर देगा। एधाञ्चक्रे एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे। विचारने से तो परस्मैपद से केवल प्रत्यय का भेद है। अतः प्रत्यय याद कर लेना चाहिये। परस्मैपद सा ही अजन्त हलन्त का भेद है। नी धातु का 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२' से यण् होने से निन्ये, निन्याते, निन्यिरे। निन्यिषे यहां क्रयादि नियम से इट् होता है। निन्याथे, निन्यिढ्वे। निन्ये, निन्यिवहे, निन्यिमहे। संयोगादि को तो यण् न होकर 'अचिश्नु-धातु०' से इयङ् होगा। शिश्रिये, शिश्रियाते। इत्यादि श्रिञ् का उभयपदी वाला रूप चलेगा। हलन्त में भी वे ही परस्मैपद वाले रूप प्रत्ययभेद से होंगे। जैसे—रुरुधे रुरुधाते रुरुधिरे। रुरुधिषे, रुरुधाथे, रुरुधिध्वे 'इड्भिन्न एव इण् इह गृह्यते'। रुरुधे, रुरुधिवहे, रुरुधिमहे। सभी जगह क्रयादिनियम से इट् तो होगा ही। एत्त्व अभ्यास-लोप वाला भेद भी पच् धातु का होगा। पेचे पेचाते, पेचिरे। पेचिषे, पेचाथे, इट् अंग नहीं है पेचिध्वे। पेचे पेचिवहे, पेचिमहे। लिट् में इट् का छूट रहता है 'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि' जो नियम सूत्र है। बस, लिट् भी गया।

अब आइये आर्द्धधातुक लिङ् (आशीर्लिङ्) 'एध धातु से 'आशिषिलिङ्लोटौ ३।३।१७३' से लिङ् लकार हुआ, तभी 'लिङाशिषि ३।४।११६' (आर्द्धधातुकम्) ने आर्द्धधातुक बना दिया, जिससे शप् रुक गया। 'लिङः सीयुट् ३।४।१०२' ने सीयुडागम 'सुट् तिथोः ३।४।१०७' ने सुडागम भी कर दिया अनुबन्ध लोप करके 'लोपो व्योर्वलि ६।१।६४' से य् का लोप करके सीस् त के षत्व ष्टुत्त्व करके 'सीष्ट' बना लिया, धातु सेट् है तो 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् किया, षत्व करके एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन् में 'झस्य रन् ३।४।१०५' भी लगता है, तभी तो 'लोपो व्योर्वलि' य् लोप करेगा। एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम् एधिषीध्वम्। यहाँ इणन्त अङ्ग न होने से ध् का ढ् नहीं होता। एधिषीय 'इटोऽत् ३।४।१०६' से इट् का अत् होगा ही एधिषीवहि एधिषीमहि।

कृ धातु का तो 'उश्च १।२।१२' से कित् होने से गुण नहीं होगा। कृषीष्ट, कृषीयास्ताम्, कृषीरन्। कृषीष्ठाः, कृषीयास्थाम्, कृषीढ्वम्। कृषीय, कृषीवहि, कृषीमहि। यों ही अनिट् हलन्तों के भी भेद समझ लेना होगा। रुध् का रुत्सीष्ट, रुत्सीयास्ताम्, रुत्सीरन्। रुत्सीष्ठाः, रुत्सीयास्थाम्, रुत्सीध्वम्। रुत्सीय, रुत्सीवहि, रुत्सीमहि। यों ही पक्षीष्ट, पक्षीयास्ताम्, पक्षीरन्। पक्षीष्ठाः, पक्षीयास्थाम्, पक्षीध्वम्। पक्षीय, पक्षीवहि, पक्षीमहि बस सारा खेल समाप्त। यों ही अनुगम के बल पर रूपों की सिद्धि कर लेना है। इति श्री पाणिनीय प्रदीपे आर्द्धधातुकात्मनेपदिरूपं समाप्तम्।

धातु से धात्वन्तर बनाने का प्रकार—

धातुओं से प्रत्यय करके अन्य धातु बनाने की विधि है। जैसे—प्रेरणा अर्थ में धातुओं से णिच् प्रत्यय होता है। देवदत्तो भवति भवन्तं तं यज्ञदत्तः प्रेरयति। इत्यर्थे यज्ञदत्तः देवदत्तं भावयति। इस अवस्था में भूधातु से प्रेरणा अर्थमे 'हेतुमति च ३।१। २६' से णिच् होता है अनुबन्ध लोप करके भू+इ की स्थितिमे 'यस्मात् प्रत्ययविधि-स्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३' से भूकी अङ्ग संज्ञा होने से 'अचोञ्णिति ७।२।११५' से भूको भौ वृद्धि औका आव् भाविकी 'सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२' से पुनः धातु-संज्ञाकर लट् लकार आता है, क्रमशः लट्के स्थानमे तिबादि आदेश करके भावि+ति, भावि अति, भावे अति भाव्अयति भावयति। रूप बनता है। यहां विशेषता यह है कि पहला कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीयायुक्त होना चाहिये पर 'गतिबुद्धिप्रत्यवसा-नार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ १।४।५२' से उसकी कर्मसंज्ञा हो जाती है। 'कर्मणि द्वितीया' से उसमे द्वितीया विभक्ति हो जाती है। प्रेरणा के कर्ता तो उक्त है। क्योंकि 'हेतुमतिच' से तो प्रेरणाके अर्थमें ही णिच् है। बाद शप् प्रत्यय भी तो प्रेरक कर्ता में ही होता है। इसलिये प्रेरक कर्ता में (यज्ञदत्तमे) प्रथमा विभक्ति (अभिहिते प्रथमा इति वक्तव्यम्) इस भाष्यकार को उक्ति के बल पर हो जाती है। योंही पठ् धातु से भी सः पठति—पठन्तं तं यज्ञदत्तः प्रेरयति। इत्यर्थे यज्ञदत्तः तं पाठयति। ऐसे अर्थमे णिच् करके पठ्+इ 'अत उपधायाः ७।२।११६' से उपधाकी वृद्धि करके पाठि—धातु बनाकर तिबादि प्रत्यय लगाकर पाठयति इत्यादि रूप चलाते है। यहां दोनों पदों में रूप होते हैं। भावयते। पाठयते। आदि।

इसी प्रकार सभी प्रक्रियाओं को समझें। सन्नन्त में पठधातु से, पिपठिषति (पठितुमिच्छति) बनाने में 'धातोःकर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७' सूत्रसे सन् प्रत्यय होता है पठ्+सन्, सन्की आर्द्धधातुक संज्ञा होजाने पर 'आर्द्धधातुकस्ये-ड्वलादेः ७।२।३५' से इट् पठ इसकी स्थिति मे 'सन्यङोः ६।१।९' से द्वित्व होकर पठ्

पठ् इस बनता है 'हलादिः शेषः ७।४।६०' से पपठ् इस बनने पर 'सन्यतः ७।४।७९' से अभ्यास अके इ कर देने पर पिपठ् इस के 'आदेशप्रत्यययोः' से स का ष हो जाने पर पिपठिष धातु से लडादि प्रत्यय कार्य हो जाने पर पिपठिषति आदि रूप चलता है। अनिट् धातु का सन् प्रत्यय होने पर द्वित्वादि कार्य के बाद बुभूषति 'श्र्युकः किति ७।२।११' से इट् निपेध है। पिपक्षति इत्यादि रूप चलते हैं।

योंही अतिशयेन पुनः पुनः पठति जहां बोलना हो, वहां पापठ्यते होगा। पठ् धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२' से यङ् होकर अनुबन्ध लोप करके पठ्+य बनता है। 'सन्यङोः' से द्वित्व करके अभ्यास कार्य करके पपठ्+य बनता है। 'दीर्घोऽकितः ६।४।८३' से अभ्यासका दीर्घ हो जाने पर पापठ्य की पुनः धातु संज्ञा करके लट् की जगह आत्मने पद प्रत्यय लगकर पापठ्यते आदि रूप चलता है।

नामधातु प्रकरण—

इसी प्रकार सुबन्त शब्दों से भी प्रत्यय लगाकर धातु बनाया जाता है। जिसे नाम धातु कहते हैं। जैसे—आत्मनः पुत्रमिच्छति इस अर्थ मे पुत्रीयते यह प्रयोग होता है। यहां 'सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८' से द्वितीयान्त पुत्र शब्द से क्यच् प्रत्यय होता है तो पुत्र अम् क्यच् की स्थितिमें 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातु संज्ञा हो जाने पर 'सुपोधातु प्रातिपदिकयोः २।४।७१' से अम् के लुक् तथा क्यच् के अनुबन्ध लोप होने पर पुत्र + य की स्थिति में 'क्यचि च ७।२।३३' से त्र वाले अका ई होने पर पुत्रीय धातु बनता है। उससे लडादि क्रम से पुत्रीयति आदि रूप चलता है।

योंही पण्डित इवाचरति। इस अर्थ में पण्डितायते होता है। यहां प्रथमान्त सुबन्त पण्डितः पद से 'कर्तुःक्यङ्सलोपश्च ३।१।११' से क्यङ् प्रत्यय होता है। धातुसंज्ञा के बाद सुका लुक् तथा क्यङ् के अनुबन्ध लोप हो जाने पर पण्डित+य की स्थिति में 'अकृत् सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५' से त वाले अ का दीर्घ करके 'पण्डिताय' धातु से लडादि क्रमसे पण्डितायते बनता है। इसी अर्थ में कृष्ण इवाचरति ऐसा विग्रह करके कृष्णः प्रथमान्त से [सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः] वार्तिक से क्विप् प्रत्यय करके धातुसंज्ञा करने के बाद क्विप् का सर्वापहारी लोप सुप् का लुक् कृष्ण धातु से लडादि क्रम से कृष्णति कृष्णतः कृष्णन्ति। आदि पद बनाते हैं। योंही मूक इवाचरति मूकति। नृप इवाचरति नृपति। रङ्कति शूरति। वकति हंसति। काकति। कविरिवाचरति = कवयति। मुनिरिवाचरति=मुनयति। आदि रूप बनाते हैं। शब्दों से धातु बनाने का यही सरल उपाय है। इतिधात्वन्तरनिर्माण प्रकरणम् समासम्।

कृदन्त-प्रकरण

भाव-कर्म के अनुसार ही कृत् प्रत्यय भी कुछ हैं जो धातुओं में लगकर धातुओं को शब्द बना देते हैं। जैसे पठ धातुसे तव्य, अनीयर्, ण्यत् और क्त ये चारों प्रत्यय भाव-कर्म में होते हैं—क्योंकि 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०' ऐसा ही पाणिनीय नियम है। प्रयोग बनाने का प्रकार—स पुस्तकं पठेत्=तेन पुस्तकं पठनीयम्। स ग्रन्थं पठेत्=तेन ग्रन्थः पठनीयः। स कारिकां पठेत्=तेन कारिका पठनीया। पठ धातु से 'अर्हे कृत्यतृचश्च ३।३।१६९' 'शकि लिङ् च ३।३।१७०' से योग्य तथा शक्य अर्थ में 'तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६' से अनीयर् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करके उसे 'कृदतिङ् ३।१।९३' से कृत् संज्ञा हो जाने पर पठ्+अनीय=पठनीय की 'कृत्तद्धित-समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा करके स्वादि विभक्ति लगाकर पठनीयः पठनीयम् पठनीया आदि कर्म विशेष्य के अनुसार लिङ्ग वचन विभक्ति लगाकर रूप चलते हैं। यों ही पठितव्यः वेदः देवदत्तेन=यहां देवदत्तः वेदं पठेत् था जिसमें वेद कर्म है अतः पठेत् क्रिया सकर्मक है। इसीलिये तव्य प्रत्यय कृत्य प्रत्यय होने के कारण कर्म में होता है तो पठ्+तव्य की स्थिति में 'आर्द्धधातुकं शेषः ३।४।११४' से आर्द्ध-धातुक संज्ञा हो जाने से 'आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५' से इट् होने पर पठितव्य शब्द बन जाता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके स्वादि विभक्ति लगाकर पठितव्यः पठितव्यौ इत्यादि रूप होते हैं। इसी प्रकार पच्+तव्य=चोः कुः ८।२।३० से च् का क् करके पक्तव्य बनता है। नी+तव्य='सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः' से गुण हो जाने से नेतव्यः। जि धातु का जेतव्य इत्यादि। अनिट् सेट् का विचार करके रूप बना लेना चाहिये। 'अचो यत् ३।१।१७' से नेयः जेयः चेयः इत्यादि। परन्तु ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होकर धातु की वृद्धि हो जाने से कार्यम् हार्यम् धार्यम्। वाद्यम्, पाक्यम्, मार्ग्यम् इत्यादि रूप बनते हैं। इसका सूत्र है 'ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४' क्त प्रत्यय भी भाव-कर्म में ही होता है। जैसे स पुस्तकम् अपठत्=तेन पुस्तकं पठितम्। पठ+क्त=क् की इत्संज्ञा=लोप हो जाने पर इट् करके पठितम् रूप बना लेते हैं। पठितम् पठिते पठितानि। पुंल्लिङ्ग में पठितः पठितौ पठिताः। स्त्रीलिङ्ग में पठिता पठिते पठिताः आदि रूप बनते हैं।

इसके साधने का प्रकार यह है कि धातु के आगे 'निष्ठा ३।२।१०२' से निष्ठा प्रत्यय होता है। 'क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२५' क्त और क्तवतु प्रत्यय का नाम निष्ठा है। यहाँ कर्म में क्त प्रत्यय होता है। इससे कर्म उक्त हो जाने से उसमें प्रथमा

विभक्ति होती है। खलर्थक प्रत्यय एवं कृत्य और क्त के अतिरिक्त अन्य कृत् प्रत्यय तो 'कर्तरि कृत् ३।४।६७' से कर्ता अर्थ में ही होते हैं। जैसे—'ण्वुलतृचौ ३।१।१३३' से सभी धातुओं से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' सूत्र के बल से कर्ता अर्थ में होते हैं। कृ + ण्वुल् की स्थिति में अनुबन्ध लोप के बाद 'युवोरनाकौ ७।१।१' से वु का अक आदेश करके, वृद्धि करके कारक शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर कारकः कारकौ कारकाः इत्यादि रूप चलते हैं। 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४' से नन्द धातु से ल्यु करके यु का अन आदेश करके नन्दन शब्द बना लेते हैं। बाद प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति लगाकर नन्दनः नन्दनौ नन्दनाः आदि रूप बनाते हैं। ग्रह धातु से णिनि करके अनुबन्ध लोप करके 'अत उपधायाः ७।२।११६' से उपधा अकार की वृद्धि करके ग्राहिन् शब्द बना लेते हैं। करिन् के समान रूप चलाते हैं।

इसी प्रकार कर्ता अर्थ में क्तवतु प्रत्यय होता है। जैसे—स पाठम् अकरोत् जहां कहना है, वहां स पाठम् कृतवान् भी कह सकते हैं। वहां भी कर्ता में कृधातु का लङ् लकार का रूप अकरोत् है। यह भी कर्ता अर्थ में कृधातु से सामान्य भूत में क्तवतु प्रत्यय होकर क् और उ की इत्संज्ञा = लोप होकर कित् होने के कारण ऋ का गुण न होकर कृतवत् शब्द बनेगा। स्वादि विभक्तियों में कृतवान् कृतवन्तौ इत्यादि रूप बनेंगे। स्त्रीलिङ्ग में 'उगितश्च ४।१।६' से ङीप् प्रत्यय करके अनुबन्ध लोप करके कृतवती इत्यादि रूप बना लेते हैं। यों ही पठ् से क्तवतु करके पठितवान् पठितवती। यहां इट् अधिक होता है। सेट् धातुओं के क्त और क्तवतु प्रत्यय में पठ धातु के समान ही रूप चलेगा। चलितम् चलितः चलिता। चलितवत् चलितवान् चलितवती। अभिनन्दितम् अभिनन्दितः अभिनन्दिता। अभिनन्दितवत् अभिनन्दितवान् अभिनन्दितवती। भक्तम् भक्तः भक्ता। त्यक्तम् त्यक्तः त्यक्ता। भक्तवत् भक्तवान् भक्तवती। त्यक्तवत् त्यक्तवान् त्यक्तवती। दा धातु का दत्तम् दत्तः दत्ता। दत्तवत् दत्तवान् दत्तवती। धृतवत् धृतवान् धृतवती इत्यादि रूप बनते हैं।

अनिट् धातुओं का रूप इट् न होने के कारण क्त क्तवतु प्रत्यय के कित् होने से गुण नहीं होता है। जैसे भूधातु के सेट् होने पर भी 'श्र्युकः किति ७।२।११' से इट् का निषेध है। क्त को भाव में होने के कारण केवल नपुंसक होगा भूतम्, हसितम्। हां, क्तवतु कर्ता में त्रिलिङ्ग होगा तो भूतवत् भूतवान् भूतवती। हसितवत् हसितवान् हसितवती। आसितवत् आसितवान् आसितवती इत्यादि रूप समझने चाहिएं।

कर्तृ वाच्य और कर्मवाच्य दोनों में वर्तमान काल में धातुओं से परस्मैपद में शतृ, आत्मनेपद में शानच् प्रत्यय होते हैं। जैसे–ग्रन्थं पठतीति ग्रन्थं पठन्। यहां धातु परस्मैपदी है तो इससे 'वर्तमाने लट्' सूत्र से जब लट् लकार आया तब 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४' से लट् के स्थान में शतृ आदेश हो गया। पठ् + अत् बना शित् होने के कारण अत् की 'तिङ्शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३' से सार्वधातुकसंज्ञा होने के कारण शप् हो जाता है। अनुबन्ध लोप करके पठ् अ अत् बनता है। बाद ठ् अ में मिल जाता है तो पठ + अत् होने पर रूप करके पठत् शब्द बन जाता है। स्वादि विभक्ति लगाकर पठन् पठन्तौ पठन्तः ऐसा रूप चलता है। योंही सभी परस्मैपदी धातुओं के रूप चलने चाहियें। शतृ प्रत्ययान्त शब्दों को बनाने की सरलतम विधि यह है कि लट् लकार के परस्मैपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन रूप में इ और न् निकाल देने पर शब्द स्वरूप बन जाता है। ति निकाल देने पर न् अन्तवाला प्रथमा के एकवचन का पद बन जाता है। जुहोत्यादि गण में केवल इ निकाल देने से ही शब्दस्वरूप और पद दोनों हो जाते हैं। तब शतृ प्रत्ययान्त तकारान्त शब्दों के समान कुल रूप चलाने चाहिये जैसे – भू धातु का भवन्ति होता है। न् + इ निकाल देने से भवत् शब्द बन गया। उसका रूप भवन् भवन्तौ भवन्तः चलेगा।

यों ही दा धातु का जुहोत्यादि में ददति रूप होता है। उससे केवल इ निकाल दिया, ददत् शब्द रूप बना। उसका पद भी ददत् ददतौ ददतः चलता है। अभ्यस्त शत्रन्त को तो नुम् होता ही नहीं। 'नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८' सूत्र से निषेध हो जाता है। आत्मनेपदी धातुओं में शानच् होता है। जैसे एध् धातु लट् की जगह 'लटः शतृशानचा०' सूत्र से शानच् हुआ। अनुबन्ध लोप करके एध् + आन बना। शप् करके अनुबन्ध लोप करके एध + आन बना। तब 'आने मुक् ७।२।८२' से एध के अन्त में मुक् का आगम होता है। अनुबन्ध लोप होने से और म् का आ से योग होने से एधमान शब्द बनता है। इसका रूप अदन्त शब्दों के समान तीनों लिङ्गों में चलता है। इसकी भी सरलतम विधि है कि शप्, श्यन्, श, णिच्, (अय) विकरण वाले गणों में तो प्रथम पुरुष के बहुवचन के रूप का 'न्ते' भाग निकालकर मान जोड़ देना चाहिये। शेष गणों में बहुवचन में 'ते' निकालकर आन जोड़ देने से शब्द बन जाता है। जैसे—'एधन्ते' में 'न्ते' निकाल कर 'मान' जोड़ने से एधमान। 'ब्रुवते' में 'ते' निकालकर आ' जोड़ने से ब्रुवाण हो गया। 'न' का 'ण' तो र के बाद होने से हो गया।

यों ही सभी धातुओं से भाव अर्थ में तुमुन् प्रत्यय होता है। जैसे पठनम् = पठितम्। पठ धातु से 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०' सूत्र से तुमुन्

प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप हो जाने से पठ्+तुम् की स्थिति में सेट् धातु होने से 'आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः' से इट् होकर पठितुम् बनता है, मान्त कृत् होने से 'कृन्मेजन्तः १।१।३८' से अव्यय संज्ञा हो जाती है। इसलिये कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा के बाद जो स्वादि विभक्ति आती है, उसका 'अव्ययादाप्सुपः' २।४।८२' से लुक् हो जाने पर पठितुम् यही रूप सभी विभक्तियों में होता है। ऐसा ही चल्+तुम्=चलितुम् अभिनन्दितुम्। अनिट् धातुओं का रूप पच्+तुम्=पक्तुम्। त्यज्+तुम्=त्यक्तुम्। यहां 'चोः कुः' से च्ज् का क् ग् होता है। बाद में 'खरि च' से ग् का क् हो जाता है। इसकी भी सरलतम विधि यही है कि लुट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन के रूप के अन्तिम आ को उम् कर देना चाहिए जैसे पठिता के आ को उम् कर दिया। पठितुम्। चलिता-चलितुम्। भविता-भवितुम्। कर्ता-कर्तुम्। पक्ता-पक्तुम्, वक्ता-वक्तुम्। योंही सभी धातुओं से क्त्वा प्रत्यय भी पूर्वकाल अर्थ में होता है। जैसे—पठति=पढ़कर जाता है। पठति ततः याति=पहले पढ़ता है बाद जाता है। यहां पठ् धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१' से क्त्वा प्रत्यय होता है। अनुबन्ध के लोप हो जाने पर इट् करके पठित्वा बन जाता है। 'क्त्वातोऽसुन्‌क्सुनः १।१।३७' सूत्र से अव्यय संज्ञा हो जाने के कारण विभक्ति लुक् हो जाती है। पठित्वा, चलित्वा। अनिट् धातुओं से पक्त्वा त्यक्त्वा भङ्क्त्वा। इसकी विशेषता यह है 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् होने के कारण अनिट् धातुओं में गुण नहीं होता जैसे-कृ+त्वा 'क्ङिति च १।१।५' से गुण का निषेध हो जाने से कृत्वा यही रूप होता है। योंही भूत्वा, जित्वा, श्रुत्वा, धृत्वा, हृत्वा इत्यादि।

एक विशेषता यह है कि उपसर्ग लग जाने से क्त्वा का ल्यप् हो जाता है। जैसे-'नन्दित्वा' में जब अभि लग गया तो अभिनन्द्य हो जाता है। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७' से क्त्वा का ल्यप् हो जाता है। इसका प्रकार यह है कि प्रादि का क्रिया से योग होने पर 'गतिश्च १।४।६०' सूत्र से गति संज्ञा होती है। बाद 'कुगतिप्रादयः २।१।१८' से सूत्र पर उल्लिखित-'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः', इस नियम से समास हो जाने पर क्त्वा का ल्यप् होता है। योंही कृत्वा=प्रकृत्य। नत्वा=प्रणम्य। गत्वा=संगम्य इत्यादि रूप समझने होंगे।

भाव अर्थ में सभी धातुओं से पुंलिङ्ग घञ् नपुंसक ल्युट् और स्त्रीलिङ्ग क्तिन् प्रत्यय होते हैं। जैसे—भोगः भजनम् भक्तिः। पाकः पचनं पक्तिः। पाठः पठनम् पठितिः=मानः मननं मतिः। इत्यादि। इसका प्रकार यह है कि धातु से भाव अर्थ में 'भावे ३।३।१८' से घञ् होता है। वहां 'घञबपः पुंसि' इस लिङ्गानुशासन के सूत्र से घञन्त शब्द पुंलिङ्ग होता है। 'स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में साक्षात् क्तिन् का विधान ही है। ल्युट् च ३।३।११५ से नपुंसक

मे ल्युट् विधान है। जैसे भज् धातु से घञ् होने पर अनुबन्ध का लोप हो गया भज्+अ = 'अत उपधायाः' से वृद्धि होकर भाज्-अ 'चजोः कुघिण्यतोः' से ज का ग् हो गया तो भाग शब्द बन गया। स्वादि विभक्ति लाकर भागः भागौ इत्यादि रूप बनते हैं। क्तिन् होने पर भज् + क्तिन् अनुबन्ध लोप करके भज्ति 'चाः कुः' से ज् का ग् 'खरि च' से ग् का क् करके भक्ति शब्द बनता है। प्रातिपदिक करके स्वादि लाकर मति शब्द के सदृश स्त्रीलिङ्ग रूप चलते हैं। ल्युट् होने पर अनुबन्ध लोप करके यु का अन करके भजन शब्द बन जाता है। स्वादि विभक्ति लगाकर फल शब्द के समान नपुंसक रूप चलते हैं। भजनं भजने भजनानि इत्यादि।

यों ही कृदन्त शब्दों की सिद्धि होती है 'स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः' यहां स्मृ धातु से 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् ३।४।२२' से णमुल् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप करके आर् वृद्धि करके स्मारम् बनता है। 'नित्यवीप्सयोः ८।२.४' से द्वित्व होकर स्मारं स्मारम् बन जाता है। एक पक्ष में स्मृत्वा स्मृत्वा भी होगा। इसी में 'अनु उपसर्ग' लगा देने पर अनुस्मृत्य हो जायगा क्योंकि उपसर्ग लगने पर 'गतिश्च १।४६०' से गतिसंज्ञा होने से 'कुगतिप्रादयः २।२।१८' से समास होगा तब 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से क्त्वा का ल्यप् करके अनुस्मृत्य बनाकर द्वित्व कर लेंगे। अनुस्मृत्य अनुस्मृत्य।

कृदन्त प्रकरण में कुछ विशेष प्रत्यय बताये गये हैं। जैसे—इकारान्त धातुओं से अच्, ॠकारान्त धातुओं से अप्, डु इत्संज्ञा वालों से अथुच्, स्वप् धातु से नन्, उपसर्ग पूर्वपद रहने पर घु संज्ञक धातुओं से कि प्रत्यय लगाकर विशेष शब्द बनाये जाते हैं। नी धातु से 'एरच् ३।३।५६' सूत्र से भाव अर्थ में अच् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप करके नी + अ = गुण करने पर ने + अ अय् करके नय बनता है, इसका स्वादिविभक्ति में नयः नयौ नयाः इत्यादि राम शब्द के समान रूप चलते हैं। योंही जि + अ = जयः। चि + अ = चयः। क्षि + अ = क्षयः। कृ धातु से 'ॠदोरप् ३।१।५७' कृ + अ गुण करके करः, स्तृ + अ स्तरः इत्यादि। भूधातु से भाव अर्थ में भवनं = भवः = उत्पत्ति। भू + अ = गुण अव् भव स्वादि लगाकर भवः भवौ इत्यादि। डु इत्संज्ञा वाले पच् धातु से ड्वितःक्त्रिः ३।३।८८' सूत्र से भाव अर्थ में क्त्रि प्रत्यय होता है। अनुबन्ध निवृत्त (लोप) होने पर पच् + त्रि 'चोः कुः' से पक्ति बनने पर 'क्त्रेर्मम् नित्यम् ४।४।२०' से भाव अर्थ में मम् प्रत्यय करके पक्त्रिम विशेष्यनिघ्न शब्द बन जाता है। टु इत्संज्ञावाले टुवेपृ कम्पने धातु से 'ट्वितोऽथुच् ३।३।८९' सूत्र से अथुच् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप करके वेप् + अथु = वेपथु शब्द से स्वादि लगाकर उपरान्त मान शब्दवत् रूप

चलते हैं। 'स्वपो नन् ३.३ ९७' से नन् प्रत्यय करके स्वप् + नन् = स्वप्नः = शयनम्। विधानम्=विधिः, वि उपसर्गपूर्वक घुसंज्ञक धा धातु से 'उपसर्गे घोः किः ३।३ ९२' से कि प्रत्यय होता हैं। अनुबन्ध लोप करके विधा + इ = 'आतो लोप इटि च ६।४।६४' से धातु के आ का लोप करके विधि शब्द बना। स्वादि लगाकर हरि के समान विधिः विधी विधयः रूप चलेगा।

लट् के स्थान में जैसे शतृ शानच् आदेश होता है वैसे ही लृट् लकार के स्थान में भी शतृ शानच् प्रत्यय होता है। जैसे भू धातु से भविष्यत् काल में 'तौ सत् ३।२। १२७' से शतृ शानच् की सत् संज्ञा होने के कारण 'लृट् सद्वा ३।३।१४' से लृट् लकार की जगह सत्=शतृ प्रत्यय हुआ, भू+शतृ होने पर अनुबन्ध लोप करके भू+अत् बनता है। 'स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३' से स्य प्रत्यय विकरण रूप में होता है। उसकी आर्द्धधातुक संज्ञा होने पर 'आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् करके भविष्य अत् बना लेते हैं। पररूप करके भविष्यत् शतृ प्रत्ययान्त बन जाता है। उसका रूप स्वादि विभक्ति लाकर भविष्यन् भविष्यन्तौ इत्यादि शत्रन्त तकारान्त के समान चलता है।

आत्मनेपदी धातुओं से एधिष्यमाण इत्यादि रामशब्द के सदृश रूप चलते हैं। इन रूपों को बनाने की युक्ति यह है कि किसी भी परस्मैपदी धातु के लृट् के प्रथम पुरुष के एकवचन रूप के इ को निकालकर शब्द बना लीजिये। जैसे— भविष्यति का भविष्यत्, पठिष्यति का पठिष्यत् आदि। आत्मनेपदी धातु के प्रथम पुरुष के एकवचन रूप के ते की जगह मान जोड़ दीजिये। जैसे एधिष्यते=एधिष्यमाण भाविष्यते=भाविष्यमाण। योत्स्यते=योत्स्यमान, क्रोष्यते क्रोष्यमाण। र ष के वाद के न का तो' 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' के कारण ण हो जाता है।

पाणिनि की विशेषता यह है कि क्रम से सूत्रों को रट लेने पर अर्थ अपने आप कर लेने का साधन मिल जाता है। केवल अकारान्त इकारान्त उकारान्त और हलन्त चार प्रकार के शब्दों का रूप तथा सन्धि, समास और पदच्छेद करना आना चाहिए। बस, अष्टाध्यायी का अर्थ स्वयं छात्र कर लेगा। सूत्र भी यदि ४००० (चार हजार) कण्ठस्थ न हों तो केवल ऋजुपाणिनीय के १५०० सूत्रों को ही क्रमशः कण्ठस्थ करलें। उससे भी कम करीब ५०० (पांच सौ) पाणिनीय प्रदीप में आने वाले सूत्रों को रट लें। कम से कम इस प्रक्रिया को तो छात्र समझ लें। पाणिनि ने अपने काल में 'अष्टाध्यायी' (शब्दानुशासन) को स्वयं पढ़ने के लिये लिखा था। यह उसके परिशीलन से स्वयं ज्ञात हो जाता है।

अन्त में मेरा निवेदन है कि आज भारत में संस्कृत पढ़ने के जितने भी प्रकार हैं उनमें यही प्रकार सरलतम है कि पहले प्रत्याहार, अक्षर विज्ञान, सन्धि, समास, कारकार्थ, तद्धित, स्त्रीप्रत्यय, सुबन्त, तिङन्त पदज्ञान, कृदन्त का सामान्य ज्ञान करके अन्यान्य वेद, आयुर्वेद, साहित्य, ज्योतिष, दर्शन इत्यादि विषयों को पढ़ें। आगे, पाणिनीय प्रदीप से अधिक वैयाकरण होना हो तो अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ें। हां वेद साहित्य पढ़ने वालों को तो अष्टाध्यायी काशिकावृत्ति के साथ (न्यास की सहायता से) पढ़ ही लेनी चाहिये।

यह मेरी स्वानुभूत पद्धति है। बिना इतना ज्ञान कराये, जो आज 'लघुकौमुदी' की सूत्रवृत्ति रटाई जाती है, उससे छात्रों की मेधा-शक्ति का ह्रास होता है। एक एक पदज्ञान कराकर संस्कृत पढ़ाने की पद्धति पहले थी, जब वह असफल हो गयी तब सूत्रक्रमपद्धति (अष्टाध्यायी-शब्दानुशासन) का आविर्भाव हुआ। स्वयं पतञ्जलि कहते हैं। 'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम'। 'बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालो नचान्तं जगाम किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरं जीवति वर्षशतं जीवति'।

पाणिनीयो नयो दुर्लभः साम्प्रतं तत्प्रवक्ताऽप्यहो भाग्यतो लभ्यते।
तद्दिशा शब्दराशिः समः साध्यते वेदलोकस्थितो योऽपि नो विद्यते॥

सदाऽध्येया सर्वैर्निगमसदृशी पाणिनिमुने-
रहो ! अष्टाध्यायी झटिति पदबोधप्रणयिनी ।
सुपूर्णा गैर्वाणी ध्रुवमतिशयाह्लादजननी
स्वयं स्वार्थं ब्रूते क्रम-नियम-पाठेन सुगमा ॥

—श्री गोपाल शास्त्री 'दर्शन केशरी'

पाणिनीयप्रदीपान्तर्गता व्याख्यायुक्ता
सूत्रसूची

अ

१ अतो भिस ऐस् ७।१।६ अतः ५।१ अङ्गात् ५।१ भिसः ६।१ ऐस् १।१ भवति। इस सूत्र में अङ्गस्य ६।४।१ का अधिकार आता है। अतः विशेषण की महिमा से पंचम्यन्त हो जाता है। भिसः षष्ठी होने से 'षष्ठी स्थाने योगा' १।१।४६ सूत्र के बल से स्थाने आ जाता है तब अर्थ होता है अदन्ताद् (अकारान्ताद्) अङ्गात् परस्य भिसः स्थाने ऐस् भवति। अर्थात् अकार है अन्त में जिसके ऐसे अङ्ग से परे भिस् के स्थान में ऐस् होता है। जैसे—राम + भिस्—ऐस् वृद्धि रामैस् रुत्व विसर्ग रामैः।

२ अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१ यञि ७।१ सार्वधातुके ७।१ अतः ६।१ (अङ्गस्य) दीर्घः १।१ भवति। यहाँ तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ७।३।७५ से सार्वधातुके आता है। अङ्गस्य का अधिकार है। तब वृत्ति बनी यञादौ सार्वधातुके अदन्तस्य [अकारान्तस्य] अङ्गस्य दीर्घो भवति। अर्थात् यञ् प्रत्याहार है आदि में जिसके ऐसे सार्वधातुक परे रहने पर अदन्त [अकारान्त] अङ्ग का दीर्घ होता है। जैसे—भू + मि—शप् भू अ + मि – गुण भो अ मि — अवादेश भवमि दीर्घ भवामि।

३ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५ अर्थवत् १।१ अधातुः १।१ अप्रत्ययः १।१ प्रातिपदिकम् १।१ भवति। धातुं प्रत्ययं प्रत्यान्तं च वर्जयित्वा अर्थवत् शब्दस्वरूपम् प्रातिपदिकम् भवति। अर्थात् धातु प्रत्यय प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवाला शब्द स्वरूप प्रातिपदिक कहाता है। जैसे—रामः कृष्ण इत्यादि—राम सु. रुत्व विसर्ग रामः। ऐसा ही कृष्णः भी।

४ अत्वसन्तस्य चाधातोः ६।४।१४ असम्बुद्धौ सौ ७।१ अतु + अस्+अन्तस्य ६।१ अधातोः ६।१ अङ्गस्य ६।१ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ स्यात्। इस सूत्र में सौ च ६।४।१३ से सौ और सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८ से असम्बुद्धौ आता है। तब अर्थ होता है—असम्बुद्धौ सौ परे अतु+अस् इत्येवमन्तस्य अधातोः अङ्गस्य उपधायाः दीर्घः स्यात्। अर्थात् सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो तो अतु और अस

अन्तवाले अङ्गकी उपधाका दीर्घ होता है। जैसे – भगवत्+सु दीर्घ भगवात् सु नुम् भगवान्त्+सु सु-लोप संयोगान्त लोप भगवान्।

५ अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १।१।६५ अन्त्यात् ५।१ अलः ५।१ पूर्वः १।१ उपधा १।१ भवति। अन्त्यात् अलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्। अर्थात अन्त्य अल् (अक्षर)से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है। यथा–भगवत् में त् से पूर्व अ की उपधा संज्ञा होती है। इसी प्रकार राजन् में न के पूर्व ज का अ उपधा है। राम में अ से पूर्व म् उपधा है।

६ अट्कुप्वाङ् नुम् व्यवायेऽपि ८।४।२ रषाभ्याम् नो णः समानपदे ८।४।१ सूत्र की अनुवृत्ति आती है। समानपदे ७।१ रषाभ्याम् ५।२ अट् + कु+पु + आङ् नुम् + व्यववाये ७।१ अपि (अ०) नः ६।१ णः १।१ भवति। समानपदे अट्, कवर्ग, पवर्ग, [1]आङ्, नुम्, एतैः व्यस्तैः मिलितैः वा व्यवधानेऽपि रषाभ्याम् परस्य नस्य णो भवति। अर्थात् एक पद में अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् (अनुस्वार या ५ वां अक्षर) इनके व्यवधान होने पर भी र, ष से परे न का ण हो जाता है। यथा– राम + टा–इन–रामेन = रामेण पर्याणद्धम्, वृंहणम्।

७ अल्लोपोऽनः ६।४।१३४ भस्य अङ्गस्य अनः ६।१ अत् + लोपः १।१ भवति। यहाँ भस्य और अङ्गस्य का अधिकार है। अङ्गावयवो भ संज्ञको योऽन् तस्याकारस्य लोपः स्यात्। अर्थात् भ संज्ञक अङ्ग का अवयव जो अन् है, उसके अकार का लोप होता है। यथा—राजन्+शस् मे भ संज्ञक अङ्ग राजन् के अ का लोप होता है। राज्न्+अः श्चुत्व से राज्ञ् (ञ्) +अः = राज्ञः।

८ अमि पूर्वः—६।१।१०७ अकः ५।१ अमि ७।१ पूर्व-परयोः ६।२ एकः १।१ पूर्वः (पूर्वसवर्णः) १।१ भवति। अकः, एकः पूर्वपरयोः, पूर्वसवर्ण ऊपर से आता है। अकः अमि पूर्व परयोः पूर्वसवर्ण एकादेशः [2]स्यात्। अक् प्रत्याहर के अक्षर के बाद

---

१. ईषदर्थे क्रिया-योगे मर्यादाऽभिविधौ च यः।
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्य-स्मरणयोरङित् ॥

अर्थात् थोड़ा अर्थ में क्रिया के साथ में मर्यादा और अभिविधि अर्थ में आ आङ् कहलाता है। वाक्य और स्मरण अर्थ में आ मात्र ही है, आङ् नहीं है। यहां पर्याणद्धम् आङ् का ही उदाहरण है।

२. इस सूत्र में 'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः' से पूर्व सवर्ण की अनुवृत्ति आने पर भी पुनः पूर्व ग्रहण करने से जानना चाहिये कि जैसा पूर्ववर्ग (एक मात्रा द्वि मात्रा त्रि मात्रा वाला) होगा वैसा ही आदेश होगा। अतः रामम् में त्रिमात्रिक आदेश नहीं हुआ।

अम् परे हो तो दोनों मिलकर पूर्वके सवर्ण रूप हो जाता है। यथा—राम+अम् = रामम्।

९ अजाद्यतष्टाप् ४।१।४—अजादि+अतः ५।१ स्त्रियां ७।१ टाप् १।१ प्रत्ययः परः भवति। अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् अजादि शब्द और अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होता है। यथा—अज की स्त्रीलिङ्ग-अज+टाप्–अनुबन्धलोप दीर्घ अजा। खट्व की स्त्रीलिङ्ग खट्व+टाप्-खट्वा।

१० अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७ अदसः ६।१ अङ्गस्य ६।१ औ १।१ सुलोपः १।१ च (अ०)। सौ परतः अदसः औकारो भवति सोश्च लोपो भवति। अर्थात् अदस् के स्थान पर औ आदेश होता है सु परे रहते तथा सु का लोप होता है। यथा—अदस् + सु+स् का त्यदादित्वात् अ पर रूप अद+सु में द के अ का औ + द् का स्+ सु लोप = असौ।

११ अच्च घेः ७।३।११९ इदुद्भ्याम् ५।२ ङेः ६।१ औत् १।१ घेः ६।१ अत् १।१। च (अ०) यहाँ इदुद्भ्याम्, औत् और ङेः की अनुवृत्ति आती है। इदुद्भ्याम् उत्तरस्य ङेरौत्स्यात् घेरन्तादेशश्चाकारः स्यात्। अर्थात् इकारान्त उकारान्त शब्दों से परे ङि का औ एवं घि संज्ञक का अत् हो जाता है। यथा हरि + ङि=हर + औ वृद्धि हरौ।

१२ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२ अनुदात्तङितः ५।१ धातोः ५।१ आत्मनेपदम् १।१। उपदेशे यो अनुदात्तेत् ङिच्च तदन्तात् धातोः आत्मनेपदं स्यात्। अर्थात् उपदेश काल में (धातु पाठ के समय) जिस धातु में ङ् की एवं अनुदात्त (अच्) की इत् सज्ञा होती है, उस धातु से परे लकार के स्थान में आत्मने पदी प्रत्ययों का आदेश होता है। यथा - एघ धातु के धकारोत्तरवर्ती अ (अनुदात) की इत् संज्ञा होती है। अतः एध् + ते। एध् + अ ते=एधते। ङित् यथा—त्रैङ् पालने त्रायते। पूङ् पवने पवते। इत्यादि।

१३ अनद्यतने लुट् ३।३।१५ धातोः ५।१ भविष्यति [1]अनद्यतने ७।१ लुट् १।१

---

१. अद्यतनः—अतीतायाः रात्रेः पश्चादर्धेन आगामिन्याः पूर्वार्धेन सहितो दिवसः अद्यतनः तद्भिन्नः। अर्थात् बीती हुई रात्रि के अर्धरात्रि १२ बजे के बाद एवं आने वाली रात्रि के पूर्वार्द्ध तक] सारे दिन को अद्यतन कहा जाता है। इससे भिन्न काल को अनद्यतन कहा जाता है। पाणिनि भी १२ बजे रात से १२ बजे रात तक ही एक दिन मानते हैं। जैसा अँग्रेजी डेट है।

प्रत्ययः १।१ भवति। भविष्यति अनद्यतने अर्थे धातोर्लुट् प्रत्ययः भवति। अर्थात् भविष्यत् अनद्यतन अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है। यथा—भू + लुट् = भविता।

१४ अनद्यतने लङ् ३।२।१११ धातोः ५।१ भूते अनद्यतने ७।१ लङ् १।१ भवति। धातु से अनद्यतन भूतकाल के अर्थ में लङ् लकार होता है। भू+लङ्-अभवत्।

१५ अदर्शनं लोपः १।१।६० अदर्शनम् १।१ लोपः १।१। विद्यमानस्य वस्तुनः अदर्शनं लोप-संज्ञः स्यात्। अर्थात् दिखाई देनेवाली वस्तु का अदृश्य हो जाना लोप कहाता है। यथा—सुप् में प् दिखाई दे रहा है। 'हलन्त्यम्' द्वारा इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप होगा। तो सु रह जायेगा।

१५ (क) अज्झीनं परेण संयोज्यम् [परिभाषा] यह वैयाकरणों का सिद्धान्त है कि अच् से रहित (हल्) वर्ण पर में रहने वाले वर्णों में मिलते हैं। यथा सु ध् य् उपास्यः। यहाँ पर ध् और य् अच् हीन हैं। अर्थात् हल् हैं। तो वे उत्तरोत्तर मिलते चले जायेंगे सुध्युपास्यः होगा।

१६ अतो गुणे ६।१।९७ अपदान्तात् ५।१ अतः ५।१ गुणे ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकम् १।१ पररूपम् १।१ भवति। 'उस्यपदान्तात्' से अपदान्तात् आया और 'एङि पररूपम्' से पररूपम् आया। अपदान्तात् अकारात् गुणे परतः पूर्वपरयोः पररूपमेकादेशः स्यात्। अर्थात् अपदान्त अकार से गुण संज्ञक अक्षर (अ, ए, ओ) परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है। यथा—पठ + अन्ति पठन्ति। एध + ए = एधे।

१७ अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२ अदिप्रभृतिभ्यः ५।३ शपः ६।१ लुक् १।१ अदिप्रभृतिभ्यः [अदादि-गण-पठितेभ्यः धातुभ्यः] परस्य शपः लुक् स्यात्। अर्थात् अदादि गण में पठित धातुओं से परे शप् का लुक् होता है यथा—अद् + शप् + ति अद् ति-खरिच ८।४।५५ अत्ति

१८ अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिक-लोपो झलि क्ङिति ६।४।३७ झलि ७।१ क्ङिति ७।१ अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनां ६।३ अङ्गानां ६।३ अनुनासिक-लोपः १।१ भवति। झलादौ क्ङिति अनुनासिकान्तानाम् अनुदात्तोपदेशानां तनोत्यादीनां वनतेश्च लोपः स्यात्। अर्थात् झलादि कित् ङित प्रत्यय परे हो तो अनुनासिक अक्षर अन्त में हैं जिनके ऐसे अनुदात्तोपदेश (अनिट्)

धातुओं के तनादि गण की तन् इत्यादि धातुओं के और वन धातु के अनुनासिक का लोप होता है। यथा—हन्+लट्=तस्=हतः।

१९ अचि श्नु-धातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७ अचि ७।१ श्नुधातुभ्रुवां ६।३. य्वोः ६।२ इयङुवङौ १।२ स्तः। अजादि प्रत्यये परे श्नु प्रत्ययान्तस्य इवर्णोवर्णान्त-धातोः भ्रू इत्यस्य च अङ्गस्य इयङ् उवङ् इत्येतौ स्तः। अर्थात् अजादि प्रत्यय परे रहते श्नु प्रत्यय है अन्त में जिसके, इ, उ अन्त में हैं जिस धातु के एवं भ्रू शब्द के इ, उ का इयङ् उवङ् आदेश होता है। यथा ब्रू+अन्ति=ब्रुवन्ति, अश्नु+अते=अश्नुवते। भ्रू+औ=भ्रुवौ।

२० अदभ्यस्तात् ७।१।४ इस सूत्र में ७।१।२ से प्रत्ययादेः, ७।१।३ से झः आते हैं। अभ्यस्तात् ५।१ अङ्गात् ५।१ प्रत्ययादेः ६।१ झः ६।१ अत् १।१। [1]अभ्यस्तात् अङ्गात् परस्य प्रत्ययादेः झस्य अत् स्यात्। अर्थात् अभ्यस्त अङ्ग से परे प्रत्यय के आदि के झ् का अत् आदेश होता है। यथा ददा+झि – ददा+अति – दद्+अति=ददति।

२१ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७ सम्बुद्धौ ७।१ अम्बार्थ नद्योः ६।२ अङ्गयोः ६।२ ह्रस्वः १।१। सम्बुद्धौ अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात्। अर्थात् सम्बुद्धि परे रहने पर अम्बा वाचक शब्दों का एवं नदी संज्ञक शब्दों का ह्रस्व होता है। यथा—हे बहुश्रेयसी+सु ह्रस्व, सुलोप हे बहुश्रेयसि।

२२ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४ ११ सर्वनाम स्थाने ७।१ अप्तृन्प्रशास्तृणाम् ६।३ अङ्गानां ६।३ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१। असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने अबादीनाम् अङ्गानाम् उपधायाः दीर्घः स्यात्। अर्थात् सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे होने पर अप् शब्द की तृन् तृच् प्रत्ययान्त शब्दों की स्वसृ नप्तृ, नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इन अङ्गों की उपधा का दीर्घ होता है।

२३ अनाप्यकः ७।२।११२ आपि ७।१ अकः ६।१ इदमः ६।१ इदः ६।१ अन् १।१। आपि विभक्तौ अककारस्य इदमः इदोऽन् स्यात्। अर्थात् टा से लेकर सुप् तक विभक्ति परे रहने पर 'क' जिसके अन्दर न हो ऐसे इदम् शब्द के इद् का अन् आदेश होता है। यथा—इदम्+टा=इद+आ=अन+आ अन+इन=अनेन।

---

१. जुहोत्यादि गण में शप् का श्लु करने पर द्वित्व हो जाने से दोनों की अभ्यस्त संज्ञा होती है। उभे अभ्यस्तम् ६।१।५ से।

२४ अतोऽम् ७।१।२४ [1]अतः ५।१ अङ्गात् ५।१ नपुंसकात् ५।१ स्वमोः ६।२ अम् १।१ स्यात् । अर्थात् नपुंसक लिङ्ग में अदन्त अङ्ग से परे सु और अम् का अम् होता है । यथा--ज्ञान + सु = ज्ञान + अम्=ज्ञानम् ।

२५ अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८० असेः ६।१ अदसः ६।१ दात् ५।१ उ १।१ दः ६।१ मः १।१ असन्तस्य अदसः दात्परस्य उदूतौ[2] स्तः दस्य च मः स्यात् । अर्थात् स अन्त में नहो हैं जिसके ऐसे अदस् शब्द के द से परे के उत्, ऊत् एवं द का म आदेश होता है । यथा अदस् + अम् = अद+अम् पूर्वरूप अदम्= असुम् । अदस्+औ = अद + औ = वृद्धि अदौ=अमू ।

२६ अकथितं च १।४।५१ [3]अकथितं १।१ [अपादानादिभिः अविवक्षितं] कारकं १।१ कर्म १।१ । अपादानं सम्प्रदानं अधिकरण कर्म करणं कर्ता हेतुरित्येतैः विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्म संज्ञं स्यात् । अर्थात् कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान से अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा है । यथा गां[4] दोग्धि पयः इत्यादि ।

२७ अनभिहिते २।३।१ अनभिहिते ७।१ [अभिधानं च तिङ् कृत्तद्धित-समासैः भवति । इतः आ-पादान्तम् अस्य अधिकारः] अनभिहिते [अनुक्ते] कर्मादौ द्वितीयादिः विभक्तिः भवति । अर्थात् अनुक्त में द्वितीयादि विभक्तियां होती हैं ।

२८ अभ्यासे चर्च ८।४।५४ अभ्यासे ७।१ झलां ६।३ जश् १।१ चर् १।१

---

१. --अतोऽम् सूत्र के द्वारा सु अम् का अम् विधान करने का तात्पर्य है कि सु + अम् का 'स्वमोर्नपुंसकात्' द्वारा लुक् कभी न हो । यह सूत्र उसका अपवाद है ।

२. इस सूत्र द्वारा ह्रस्व स्वर का ह्रस्व उ और दीर्घ स्वर का दीर्घ ऊ होगा आन्तरतम्य विधि से ।

३. जिस अर्थ में जो प्रत्यय होता है वह अर्थ उस प्रत्यय द्वारा कहे जाने से उक्त (कथित) कहलाता है । जो अर्थ किसी प्रत्यय द्वारा नहीं कहा गया है, वह अर्थ अनुक्त [अनभिहित] कहलाता है । जैसे-- ग्रामं देवदत्तः गच्छति प्रयोग में गम् धातु से लट् लकार कर्ता में किया गया । अतः उसके स्थान में आयी ति का अर्थ कर्ता हुआ । कर्ता अर्थ ति द्वारा कहे जाने से अभिहित हुआ । कर्म न कहा गया होने से अनभिहित हुआ । अतः कर्म में द्वितीया विभक्ति हुई । अभिहित में सदैव प्रथमा ही होती है । अतः कर्ता में प्रथमा ही हुई ।

४. यहां इतना जान लेना चाहिये कि दुह् पच् दण्ड् रुधि चि ब्रू प्रच्छि शासु जि मथ् मुष् याच् नी हृ कृष् वह् इन (१६ धातुओं) के और इनके अर्थ वाले धातुओं के योग में दो कर्म होते हैं । अन्य कारकको भी यह कर्म बना देता है ।

च (अ०) अभ्यासे [१]झलां चरः स्युः जशश्च । अर्थात् अभ्यास में विद्यमान झल् का चर् एवं जश् हो जाता है ।

(अभ्यास—धातु को द्वित्व करने पर पूर्व की अभ्यास संज्ञा होती है । यथा भू + लिट् = भू+अ=भू + वुक् अ=भूव्+अ=द्वित्व भूव [भूव् + अ] पूर्व की अभ्यास संज्ञा होगी । भू+भूव + अ = भुभूव + अ = भभूव्+अ = बभूव + अ = बभूवा (इससूत्र का उदाहरण ब्राकेट्में देखो ।)

२९ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८ ययि ७।१ अनुस्वारस्य ६।१ पर सवर्णः १।१ । ययि परतः अनुस्वारस्य परसवर्णः भवति । अर्थात् यय् परे रहते अनुस्वार के स्थान पर परसवर्णादेश होता है । यथा अं+ कितः = अङ्कितः शं+कितः=शङ्कितः शां+तः = शान्तः ।

३० अत उत् सार्वधातुके ६।४।११० सार्वधातुके क्ङिति ७।१ करोतेः ६।१ अतः ६।१ उत् १।१। सार्वधातुके क्ङिति कृञः अकारस्य उत् स्यात् सार्वधातुक कित् ङित् परे हो तो कृ धातु के अकार का उ होता है । कृ + तस् (उ० प्रत्यय) कृ+उ+तस् (गुण किया) कर्+उ तस्= कुरुतस्=कुरुतः ।

३१ अदःसर्वेषाम् ७।३।१०० सर्वेषाम् ६।३ मते ७।१ अदः धातोः ५।१ सार्वधातुकस्य ६।१ अपृक्तस्य ६।१ अट् १।१ सर्वेषाम् आचार्याणाम् मते अद धातोः परे विद्यमानस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य अडागमः स्यात् । सभी आचार्यों के मतमें अद धातुसे अपृक्त (एक हल् वर्ण) हलादि सार्वधातुकको अट् आगम होता है । यथा— आद्+त्=आद्+अट्+त् । अनुबन्ध लोप आदत् । योंहीं आदस्=आदः ।

३२ अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६ अस्ति (विद्यमानात्) सिचः ५।१ अपृक्तस्य ६।१ हलः ६।१ ईट् १।१ विद्यमानात् सिचःऽस्तेश्च परस्य अपृक्तस्य हलः ईडागमः स्यात् । अर्थात् जिसका लोप नहीं हुआ है ऐसे सिच् और अस् धातुसे परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् आगम होता है ।

३३ अतो हेः ६।४।१०५ अतः अङ्गात् ५।१ हेः ६।१ लुक् १ १ । अकारान्तात् अङ्गात् परस्य हेर्लुक् भवति । अर्तात् अकार है अन्त में जिसके ऐसे अङ्गसे परे हिका लुक् होता है । यथा —पच + हि = लुक् पच, गच्छ, धाव, भाव इत्यादि ।

---

१. इस सूत्र में पाणिनि ने झल् का जश् एवं चर् किया है । उसके विषय में इतना विभाग कर देना चाहिये कि झश का जश एवं खय का चर् होता है ।

३४ अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६९ अप्रत्यः १।१ अण् १।१ उदित् १।१ सवर्णस्य ६।१ ग्राहकः भवति। अविधीयमानः अण् उदित् च सवर्णस्य बोधकः भवति अर्थात् प्रत्यय-भिन्न अण् और उदित् सवर्ण का बोधक होता है। यथा—अ से लेकर लण् सूत्र के ण् तक अप्रत्यय अण् होने के कारण अपने समान वर्ण १८,१८ प्रकार का बोधक हो जता है।

३५ असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२ आभात् ५।१ [आ-भाधिकारात्] अत्र (अ०) असिद्धवत् (अ०)। समानाश्रय (एकनिमित्तक) [1]आभीय करने पर पहले किया हुआ आभीय असिद्ध हो जाता है। (यहाँ शास्त्रासिद्ध पक्ष ही लेना चाहिये। कार्यासिद्ध नही। जहि मे ज को असिद्ध करके हन् ला देने से हि का लुक् नहीं होता है। शाधिमें शास् मानकर हि का धि कर देते हैं।

३६ अतो येयः ७।२।८० अतः ५।१ अङ्गात् ५।१ सार्वधातुकस्य (या) इत्यस्य इय् १।१ भवति। अकारान्तात् अङ्गात् परस्य सार्वधातुकस्य (या) इत्येतस्य इय् आदेशो भवति। अर्थात् अकार है अन्त में जिसके ऐसे अङ्ग से परे सार्वधातुक के अवयवका इय् आदेश होता है। ऐसा कहने से विधिलिङ्में ही इस सूत्रकी प्रवृति होगी। आशीर्लिंगमें नहीं। यों यह सूत्र प्रत्यय बनाता है। अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः इस परिभाषा के बल पर मै जानता हूँ कि अकारान्त विकरण में (भ्वादि दिवादि तुदादि चुरादिगण में) अदन्त अङ्ग के बाद 'या' मिलेगा। इसलिये इन गणों के लिये पहले ही तिङ् के परस्मैपद में 'यासुट्परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३' से यासुट् का आगम कर अनुबंध लोप कर लिङः स-लोपोऽनन्तस्य ७।२।७९ से सार्वधातुक विधिलिंग में स का लोप कर या का इय् कर के 'लोपो व्योर्वलि ६।१।६६'

---

१. यह सूत्र ६।४।२२ का है। पाणिनि ने शास्त्रविधि सम्पन्न करने के लिये इस सूत्र से आगे चतुर्थ पाद की समाप्ति तक आने वाले सूत्रों की आभीय संज्ञा की है। अर्थात् आभीय संज्ञक कुल १५३ सूत्र है। जब एक प्रयोग में एक निमित्त वाले दो आभीय संज्ञक सूत्र प्राप्त हों तो पहला जो आभीय है वह नहीं होगा। पर सूत्र होगा। यथा–लिट्में भू+अ यहाँ पर वुक् और उवङ् दोनों ही एक निमित्तक होने से प्राप्त हैं। अतः वुक् विधायक सूत्र ६।४।८८ संख्या वाला है। एवं उवङ् विधायक सूत्र ६।४।७७ का है। तो परत्वात् पहले से ही प्रवृत्त वुक् असिद्ध हो जायेगा। उवङ् की प्राप्ति होगी। अर्थात् जो पहले प्रवृत्त होता है वह असिद्ध होता है। तो 'वुग्युटौ उवङ्यणोः कर्तव्योः सिद्धौ वक्तव्यौ' इस वार्तिक से वुक यह असिद्ध नहीं होता।

अर्थात् नदी संज्ञक अङ्गसे परे ङित् विभक्तिको आट् आगम होता है। यथा—बहुश्रेयसी+ङे = एआ—ट् बहुश्रेयसी आ ए 'आटश्च'+ से वृद्धि, यण् = बहुश्रेयस्यै।

५७ आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२ आत् (अवर्णात्) ५।१ सर्वनाम्नः ५।१ आमः ६।१ सुट् १।१। अवर्णान्तात् सर्वनाम-संज्ञकात् परस्य आमः[1] सुडागमः स्यात्। अर्थात्—अवर्ण है अन्तमें जिसके ऐसे सर्वनाम से परे आम को सुट का आगम होता है। सर्व+सुट् आम् सर्व+साम् = सर्वेषाम्।

५८ आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२१ एकस्मिन् ७।१ आद्यन्तवत् (अ०) एकस्मिन् कार्यं आदाविव अन्त इव स्यात्। अर्थात् जिससे पहले कोई वर्ण न हो वह आदि कहलाता है। जिसके पीछे कोई वर्ण न हो वह अन्त कहलाता है। इस प्रकार आदि और अन्त का व्यवहार दो या दो के अधिक होने पर ही सम्भव है। पर कोई वर्ण एक ही हो। वहाँ पर यदि कोई आदि को कहें या अन्त को कहें तो वह कैसे हो सकता है। क्योंकि वह अकेला है। न अन्त का है न आदि का, सो अकेले में भी आदि अन्त का व्यवहार मानकर कार्य हो जाए इसलिये यह सूत्र बनाया है। जैसे लोक में एक ही पुत्र होने पर उसी को बड़ा छोटा मानकर कार्य किया जाता है। जैसे अ + भ्याम् (सुपि च) दीर्घः—आभ्याम्। यहाँ भी केवल अ अदन्त माना जाता है।

५९ आदिर्ञिटुडवः १।३।५ उपदेशे इत् आते हैं। उपदेशे ७।१ धातोः ६।१ आदिः १।१ ञिटुडवः १।३ इतः १।३ भवन्ति। उपदेशे धातोराद्याः ञिटुडवः इत्संज्ञका भवन्ति। अर्थात् उपदेश में धातु से पहले वर्तमान ञि टु डु की इत्सज्ञा होती है। यथा टुनदि समृद्धौ (यहाँ टु की) डुपचष् पाके (यहाँ पर डु की) ञिइन्धी, दीप्तौ में ञि की इत् संज्ञा कर के तस्य लोपः १।३।९ से लोप हुआ।

६० आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५ अनतः ५।१ अङ्गात् ५।१ आत्मनेपदेषु ७।३ प्रत्ययादेः ६।१ झः ६।१ अत् १।१ अनकारान्तात् अङ्गात् परस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य प्रत्ययस्य आदेः झस्य स्थाने अत् आदेशो भवति। अर्थात् अकार से भिन्न वर्ण है अन्त में जिसके ऐसे अंग से परे आत्मनेपद में वर्तमान झ का अत् होता है। यह सूत्र प्रत्यय बनाता है। क्योंकि अदन्तविकरण से भिन्न छः गणों में इसी से झ का अत् करके अ में त् को मिलाकर अत कर देते हैं। लङ् लकार के आत्मनेपद का प्रत्यय 'अत' बनता है। उसी अत के टि अकार का टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९ से ए कर के लट् में अते, लोट् में अते का आमेतः ३।४।९० से अताम् होता है।

---

१. पूर्वत्र पंचमी परत्र सप्तमीं षष्ठीं प्रकल्पयति'। पूर्वकी पंचमी विभक्ति परकी सप्तमी को षष्ठी कर देती है। इसीसे आमि का आमः हो गया है।

६१ आधारोऽधिकरणम् १।४।४५ कारके ७।१(क्रिया सिद्धौ) आधारः १।१ अधिकरणम् १।१ भवति। क्रियायाः सिद्धौ य आधारः तत् कारकं अधिकरण-संज्ञकं भवति। अर्थात् क्रियाकी सिद्धि में आधार कारक अधिकरण संज्ञक होता है। और अधिकरण में [1]सप्तमी विभक्ति होती है। यथा कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है।) कटे शेते (चटाई पर सोता है)।

६२ आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३ धातोः ५।१ आशिषि ७।१ लिङ् लोटौ १।२ धातोः आशिषि अर्थे लिङ्लोटौ स्तः। धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होते हैं। यथा--भू + लोट् = भू + तु = भू + शप् + तु = भू + अ + तु = भो अ तु = भवतु। भू + आशीर्लिङ् = भू + यात् = भूयात्

६३ आहस्थः ८।२।३५ झलि ७।१ आहः ६।१ हः ६।१ थः १।१। झलि परतः आहः हकारस्य थकारादेशो भवति। अर्थात् झल् परे हो तो आह के हकार का थकार आदेश होता है। यथा--ब्रू + लट् = ब्रू + थ (ब्रू का आह आदेश हुआ)। आह् + थ = आथ् + थ चर् (खरि च) आत्थ।

६४ आडजादीनाम् ६।४।७२ लुङ् लङ् लृङ् क्षु ७।३ अजादीनां ६।३ अङ्गानां ६।३ आडागमः १।१। लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु अजादीनाम् अङ्गानां धातूनां आडागमो भवति। अर्थात् लुङ् लङ् लृङ् परे हो तो अजादि धातुओंको आट्का आगम होता है। एध्+ लुङ्=इष्ट—आट्+ एध् + इष्ट = ऐध्=इष्ट ऐधिष्ट।

६५ आटश्च— ६।१।९० आटः ५।१ अचि ७।१ सहितायाम् ७।१ पूर्व परयोः ६।२ एका १।१ वृद्धिः १।१। आटः परो योऽच् तस्मिन् परतः पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति। अर्थात् आट् से अच् परे रहने पर पूर्व परके स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। यथा + एध + लुङ् आट् + एध् + इष्ट=ऐध् +ऐधिष्ट

६६ आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६ टकितौ १।२ आद्यन्तौ १।२। सम्बन्धिनः आद्यन्तौ १।२ टित् कित् प्रत्ययौ क्रमात् आद्यन्तावयवौ भवतः। अर्थात् टित् कित् आगम जिसको विधान किये जांय उसके आदि और अन्तमें होते हैं। अर्थात् टित् आदिमें और कित् अन्तमें होता है। राम+आम्=राम+नुट्+आम् राम+नाम्=दीर्घ —ण रामाणाम्।

---

१. अर्थ भेद से सप्तमी विभक्ति तीन प्रकार की होती है--औपश्लेषिक, अभिव्यापक, वैषयिक। समीप अर्थ को कहने के लिये जिस सप्तमी का विधान किया जाता है वह औपश्लेषिक हैं। यथा इको यणचि में अचि। अभिव्यापक सप्तमी वह कहलाती है जहाँ सभी अवयवों में अभिव्याप्ति दिखाई जाती है। जैसे तिलेषु तैलम्। वैषयिक--सम्बन्ध दिखाने वाली जैसे-मोक्षे इच्छास्ति। मोक्ष विषय की इच्छा है।

६७ आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२ लोटः उत्तमस्य ६।१ आट् आगमः १।१ पित् १।१ च (अ०) लोट सम्बन्धिनः उत्तम पुरुषस्य आट् आगमो भवति। तस्य च पित् संज्ञा भवति। अर्थात् लोट्के उत्तम पुरुष को आट्का आगम होता है। और उसकी पित् संज्ञा होती है। लोट् लकार के मि की 'मेनिः ३।४।८९' सूत्र से नि, इसी से पूर्व आट् करके आट् नि आनि बनता है। वस् मस् में नित्यङितः ३।४।९९ से स लोप वाले व म में आट् कर के आव, आम बनते हैं। आत्मनेपद में एत ऐ ३।४।९३ से ऐ। आट्+वहै=आवहै। आट्+महै=आमहै।

६८ आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५ वलादेः ६।१ आर्धधातुकस्य ६।१ इट् १।१। वलादेरार्धधातुकस्य इडागमो भवति। अर्थात् वल् प्रत्याहार है आदि में जिसके ऐसे आर्धधातुक संज्ञक को इट् का आगम होता है जैसे —बभूव्+थ=बभूविथ।

६९ आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४ धातोः ५।१ तिङ् शिद्भ्याम् ५।२ शेषः आर्धधातुकं १।१ भवति। धातोः विहितानां तिङ् शित् भिन्नानां प्रत्ययानां आर्धधातुक संज्ञा भवति। अर्थात् तिङ् शित् को छोड़कर धातु से विहित प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है। जैसे लुट् में तास्, लृट् लृङ में स्य, लुङ् में च्लि, तृच् इत्यादि कृत् प्रत्यय सभी आर्धधातुक है। तथा लिट् च ३।४।११५ लिङाशिषि ३।४।११६ से लिट् और आशीर्लिङ् आर्धधातुक संज्ञक होते है। ये छः लकार आर्धधातुक हैं।

७० आङि चापः ७।३।१०५ आङि ७।१ ओसि ७।१ च (अ०) आपः ६।१। (आबन्तस्य) अङ्गस्य ६।१ एत् १।१। आङि ओसि परतः आबन्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति। आङ् (टा) व ओस् परे रहते आबन्त अङ्ग का एकारादेश होता है। यथा—रमा आ—रमे आ-रमया। इसी तरह रमा+ओः रमे+ओः रमयोः समझना चाहिये। टा को प्राचीन आचार्य आङ् कहते हैं। पाणिनि ने आङ् को टा कर दिया है। यह सूत्र उन्हीं लोगों का है। पाणिनि ने लेलिया है। अष्टाध्यायी पाणिनि का प्रोक्त ग्रन्थ है। कृत नहीं। बहुत से सूत्र प्राचीन हैं।

७१ आतो लोप इटि च ६।४।६४ आर्धधातुके ७।१ क्ङिति ७।१ इटि ७।१ च (अ०) आतः ६।१ (अङ्गस्य) लोपः १।१ भवति। इडादौ आर्धधातुके तथा अजादौ क्ङिति परतः आकारान्तस्य अङ्गस्य लोपो भवति। अर्थात् इडादि आर्धधातुक, अजादि कित् ङित् आर्धधातुक परे रहते आकारान्त अंग का लोप होता है। यथा—पपा+इथ=पपिथ। पपा+अतुः=पपतुः।

७२ आतो ङितः ७।२।८१ अतः ५।१ ङितः आतः ६।१ इय् १।१ भवति। इसमें अतोयेयः ७।२।८० से अतः इयः आता है। तब अर्थ होता है

अदन्तादङ्गादुत्तरस्यातो ङितः अवयवस्य सार्वधातुकस्य इय् भवति अर्थात् अदन्त अङ्ग से परे ङित्का अवयव सार्वधातुक आत्का इय् होता है। यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है। अदन्त विकरण वाले गणों में (भ्वादि दिवादि तुदादि चुरादि में) अ के बाद आताम् आथाम् के आ इय् होगा। लोपोव्योर्वलि ६।१।६६ से य् का लोप करके इताम्, इथाम् लङ् लकार का आत्मनेपदी प्रत्यय बन जाता है। बाद 'टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९' से ए करके इते इथे (लट में) 'आमेतः ३।४।९०' से पुनः आम् करके इताम् इथाम् (लोट् में) बनते हैं।

७३ आने मुक् ७।२।८२ आने ७।१ अतः ६।१ अङ्गस्य ६।१ मुगागमः १।१ यहाँ अतो येयः ७।२।८० से अतः आता है। आने परतः अतः अङ्गस्य मुगागमः भवति। अर्थात् आन परे रहने पर अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम होता है। यथा पच+आन+मुक् = पचमानम्।

७४ आ सर्वनाम्नः ६।३।९१ दृग्दृशवतुषु ७।३ सर्वनाम्नः ६।१ आ १।१ भवति। दृश्दृशवतुषु परतः सर्वनाम्नः आकारादेशो भवति। अर्थात् दृग् दृश् और वतुप् प्रत्यय परे रहते सर्वनाम संज्ञक शब्दों का आकार आदेश होता है। यथा—तत्+दृश्=त+आ+दृश् दीर्घकादेश तादृश्।

इ

७५ इको यणचि ६।१।७७ अचि ७।१ संहितायाम् ७।१ इकः ६।१ स्थाने ७।१ यण् १।१ भवति। अचि परतः संहितायां इकः स्थाने यण् आदेशो भवति। अच् परे रहते संहिता में इक्के स्थानमें क्रमसे यण होता है। यथा - दधि+अत्र दध्यत्र। मधु + इह = मध्विह। पितृ + आगमनम् = पित्रागमनम्। लृ+आकारः लाकारः।

७६ इन् हन् पूष र्यम्णां शौ ६।४।१२ शौ ७।१ इन् हन् पूषार्यम्णाम् ६।३ अङ्गानां ६।३ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ भवति। शौ परतः इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येऽमन्तानां अङ्गानां उपधायाः दीर्घो भवति। नान्यत्र। अर्थात् शि विभक्ति परे हो तो इन् प्रत्ययान्त, हन् धात्वन्त, पूषन्, अर्यमन् इन अंगों की उपधा का दीर्घ होता है। बहुदण्डिन्+इ=बहुदण्डीनि।

७७ इदुद्भ्याम् ७।३।११७ नदीभ्याम् ५।२ इदुद्भ्याम् ५।२ ङेः ६।१ आम् १।१। ङे राम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६ से नदी की अनुवृत्ति आती है। नदी संज्ञका भ्याम् इकारोकाराभ्याम् उत्तरस्य ङेरामादेशो भवति। अर्थात् इकारान्त उकारान्त नदी संज्ञकसे परे ङि का आम् आदेश होता है। यथा—मति + ङि = मति+ आम्=मति आट् आम् मति+आ+आम् वृद्धि यण् मत्याम्।

से वल् प्रत्याहार वाले अक्षरों में इतश्च से ३।४।१०० से इ-लोप वाले त् स् में तथा तस्थस्थमिपां तांतंतामः ३।४। १०१ से आदेश हुए वल् प्रत्याहार वाले अक्षरों में नित्यं ङितः से स् का लोप वाले व म में य लोप कर के अन्यत्र झेर्जुस् ३।४।१०८ से झि के स्थान में हुए उस् और अम् में य् का संयोग करके इत् इताम् इयुः। इः इतम् इत। इयम् इव इम प्रत्यय बना लेते हैं। यथा पच् + लिङ् [विधि] शप्, यास्, सुट्, त्, पच + इय्+त् = य् का लोप। पंच + इत् गुणैकादेश पचेत्। इसी तरह भवेत् इत्यादि।

३७. अपादाने पंचमी – २।३।२८ अनभिहिते ७।१ अपादाने ७।१ कारके ७।१ पंचमी १।१। अनभिहिते [अनुक्ते] अपादाने कारके पञ्चमी भवति। अर्थात् अनभिहित [अनुक्त] अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है। यथा—ग्रामादागच्छति। यहाँ पर ग्राम में पंचमी विभक्ति हुई।

३८. अव्ययीभावः २।१।५ अव्ययीभावः १।१ इतोऽग्रे यः समासो भवति तस्य अव्ययीभाव संज्ञा भवति। अर्थात् इस सूत्र से आगे २।१।२१ तक १६ सूत्रों के द्वारा जो समास होगा वह अव्ययीभाव संज्ञक होगा। यथा उपकुम्भम् अव्ययीभाव समास है। क्योंकि अव्ययं विभक्ति० २।१।६ से समास हुआ है। अव्ययीभाव में पूर्वपदार्थ प्रधान होता है।

३९. अनेकमन्यपदार्थे—२।२।२४ अन्यपदार्थे ७।१ अनेकं १।१ सुबन्तं १।१ विभाषा १।१ समस्यते बहुव्रीहिः समासः। अन्यस्य पदस्य अर्थे वर्तमानं अनेकं सुबन्तं परस्परं विकल्पेन समस्यते। अस्य समासस्य बहुव्रीहिः संज्ञा भवति। अर्थात् किसी दूसरे अर्थको कहने वाले अनेक सुबन्त पद आपसमें विकल्प से समासको प्राप्त होते हैं। इस समास की बहुव्रीहि संज्ञा होती है। इस समास में दोनों पद अप्रधान होते हैं। कोई अन्य पद ही प्रधान होता है। यथा प्राप्तोदकः [ग्रामः]। प्राप्तं उदकं यम् [प्राप्त हो गया है पानी जिसको] वह कोई अन्य ही पदार्थ ग्राम हुआ। अतः यह बहुव्रीहि समास हुआ।

४०. अकः सवर्णे दीर्घः—६।१।१०१ अकः ५।१ सवर्णे ७।१ अचि ७।१ संहितायाम् ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकः १।१ दीर्घः १।१। अकः उत्तरस्य सवर्णे अचि परतः पूर्व-परयोः स्थाने दीर्घरूप एकादेशो भवति। अर्थात् अक् से परे सवर्ण अच् परे हो तो पूर्व परके स्थान में एक दीर्घ होता है। यथा दैत्य+अरिः यहाँ दोनो दैत्य में य का अ और अरि का अ सवर्ण हैं। तो दीर्घ आ हो जाने से दैत्यारिः प्रयोग बन जायेगा।

४१ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा – ८।३।२ अत्र (अ०) रोः ५।१ पूर्वस्य ६।१ तु वा (अ०) । इत उत्तरं यस्य स्थाने रुः विधीयते तस्मात् पूर्वस्य वर्णस्य विकल्पेन

अनुनासिकादेशो भवति। अर्थात् यहाँ से जिसको रु विधान करेंगे उस रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है। यथा सम्+स्कर्ता यहाँ समः सुटि से म् को रु किया स रु स्कर्ता बन जाने पर अनुनासिक आदेश किया सँरुस्कर्ता हुआ। फिर रु मे उ की इत्संज्ञा की। उसका लोप, रेफ को विसर्ग, फिर विसर्ग को स् किया संस्कर्ता शब्द सिद्ध हुआ।

४२ अतो रोरप्लुतादप्लुते – ६।१।११३. अप्लुतात् ५।१ अतः ५।१ संहितायाम् ७।१ अप्लुते ७।१ अति ७।१ रोः ६।१ उत् १।१। अप्लुतात् अकारात् उत्तरस्य अप्लुते अति परतः रोः उत् भवति। अर्थात् अप्लुत (एक मात्रिक ह्रस्व अकार से अप्लुत (ह्रस्व अ) अकार परे हो तो रु का उ आदेश होता है। यथा वृक्ष+सु (प्रत्यय)+अत्र (सु के उ की इत् संज्ञा हुई स को रु हुआ वृक्ष+रु+अत्र। यहाँ पर रु से पूर्व भी ह्रस्व अ है और पर अत्र में भी ह्रस्व अ है। अतः रु को उ हो गया। गुणैकादेश किया फिर पूर्व रूप किया। वृक्षोऽत्र।

४३ [1]अव्ययादाप्सुपः २।४।८२. अव्ययात् ५।१ अप्सुपः ६।१ लुक् १।१। अव्ययात् उत्तरस्य आपः सुपश्च लुक् स्यात्। अर्थात् अव्यय से परे आप् (टाप् चाप् डाप्) एवं सुप् का लुक् होता है। च+सु लुक्=च

४४ अकृत्-सार्वधातुकयो दीर्घः ७।४।२५ अकृत्सार्वधातुकयोः ७।२ यि ७।१ क्ङिति ७।१ अजन्तस्य अङ्गस्य ६।१ दीर्घः १।१। कृद्भिन्ने सार्वधातुक भिन्ने यादौ क्ङिति प्रत्यये परतः अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात्। अर्थात् कृत् प्रत्यय एवं सार्वधातुक से भिन्न यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो अजन्त अङ्ग का दीर्घ होता है। जैसे चीयात् स्तूयात् आदि प्रयोगों में आशीर्लिङ्ग में चि स्तु धातुओं के अच् का दीर्घ होता है।

४५ अचोयत् ३।१।९७ अचः ५।१ धातोः ५।१ यत् १।१ प्रत्ययः १।१ परः १।१। अजन्तात् धातोः परः यत् प्रत्ययः स्यात्। अर्थात् अजन्त धातुओं से परे यत् प्रत्यय होता है। यथा चि+यत्=चि+य = गुण चेय (प्रातिपदिक) चेयम्।

---

१. पाणिनि ने अव्यय संज्ञा बहुत बड़ी की है। जिसका यथार्थ नाम है न व्येति विविधं विकारं न गच्छति यः सः अव्ययः। अर्थात् 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।' जो शब्द तीनों लिङ्गों में सभी विभक्तियोंमें सभी वचनोंमें एक सा रहे, वही अव्यय है। उसके आगे आने वाले आप् और सुप् दोनों गायब हो जायेंगे। जैसे स्वः, च, वा इत्यादि।

४६ अचोञ्णिति ७।२।११५ ञ्णिति ७।१ अचः ६।१ अङ्गस्य ६।१ वृद्धिः १।१ । ञिति णिति च प्रत्यये परतः अजन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति । अर्थात् ञित् णित् प्रत्यय परे रहते अजन्त अङ्ग की वृद्धि होती है। जैसे कृ धतु से घञ् प्रत्यय । तब ञित् प्रत्यय परे रहने से कृ की वृद्धि आर् हो गयी । तब कारः सिद्ध हुआ ऐसे ही हारः ।

४७ अत इञ्—४।१।९५ अतः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ [तस्यापत्यं ४।१।६२] इत्यर्थे इञ् प्रत्ययः १।१ भवति । अदन्तात् प्रातिपदिकात् अपत्ये अर्थे इञ् स्यात् । अर्थात् अकारान्त प्रातिपदिक से अपत्य [सन्तान] मात्र अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है। यथा दक्षस्य अपत्यं । इस अर्थ में दक्ष शब्द से इञ् प्रत्यय हुआ । दक्ष+ इञ् , ञ् की इत् संज्ञा [तद्धितेष्वचामादेः] से आदि वृद्धि क्ष के अ का लोप दाक्षिः प्रयोग सिद्ध हुआ । ऐसे ही दाशरथिः रामः । रामी कुशलवौ । मारुतिः हनूमान् ।

४८ अत इनिठनौ ५।२।११५ । अतः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ [मतुबर्थे] इनिठनौ १।२ प्रत्ययौ १।२ । अकारान्तात् प्रातिपदिकात् मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः । अर्थात् अकारान्त प्रातिपदिक से मतुप् के अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं[1] ।

४६ अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५ प्रातिपदिकात् ५।१ अतिशायने ७।१ (स्वार्थे) तमबिष्ठनौ १।२ प्रत्ययौ १।२ परौ १।२ भवतः । अतिशायने अर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तमप् इष्ठन् एतौ प्रत्ययौ भवतः । अर्थात् अत्यन्त प्रकर्ष अर्थ में वर्तमान प्रादिपदिक से तमप् व इष्ठन् प्रत्यय होते हैं । यथा दर्शनीय प्रातिपदिक से तमप् प्रत्यय किया तो दर्शनीयतमः बना । इसी तरह सुकुमारतमः ।

५० अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य-कतरि च्विः ५।४।५० इस सूत्र में—

कृ च भू च अस्ति च कृभ्वस्तयः तेषां योगः तस्मिन् । तस्य भावः तद्भावः अभूतस्य तद्भावः तस्मिन् अभूततद्भावे ७।१ सम्पद्यकर्तरि ७।१ कृभ्वस्तियोगे ७।१ च्विः १।१ । कृ, भू , अस्ति-धातुभिः योगे अभूततद्भावे सम् पूर्वस्य पदधातोः कर्तरि अर्थे च्वि-प्रत्ययो भवति । अर्थात् कृ, भू और अस् धातु के योगमें पहले न हुए के हो जाने अर्थ में सम्पन्न होना क्रियाके कर्तामें च्वि प्रत्यय होता है। यथा अशुक्लः शुक्लः संपद्यते, तं करोति च। जो शुक्ल नहीं है वह शुक्ल हो गया है । इस अर्थमें कृ धातु का योग में भी शुक्लसे च्वि प्रत्यय हो गया । शुक्ल+च्वि = च्वि का सर्वापहारी लोप शुक्ल+ करोति = शुक्ली करोति ।

१—यह प्रत्यय (अधिकार सत्ता) बताने के लिए विहित है अर्थात् 'भूम-निंदा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥'

५१ अस्य च्वौ ७।४।३२ च्वौ ७।१ अस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ ई १।१ भवति। च्वौ परतः अवर्णान्तस्य अङ्गस्य ईकारादेशो भवति। अर्थात् च्वि प्रत्यय परे हो तो अवर्णान्त अंग का ईकार आदेश होता है। यथा—अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते इति कृष्णी भवति अर्थात् जो काला नहीं है वही काला होता है। अकृष्णः कृष्णो भवति इस अर्थ में 'अभूत तद्भावे सम्पद्य कर्तरि च्विः' ५।४।५०से च्वि प्रत्यय हुआ। उसका सर्वापहारी लोप हो गया। इस सूत्र से ई होने पर कृष्णी + भवति योंही कृष्णी करोति होता है। अस्ति सत्ता अर्थ में जो मतुप् विधान किया गया है वह भूमादि विषयों में होते हैं। यथा भूमा—गौ है अधिक जिसके वह पुरुष गोमान् कहलाया। निन्दा—हनुमान्। प्रशंसा-रूपवान्। अतिशायन प्रधान—उदरिणी कन्या। संसर्ग (संयोग)दण्डी इत्यादि।

५२ अत उपधायाः ७।२।११६ ञ्णिति ७।१ अङ्गस्य ६।१ अतः ६।१ उपधायाः ६।१ वृद्धिः १।१। ञिति णिति प्रत्यये परतः अङ्गस्य उपधायाः अकारस्य स्थाने वृद्धिः भवति। अर्थात् ञित् और णित् प्रत्यय परे रहते अङ्ग की उपधा में वर्तमान अकार की वृद्धि होती है। जैसे—गम + णल् = गम् + अ गम् गम् अ=गगम् अ=जगम् + अ=जगाम।

क्त्वा

५३ आदेश-प्रत्यययोः ८।३।५९ इण्कोः ५।१ आदेश-प्रत्यययोः ६।२ सः ६।१ मूर्धन्यः १।१ इण्कोः ८।३।५७ अपादान्तस्य मूर्धन्यः ८।३।५५ इनका अधिकार है। सः की अनुवृत्ति है। इण्कुभ्यां परस्य आदेश-प्रत्यययोः सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। अर्थात् इण् और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार का मूर्धन्य होता है। रामे+सु=रामेषु।

५४ आद् गुणः ६।१।८७ आत् ५।१ संहितायाम् ७।१ अचि ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकः १।१ गुणः १।१ भवति। अवर्णात् अचि परतः संहितायाम् पूर्व-परयोः स्थाने एकः गुणादेशो भवति। अर्थात् अवर्ण से परे अच् हो तो पूर्व पर के स्थान में एक गुणादेश होता है। यथा उप + इन्द्रः = उपेन्द्र। रमा + ईशः = रमेशः। गंगा + उदकम् = गंगोदकम्।

५५ आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२० घेः ५।१ अस्त्रियाम् ७।१ आङः ६।१ ना १।१ घिसंज्ञकात् परस्य आङो ना स्यात् स्त्रीलिङ्गं वर्जयित्वा। अर्थात् स्त्रिलिङ्ग को छोड़कर घि संज्ञक से परे आङ् (टा) का ना होता है। हरि + टा = ना हरिना = हरिणा।

५६ आण्नद्याः ७।३।११२ नद्याः ५।१ अङ्गात् ५।१ ङितः ६।१ आट् १।१ (आगमः) स्यात् यथा—नद्यन्तात् अङ्गात् परस्य ङितः प्रत्ययस्य आट् आगमो भवति।

७८ इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३ अजादौ ७।१ विभक्तौ ७।१ नपुंसकस्य ६।१ इगन्तस्य ६।१ अंगस्य ६।१ नुमागमः १।१। अजादौ विभक्तौ परतः नपुंसकलिङ्गे वर्तमानस्य इगन्तस्य अंगस्य नुमागमो भवति। अजादि विभक्ति परे हो तो नपुंसकलिंग में वर्तमान इगन्त अंगको नुम् का आगम होता है। त्रपु + औ = नुम् त्रपु + नुम् औ (औ को नपुंसकाच्च से शी हो गया) त्रपुणी।

७९ इडाया वा ८।३।५४ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४ आ रहा है। इडायाः परस्य विभक्तिविसर्गस्य स्थाने सकारादेशो विकल्पेन भवति। अर्थात् इडा शब्द से परे विभक्ति के विसर्ग का सकारादेश विकल्प से होता है। यथा—इडायास्पारम्—या इडायाः पारम्।

८० इदमो मः ७।२।१०८ सौ ७।१ इदमः ६।१ मः १।१ भवति। तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६ से सौ आता है। सौ विभक्तौ परतः इदमो मस्य मकारादेशो भवति। सु विभिक्ति परे हो तो इदम्‌के म का म ही होता है। यहां पर म का म विधान करने का तात्पर्य है कि 'त्यादादीनामः' से अ न हो। यथा इदम् सु = म् का म ही रहा तब आगे का सूत्र लगेगा।

८१ इदोऽय् पुंसि ७।२।१११ पुंसि सौ ७।१ इदमः इदः ६।१ अयादेशः १।१ यः सौ ७।२।११० से सौ आता है। सौ विभक्तौ परतः पुँल्लिङ्गे इदम इद् रूपस्य अय् आदेशो भवति। अर्थात् सु विभक्ति परे हो तो इदम् शब्द के इद् रूप का अय् आदेश होता है। पुंल्लिङ्ग में यथा—इदम् = अयम्।

८२ इतश्च ३।४।१०० धातोः ङितः लकारस्य ६।१ इतः ६।१ नित्यम् १।१ लोपः १।१। इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ३।४।९७ से लोपः परस्मैपदेषु आता है। नित्यम्ङितः ३।४।९९ से ङित् आता है। परस्मैपदे ङित् लकारस्य इतो नित्यं लोपो भवति। अर्थात् परस्मैपद में ङित् लकार (लङ् लिङ् लुङ् लृङ्) के इकार का नित्यही लोप होता है। यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है। ङित् लकारों की ति सि मि की इकार का लोप करता है तो त् स् झ् हो जाता है। झ का जब अन्त् हो जाता है तो संयोगान्त लोपः से त् का लोप कर के अन् प्रत्यय बन जाता है।

ई

८३ ईदूदेद्द्विवचनम् प्रगृह्यम् १।१।११ ईदूदेदन्तं १।१ द्विवचनं १।१ प्रगृह्यं[1] १।१।

---

१. प्रगृह्य संज्ञा जिन शब्दों की होती है उनमें विकृति नहीं आती। वह ज्यों के त्यों रहते हैं। प्रगृह्य का अर्थ है अपने को खूब दृढ़ रखना। विकृत नहीं होने देना, इसी कारण पाणिनि ने 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५' (प्लुत और प्रगृह्य संज्ञा वाले अच् ज्यों के त्यों रहते हैं बदले नहीं) सूत्र बनाया है।

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्य-संज्ञं स्यात्। अर्थात् ईत्-ई ऊत्-ऊ एत्-ए जिनके अन्त में हो ऐसे जो द्विवचनान्त पद हैं, उनकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। यथा—हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू।

८४ ई हल्यघोः ६।४।११३ हलि क्ङिति ७।१ सर्वधातुके ७।१ श्नाभ्यस्तयोः अङ्गयोः ६।२ आतः ६।१ ईकारादेशः १।१ अघोः ६।१ (न तु घोः) हलादौ किति ङिति सार्वधातुके परतः घुवर्जितयोः श्नाभ्यस्तयोः अङ्गयोः आतः स्थाने ईकारादेशो भवति। अर्थात् हलादि कित् और ङित् सार्वधातुक परे हो तो घुः (दा धा) संज्ञक को छोड़ कर श्ना प्रत्ययान्त अङ्ग और अभ्यस्त अङ्ग के स्थान में ईकारादेश होता है। यथा मिमा+ते = मिमीते।

उ

८५ उच्चैरुदात्तः १।२।२६ उच्चैः (अ०) अच् १।१ उदात्तः १।१ ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषु ऊर्ध्वभागे निष्पन्नः अच् उदात्त-संज्ञः स्यात्। अर्थात् मुख में रहने वाले तालु आदि स्थानों में वर्णों का उच्चारण होता हैं। इन स्थानोंमें जो ऊर्ध्व भाग है उन भागों से उच्चरित अच् [1]उदात्त संज्ञक होता है।

८६ उपदेशेऽजनुासिक इत् १।३।२ उपदेशे ७।१ अनुनासिकः १।१ अच् १।१ इत् १।१। उपदेशे योऽनुनासिकोऽच् सः इत्संज्ञः भवति। अर्थात् [2]उपदेश में होने वाला अनुनासिक अच् इत्संज्ञक होता है। यथा—पठ—यहां पर ठ में अ की अनुनासिक होने से इत्संज्ञा होती है। बाद में तस्य लोपः १।३।९ से लोप हो जाता है। पठ् बन जाता है।

८७ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७० सर्वनाम स्थाने ७।१ अधातोः ६।१ उगिदचां ६।३ नुमागमः १।१। सर्वनाम स्थाने परतः धातुं त्यक्त्वा उगिताम्

---

१. महाभाष्यकार ने अच् उदात्त है या नहीं इसकी पहचानके लिये तीन साधन बताए हैं। आयाम शरीरके सभी अंगों को सरल कर लेना २. दारुण्य—स्वर में रुलाई होना ३—अणुता खस्य—कण्ठको संकुचित कर लेना। ऐसे यत्नोंसे बोले जाने वाला जो अच् है वह उदात्त संज्ञक होता है। यथा—आये यहाँ आ और ए उदात्त हैं।

२. उपदेश शब्द से यहाँ पाणिनि मुनि का तात्पर्य इस श्लोक से प्रगट होता है।

धातु-सूत्र गणोणादि वाक्य लिङ्गानुशासनम्।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥

(जारी)

अङ्गानाम् अञ्चतेश्च नुमागमो भवति। अर्थात् सर्वनाम स्थान परे रहते धातु को छोड़कर उक् इत्संज्ञा है जिसकी ऐसे अंग को तथा अञ्चु धातु को नुम् का आगम होता है। भवत् + सु=भवात्+सुनुम्=भवान्त् + सु सुलोप भवान्त् त्लोप=भवान्।

८८ उरण् रपरः १।१ ३१ उः ६।१ अण् १।१ रपरः १।१। [1]ऋवर्णस्य स्थाने अण् रपरः सन्नेव प्रवर्तते। अर्थात् ऋ वर्णके स्थानमें जो अण् होता है वह रपर अण् हो जाता है। यथा—कृष्ण के अ और ऋद्धि के ऋ के साथ गुणैकादेश करेंगे तो अर् होगा कृष्णार्द्धिः।

८९ उपसर्गे घोः किः ३।३।९२ घोः धातोः ५।१ उपसर्गे भावे ७।१ किः १।१ प्रत्ययः १।१ भावे ३।३।१८, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९। की अनुवृत्ति है। कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् भावे च अर्थे उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकात् धातोः किः प्रत्ययो भवति। अर्थात् घु संज्ञक धातुओंसे उपसर्ग उपपद होने पर कर्तृभिन्न संज्ञा एवं भाव अर्थ में कि प्रत्यय होता है। यथा —वि पूर्वक धा धातु+कि प्रत्यय=विधिः।

९० उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५९ क्रिया योगे ७ १ प्रादयः १।३ उपसर्गाः १।३ यहां प्रादयः १।४।५८ सूत्र की अनुवृत्ति है। क्रिया-योगे प्रादयः उपसर्ग संज्ञका भवन्ति। अर्थात् क्रिया से सम्बन्ध जुड़ जाने पर प्रादि की उपसर्ग संज्ञा होती है। और इनका धातु से पूर्व प्रयोग होता है। परन्तु वेद में इसका अतिक्रमण हो जाता है। यथा प्रभवति, उद्भवति। वेद में आब्रह्मन् इत्यादि मन्त्र में आजायताम् का आ उपसर्ग आब्रह्मन् में ब्रह्मन् शब्द से पूर्व में रखा है।

९१ उतोवृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९ हलि ७।१ पिति ७ १ सार्वधातुके लुकि ७।१ उतः (उदन्तस्य) ६।१ अंगस्य ६।१ वृद्धिः १।१। हलादौ पिति सार्वधातुके परतः लुकि सति उकारान्तस्य अंगस्य वृद्धिः भवति अर्थात् हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते शप् का लुक् हो जाने पर उकारान्त अंग की वृद्धि होती है। यु+ति=शप् लुक् वृद्धि यौति।

९२ उभे अभ्यस्तम् ६।१।५ उभे १।२ अभ्यस्तम् १।१। अस्मिन् द्वित्व-प्रकरणे द्वित्वे सति ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्त-संज्ञे स्तः। अर्थात् जो द्वित्व रूप से कहे गये हैं; वे दोनों मिले हुए अभ्यस्त-संज्ञक होते हैं। यथा ददा+ अत् ये ददा द्वित्व हैं अतः उसकी अभ्यस्त संज्ञा हो जायेगी तो आका लोप होने पर ददत् बनेगा।

अर्थ—१ धातु पाठ २ सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी) ३ गण पाठ ४ उणादि सूत्र ५ शिक्षा सूत्र के साथ लिङ्गानुशासन।

९३ उस्यपदान्तात् ६।१।९६ अपदान्तात् ५।१ संहितायाम् ७।१ उसि ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकं १।१ पररूपम् १।१ । अपदान्तात् अवर्णात् उसि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशः स्यात् । अर्थात् अपदान्त अवर्ण से उस् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है । यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है । विधिलिङ् लकार में झेर्जुस् ३।४।१०८ से झि का जुस् करके अनुबन्ध लोप करने पर यासुट् का आगम कर अनुबन्ध लोप कर चुकने पर स् लोप के बाद या+उस् की स्थिति में इस सूत्र से पर रूप करके ६ गणों के विधिलिङ् का प्रथम पुरुष का बहुवचन युः प्रत्यय तैयार होता है ।

९४ उतश्च प्रत्ययादसंयोग-पूर्वात् ६।४।१०६ असंयोगपूर्वात् ५।१ उतः प्रत्ययात् ५।१ अङ्गात् ५।१ हेः ६।१ लुक् १।१। चिणो लुक् ६।४। १०४ से लुक्, अतो हेः ६।४।१०५ से हेः आता है । असंयोगपूर्वो यः ऊकारः तदन्तात् अंगात् परस्य हेर्लुक् भवति । अर्थात् संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसे प्रत्यय के उकारान्त अंग से परे हि का लुक् होता है । यथा चिनु+हि, कुरु + हि की स्थिति में हि का लुक् करके चिनु कुरु बनता है ।

९५ उगितश्च ४।१।६ उगितः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ स्त्रियां ७।१ ङीप् १।१ प्रत्ययः १।१ । उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययः स्यात् । यथा भा धातु से डवतु प्रत्यय करके बने हुए भवतु शब्द के उ की इत् संज्ञा लोप करके स्त्र लिंग में उससे ङीप् प्रत्यय होता है । भवत्+ङीप् भवती ।

९६ उपमानादाचारे ३।१।१० उपमानात् ५।१ कर्मणः ५।१ सुबन्तात् ५।१ आचारे ७।१ (अर्थे) क्यच् प्रत्ययः १।१ वा भवति । उपमानवाचिनः सुबन्तात् कर्मणः आचारे अर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति । उपमानवाची सुबन्त कर्म से विकल्पसे क्यच् प्रत्यय होता है । यथा—पुत्रमिव आचरति अध्यापकः शिष्यम् । अर्थात् अध्यापक पुत्र के समान शिष्यको मानता है । इस अर्थमें पुत्रम् सुबन्त से क्यच् होने पर सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२ से धातु संज्ञा कर के सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७१ से अम् का लुक् कर के क्यचि च ७।४।३३ से पुत्र+य में पुत्रके अकार का ईकार करके पुत्रीय नाम धातु बना लेते है । तिप् शप् पूर्वरूप पुत्रीयति ।

ऊ

९७ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १।२।२७ ऊकालः १।१ अच् १।१ ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः १।१ भवति । उश्च ऊश्च ऊ३श्च=वः, वाम् काल इव कालो यस्य सोऽच् ऊकालः क्रमात् ह्रस्व दीर्घ-प्लुत-संज्ञः स्यात् । अर्थात् एक मात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान जिस अच् का उच्चारण काल है । उस अच् की क्रमसे

ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञा होती है। [1]यथा—दधि, मधु यहाँ ध को इ और उ एक मात्रिक होने से ह्रस्व हैं। कुमारी, गौरी यहाँ री की ई द्विमात्रिक होने से दीर्घ है। एहि देवदत्त ३ यहां देवदत्त में त वाला अ प्लुत है।

ऋ

९८ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसांच ७।१।९४ असम्बुद्धौ सौ ७।१ ऋदुशनस्-पुरुदंसोऽनेहसां ६।३, च (अ०) अनङादेशः १।१। असम्बुद्धौ सौ परतः ऋकारान्तानाम् अङ्गानाम् उशनस् पुरुदंसस् अनेहस् इत्येतेषां च अंगानाम् अनङादेशो भवति। अर्थात् सम्बुद्धि भिन्न सु परे हो तो ऋकारान्त अंग का उशनस् पुरुदंसस् अनेहस् अंगों का अनङ् आदेश होता है। यथा—क्रोष्टृ + सु = अनङ् = दीर्घ सुलोप न् लोप क्रोष्टा।

९९ ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११० ङि—सर्वनाम-स्थानयोः ७।२ ऋतः ६।१ अंगस्य ६ १ गुणः १ १। ङौ सर्वनाम-स्थाने च परतः ऋकारान्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति। अर्थात् ङि और सर्वनाम-स्थान परे हो तो ऋकारान्त अङ्गका गुण होता है। मातृ+ङि (गुण) मातरि यों ही सर्वनाम स्थान में भी गुण होता है मातरः, इत्यादि।

१०० ऋत उत् ६।१।१११ ऋतः ५।१ ङसि-ङसोः ६।२ अति ७ १ पूर्वपरयोः ६।२ स्थाने ७।१ एकं १।१ उत् १।१। ऋकारान्तात् शब्दस्वरूपात् ङसि ङसोः सम्बन्धिनि अकारे परतः पूर्व-परयोः स्थाने उकारैकादेशो भवति। अर्थात् ऋकारान्त शब्दस्वरूपसे ङसि और ङस् का अकार परे हो तो ऋ और अ के स्थान पर एक उकार आदेश होता है। जैसे होतृ + अस् होतुर् होतुः।

१०१ (वा०) ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् ८।४।१ ऋवर्णात् ५।१ नस्य ६।१ णत्वं १।१ वाच्यम् १।१ ऋवर्णात् परस्य नस्य णत्वं भवति। अर्थात् ऋवर्णान्त से परे न का ण होता है यथा—धातृणाम्।

१०२ ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५ ऋन्नेभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ स्त्रियां ७।१ ङीप् प्रत्ययः १।१ परः १।१ ऋकारान्तेभ्यः नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियाम् ङीप् प्रत्ययः भवति। अर्थात् ऋकारान्त तथा नकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय होता है। कर्तृ + ङीप् = कर्त्री, दण्डिन् + ङीप् दण्डिनी।

---

१. मुर्गे की बोली कु कू कू ३ पर यह सूत्र बना है। इसीलिये यद्यपि स्वर में अ पहले हैं तो भी उसका उदाहरण नहीं दिया गया है। क्योंकि लोक में उसका उदाहरण नहीं है।

१०३ ऋतश्च ७।४।९२ यङ् लुकि ७।१ ऋतः ६।१ अङ्गस्य ६।१ अभ्यासस्य ६।१ रुग्रिकौ १।२। यङ्लुकि ऋकारान्तस्य अङ्गस्य अभ्यासस्य रुक् रिक् रीक् इत्येते आगमा भवन्ति। अर्थात् यङ् लुक् के विषय में ऋकारान्त अङ् के अभ्यास को रुक् रिक् रीक् आगम होते है। यथा—च कर्ति में अभ्यासके रुक् रिक् रीक् आगम अनुबन्धलोप-चर्कर्ति चरिकर्ति चरीकर्ति बनते हैं।

१०४ ऋहलोर्ण्यत् ३।१।२४ ऋहलोः ६।२ धात्वोः ६।१ ण्यत् प्रत्ययः १।१। ऋवर्णान्तात् हलन्तात् च धातोः ण्यत् प्रत्ययो भवति। अर्थात् ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है। कृ+ण्यत् य वृद्धि कार्यम् एवं हार्यम्।

ॠ

१०५ ॠत इद्धातोः ७।१।१०० ॠतः ६।१ धातोः ६।१ अङ्गस्य ६।१ इत् १।१। ॠकारान्तस्य धातोरङ्गस्य इकारादेशो भवति। अर्थात् ॠकारान्त धातुके अङ्गको इकारादेश होता है। यथा कॄ+ति=श कॄ+अति=इकारादेश [रपर्] किरति। गॄ गिरति।

१०६ ॠदोरप् ३।३।५७ ॠदोः ६।१ धातोः ६।१ अप् १।१ प्रत्ययः १।१। ॠकारान्तेभ्य उवर्णान्तेभ्यश्च धातुभ्यः अप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् ॠकारान्त तथा उवर्णान्त धातुओंसे अप् प्रत्यय होता है। कॄ+अप् (गुण) करः युः+अप्= यवः। पूञ्+अप्=पवः।

ए

१०७ एचोऽयवायावः ६।१।७८ अचि ७।१ संहितायाम् ७ १ एचः ६।१ (स्थाने) अयवायावः १।३ भवन्ति। अचि परतः एचः स्थाने अय् अव् आय् आव् इति आदेशो भवति। अर्थात् अच् परे हो तो एच् के स्थान में अय् अव् आय् आव् क्रमसे आदेश होते हैं। यथा—ने+अति=नयति, भो+अति=भवति, नै+ अकः=नायकः, पौ+अकः=पावकः।

१०८ एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९ प्रथमायाः ६।१ एकवचनं १।१ सम्बुद्धिः १।१। सम्बोधने प्रथमा विभक्तेः एकवचनस्य सम्बुद्धिः संज्ञा भवति। अर्थात् सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति के एकवचन की सम्बुद्धि संज्ञा होती है। हे राम+सु (सम्बुद्धि संज्ञा) सु लोप=हे राम!

१०९ एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६९ एङ् ह्रस्वात् (५।१), सम्बुद्धेः (६।१) लोपः (१।१)। एङन्तात् ह्रस्वान्तात् च प्रातिपदिकात् उत्तरम् सम्बुद्धेः अपृक्तहल

लुप्यते। अर्थात् एङन्त तथा ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से उत्तर सम्बुद्धि के अपृक्त हल्का लोप होता है। एङ् यथा हे अग्ने + सु (लोप) हे अग्ने।

११० एत ईद् बहुवचने ८।२।८१ अदसः ६।१ दात् ५।१ बहुवचने ७।१ एतः ६।१ ईत् १।१ दः ६।१ मः १।१। बहुवचने अदसः दात् परस्य एकारस्य ईकारादेशो भवति। दकारस्य च मकारः। अर्थात् बहुवचनमें अदस् शब्दके दकारसे परे एकार के स्थानमें ईकारादेश होता है। एवं दको म होता है। अदस्+भिः = अद+अ भिः=अद+भिः यहाँ 'अतो भिस ऐस्' को 'नेदमदसोरकोः' निषेध कर देता है तब बहुवचने झल्येत् लगता है। अदेभिः=अमीभिः।

१११ एरच् ३।३।५६ एः ५ १ धातोः ५।१ भावे ७ १ अच् १।१ प्रत्ययः १।१ परः १।१। इवर्णान्तात् धातोः भावे (अर्थे) अच् प्रत्ययो भवति। अर्थात् इवर्णान्त धातु से भाव अर्थ में अच् प्रत्यय होता है। यथा—नि + अच् = गुण ने + अच् एच् का अय् आदेश नयः। योंही चयः। जयः।

११२ एक देश विकृतमनन्यवत् (परिभाषा) अर्थात् जिसके शरीर का एक अङ्ग विकृत हो गया हो। वह दूसरा नहीं होता। [कुत्ते की पूँछ कट जाने पर वह गदहा नहीं होता।] इसी तरह शास्त्र में व्यवहार किया जाता है। यथा रामास् मे सका 'ससजुणोरुः ८।२।६६' से रु हुआ। उ की इत् संज्ञा रामारु हसन्ति में र का उ गया तब भी वह रु है। भोभगो॰ ८।३।१७ से य् करके लोप करके रामा हसन्ति होता है।

११३ एरुः ३।४।८६ लोटः ६।१ एः ६।१ उः १।१ प्रत्ययः १ १। लोटः सम्बन्धिन इकारस्य उः स्यात्। अर्थात् लोट् के स्थान में हुए आदेश के अवयव इ का उ होता है। यह भी प्रत्यय बनाता है। लोट के क्रमशः ति अन्ति के तु अन्तु हो जाते हैं। सि को सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७ और मि को मेर्निः ३।४। ८९ मार लेते हैं।

११४ एतत्तदोःसुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि। ६।१।१३२ अनञ्-समासे हलि ७।१ अकोः ६।२ एतत्तदोः ६।२ सु-लोपः १।१। अनञ् समासे वर्तमानयोः अककारयोः एतत्तदोः सुलोपो भवति हलि परतः। अर्थात् ककार रहित और नञ्-समास में वर्तमान नहीं है ऐसे एतद् और तद् शब्द से सु का लोप हो जाता है हल् परे रहते। यथा एष + सु+हसति, स+सु+भवति = एष हसति स भवति।

११५ एकस्य सकृच्च ५।४।१९ क्रियाया वृत्ति-गणने ७।१ एक शब्दस्य ६।१ स्थाने ६।१ सकृत् आदेशः १।१। एक शब्दस्य स्थाने सकृद् आदेशो भवति सुच् प्रत्ययः क्रिया वृत्ति गणने अर्थे। अर्थात् एक शब्दके स्थान में सकृद् आदेश होता है तथा सुच्

प्रत्यय होता है क्रिया की आवृत्ति गणना अर्थ में। यथा एकवार (सकृद्) भुङ्क्ते [एक बार खाता है।] एक=सकृत् सुच् च लोप उ लोप स् का संयोगान्त लोप सकृद् भुङ्क्ते।

११६ एङः पदान्तादति ६।१।१०९ एङः ५।१ पदान्तात् ५।१ अति ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकं १।१ पूर्वरूपम् १।१ एकः पूर्व परयोः ६।१।८४ का अधिकार है। पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। अर्थात् पदान्त एङसे अत् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है। हरे+अव=पूर्वरूप हरेऽव।

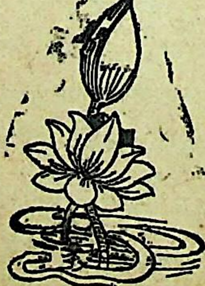
ओ

११७ ओसि च ७।४।१०४ ओसि ७।१ अतः ६।१ अङ्गस्य ६।१ एत् १।१ ओसि परतः अकारान्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति, अर्थात् ओस् परे हो तो अकारान्त अङ्गका एकारादेश होता है। यथा—राम+ओस्=रामे+ओस् अय्=स् कार का विसर्ग-रामयोः।

औ

११८ औङ आपः ७।१।१८ आपः ५।१ अङ्गात् ५।१ औङः ६।१ स्थाने शी भवति। आबन्तात् अङ्गात् परस्य औ स्थाने शी आदेशो भवति। अर्थात् आबन्त अङ्गसे परे औ का शी होता है। यथा -रमा+औ=रमा+ ई=रमे।

ककारादि क्रम में इसी प्रकार शेष सूत्रों की वृत्ति वना लें।



मेरे प्रिय पाठको—

इस पुस्तक को वस्तुतः पूर्णा नाम्नी अजादि सूत्र व्याख्या के साथ समाप्त कर दिया गया था और उसी व्याख्या के अन्त में सूचित भी कर दिया गया था कि इसी प्रकार हलादि सूत्रों की व्याख्या कर लें। किन्तु बाद में महसूस हुआ कि ग्रन्थ में न्यूनता रह जाएगी क्योंकि जो शिक्षार्थी विद्यालयों में नहीं पढ़ते अथवा किसी शिक्षक की सहायता भी नहीं ले सकते उन्हें इन सूत्रों के अर्थों के लिये यत्र-तत्र भटकना पड़ेगा। अतः इस श्रेणी के छात्रों की सुविधा के लिए हमने हलादि सूत्रों की व्याख्या देना समुचित समझा है। हमें पूर्ण आशा है कि इससे अब सब प्रकार के पठनार्थी लाभ उठा सकेंगे।

—**सम्पादक**

क

११९ **कृत्तद्धितसमासाश्च** १।२।४६ कृत्तद्धितसमासाः १।३ प्रातिपदिकं १।१ कृत्प्रत्ययान्ताः तद्धितप्रत्ययान्ताः समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञका भवन्ति। अर्थात् कृत् प्रत्यय है अन्त में जिनके, तद्धित प्रत्यय है अन्त में जिनके तथा समास हुए शब्द प्रातिपदिक कहाते हैं। रामदेव इत्यादि समास की प्रातिपादिक संज्ञा होती है। यथा—**कृत्** कृ+ण्वुल्=अक=वृद्धि=कारक की प्रातिपदिक संज्ञा, स्वादि कार्य, कारकः। **तद्धित**-शाला+छ=ईय भ संज्ञा=शालीय की प्रातिपदिक संज्ञा, स्वादि कार्य शालीयः। **समास**—राजपुरुषः यह समास हुआ शब्द है। अतः प्रातिपदिक संज्ञा होने से स्वादि लगाकर लोप करके रुत्वविसर्ग के बाद राजपुरुषः पद बना है।

१२० **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** ८।२।६२ क्विन्-प्रत्ययस्य ६।१ पदस्य ६।१ कुः १।१ भवति। क्विन्-प्रत्ययस्य पदस्य कवर्गादेशो भवति। अर्थात् क्विन् प्रत्यय हुआ है जिस धातु को उस पद को कवर्गादेश होता है। यथा युज्+सु=युनज्+सु=युञ्ज्+सु, सुलोप जलोप युञ्—युङ्।

१२१ **कर्तरि शप्** ३।१।६८ कर्तरि ७।१ अर्थे ७।१ धातोः ५।१ शप् १।१ प्रत्ययः १।१ परः १।१ भवति। कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः धातोः शप् प्रत्ययो भवति। कर्त्ता है अर्थ जिसका ऐसे सार्वधातुक के परे रहते धातु से शप् प्रत्यय होता है। भू+लट्=तिप् शप् गुण अवादेश=भवति।

१२२ **कारके** १।४।२३ कारके ७।१ [अधिकारसूत्रम्] अस्याधिकारः (प्रागीश्वरान्निपाताः १।४।५६) इत्यतः प्राक् वर्तते। अधिकारसूत्रम्। तत्प्रयोजको हेतुश्च इति यावत्। अर्थात् क्रिया के होने पर कारक संज्ञा होती है। अर्थात् क्रिया को बनाने वाला कारक कहलाता है। यहाँ इतनी बात समझने की है कि कारक वक्ता के इच्छाधीन होते हैं। जैसे बादल से बिजली चमकती है, बादल चमकता है, बादल

में बिजली चमकती है। यहाँ वक्ता ने अपने गुण से बादल में क्रम से अपादान, कर्ता, अधिकरण तीनों कारक कर दिये हैं।

कारक छः प्रकार के होते हैं।

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ।

१२३ **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** १।४।४९ क्रियायाम् ७।१ कर्तुः ६।१ ईप्सिततमं १।१ कर्मसंज्ञं १।१ भवति। क्रियायां संज्ञायां यत् कर्तुरीप्सिततमं कारकं तत् कर्मसंज्ञं भवति। अर्थात् कर्त्ता का अत्यन्त चाहा हुआ जो कारक है उसकी कर्म संज्ञा होती है। यथा देवदत्तः ग्रामं गच्छति। यहाँ देवदत्त कर्त्ता को जाना क्रिया में गाँव अधिक प्रिय है। अतः उसकी कर्मसंज्ञा हो जायेगी। फिर द्वितीया विभक्ति होगी।

१२४ **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** १।४।३२ क्रियायां ७।१ कर्मणा ३।१ यमभिप्रैति कर्त्ता स १।१ सम्प्रदानं १।१ भवति। दानक्रियायाः कर्मणा यमभिप्रैति तत्कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं स्यात् अर्थात् दानक्रिया के कर्म को जिसके लिए चाहता हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। उपाध्यायाय गां ददाति। यहाँ दान क्रिया के कर्म गौ को उपाध्याय के लिए देता है तो उपाध्याय की सम्प्रदान संज्ञा हुई, इसी में चतुर्थी विभक्ति हुई।

१२५ **कर्मणि द्वितीया** २।३।२ कारके ७।१ अनभिहिते ७।१ कर्मणि ७।१ द्वितीया १।१ भवति। अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

१२६ **कर्तृकर्मणोः कृति** २।३।६५ कृति ७।१ (योगे) अनभिहितयोः ७।१ कर्तृकर्मणोः ७।२ षष्ठी १।१ भवति।

कृत्प्रयोगे अनभिहिते कर्तरि कर्मणि च षष्ठी विभक्तिः भवति। अर्थात् कृत् प्रत्यय का प्रयोग होने पर अनभिहित कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा कृष्णस्य कृतिः। यहाँ कृत् का योग रहने पर कर्त्ता कृष्ण शब्द में षष्ठी हुई। इसी तरह जगतः कर्त्ता कृष्णः। यहाँ कर्त्ता कृत् के योग में जगतः कर्म में षष्ठी है।

१२७ **कुप्वोः ≍क≍पौ च** ८।३।३७ कुप्वोः ७।२ परयोः ७।२ विसर्जनीयस्य ६।१ स्थाने ७।१ ≍क≍पौ १।२ भवतः। कवर्गे पवर्गे च परतः विसर्जनीयस्य क्रमशः जिह्वामूलीयौ उपध्मानीयौ भवतः। अर्थात् कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते विसर्जनीय को जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय होते हैं। तात्पर्य यह है कि क, ख के परे रहते विसर्ग को जिह्वामूलीय होता है। इसी तरह प, फ के परे रहते विसर्ग को उपध्मानीय

ता है। यथा—रामः पचति = राम ᳕ पचति, रामः करोति = राम ᳕ रोति।

१२८ कुहोश्चुः ७।४।६२ अभ्यासस्य ६।१ कुहोः ६।२ चुः १।१ अभ्यासस्य कवर्ग-कारयोः चवर्गादेशो भवति। अर्थात् अभ्यास के कवर्ग तथा हकार को चवर्ग देश होता है। यथा—कृ+णल्=कृ+अ=कृ+कृ+अ अभ्याससंज्ञा अर् र्+कृ+अ) र् लोप (क+कृ+अ) (चवर्गादेश) च+कृ+अ वृद्धि चकार।

१२९ क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१ क्र्यादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ कर्तरि ७।१ र्वधातुके ७।१ श्ना १।१ भवति। क्र्यादिभ्यः पठितेभ्यः धातुभ्यः कर्तरि सार्वधातुके प्रत्ययः परतः भवति। अर्थात् क्र्यादिगण की धातुओं से कर्त्ता अर्थ वाले सार्व-तुक प्रत्यय परे हों तो श्ना प्रत्यय होता है। क्री+ति=क्री श्ना+ति=क्रीनाति णत्वं क्रीणाति।

१३० कृदतिङ् ३।१।९३ धातोः ५।१ अतिङ् १।१ प्रत्ययः १।१ कृत् १।१। स्मिन् धात्वधिकारे धातुभ्यो विहितः तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञको भवति र्थात् धातु से परे आये हुए तिङ् भिन्न प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है। यथा— न्, क्विप् आदि।

१३१ क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६ क्त क्तवतू १।२ प्रत्ययौ निष्ठासंज्ञकौ भवतः। र्थात् क्त क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होती है। पठ+क्त पठितः। पठ+क्तवतु पठितवान्।

१३२ कर्तरि कृत् ३।४।६७ कर्तरि ७।१ अर्थे कृत् प्रत्ययः १।१ भवति। रि कारके कृत् संज्ञकः प्रत्ययः भवति। कर्ता अर्थ में कृत् संज्ञक प्रत्यय होते हैं। —कारकः कर्त्ता आदि।

१३३ कृन्मेजन्तः १।१।३९ मेजन्तः १।१ कृत् १।१ अव्ययं १।१ भवति। यो मान्त एजन्तश्च तदन्तं शब्दरूपम् अव्ययसंज्ञकं भवति। अर्थात् कृत् जो रान्त तथा एजन्त शब्द स्वरूप है उसकी अव्ययसंज्ञा होती है। यथा—मान्त म् स्मारम्, पक्तुम्। एजन्त जीवसे।

१३४ क्त्वातोसुन्कसुनः १।१।३० क्त्वातोसुन्कसुनः १।३ अन्ते येषां अव्ययसंज्ञाः १।३ स्युः। क्त्वा+तोसुन्+कसुन्नन्ताः शब्दा अव्ययसंज्ञका त। अर्थात् क्त्वा तोसुन् कसुन् प्रत्ययान्त जो शब्द हैं उनकी अव्यय संज्ञा है। यथा—क्त्वा=पठित्वा तोसुन्—उद+इ+तोसुन्—उदेतोः। कसुन्— :।

१३५ कुगतिप्रादयः २।२।१८ कुगतिप्रादयः १।३ सुबन्ताः समर्थेन सुबन्तेन सह

समस्यन्ते स च तत्पुरुषः। कु+गति+प्रादयः समर्थन सुबन्तेन सह समस्यन्ते स च तत्पुरुषः। अर्थात् कुगति-संज्ञक एवं प्र आदि अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और उनकी तत्पुरुष संज्ञा हो। यथा—कुब्राह्मणः (बुरा ब्राह्मण) कुपुरुषः (बुरा पुरुष) कु+सु+ब्राह्मण सु समास प्रातिपदिक संज्ञा सु लोप (एकदेशविकृतमनन्यवत्) से पुनः सु रु=र्=विसर्ग कुब्राह्मणः।

१३६ **क्त्रेर्मम्नित्यम्** ४।४।२० क्त्रः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ नित्यं १।१ मप् १।१ प्रत्ययः १।१ क्त्रिप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् नित्यं मप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् क्त्रि प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से मप् प्रत्यय होता है नित्य ही। डु की इत् संज्ञा वाले धातुओं से क्त्रि प्रत्यय होता है। डुपचष् पाके। यहाँ डु की इत् संज्ञा हुई। पच्+क्त्रि—च को क्=पक्त्रि मप्=पक्त्रिमम्।

१३७ **कालाट्ठञ्** ४।३।११ कालात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ भवाद्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति अर्थात् विशेष काल को कहने वाले प्रातिपदिक से 'होना' इत्यादि अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। यथा—मास+ठञ्=इक=भ संज्ञा 'स लोप' सु रु र् विसर्ग+मासिकः।

१३८ **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** ५।४।११ किमेत्तिङव्ययघात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ अद्रव्यप्रकर्षे ७।१ आमु १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। (अद्रव्यप्रकर्षे=गुणक्रियाप्रकर्षे)। प्रकर्षे किम् एदन्तात् तिङ् अव्ययाच्च विहितो यः घः प्रत्ययः तदन्तात् प्रातिपदिकात् आमु प्रत्ययः स्यात्। अर्थात् गुण क्रिया के आधिक्य अर्थ में किम् शब्द एदन्त शब्द तिङन्त क्रिया तथा अव्यय शब्दों से विहित जो घ प्रत्यय है तदन्त प्रातिपदिक से आमु प्रत्यय होता है। किम्+तरप्=किंतर+आमु=किंतर+आम्=किंतराम् इत्यादि। एदन्त—प्राह्णे+तरप्=प्राह्णेतर+आमु—प्राह्णेतर+आम् प्राह्णेतराम्। तिङन्त=पचति+तरप्=पचतितर+आमु पचतितर+आम्=पचतितराम्। अव्यय=प्रातस्+तरप् प्रातस्तर+आमु=प्रातस्तर+आम्=प्रातस्तराम्। प्रातस्तराम् पतत्रिभ्यः प्रबुद्धः प्रणमन् रविम्—भट्टिः ४।१।

१३९ **कु तिहोः** ७।२।१०४ तिहोः ७।२ किमः ६।१ कु १।१ भवति। तादौ हादौ च किमको परतः किमः कु इत्यादेशः स्यात्। अर्थात् तकारादि और हकारादि विभक्ति परे हो तो किम् शब्द को कु आदेश हो जाता है। यथा—किम् तसिल्=किम्+तस्=कुतस्=कुतः।

१४० **किमिदम्भ्यां वो घः** ५।२।४० किमिदम्भ्याम् ५।२ प्रातिपदिकाभ्याम् ५।२ वः (वतुपः) ६।१ घः १।१ [घकारादेशः] किम् इदम् प्रातिपदिकाभ्याम् वतुप् प्रत्ययः

भवति, वतुप् प्रत्यय होता है और वतुप् के व को घ हो जाता है। यथा—किम्+वतुप्—वत्—व को घ=किम्+घत्=घ को इय्=किम् को क आदेश अ लोप=कियत् सु=दीर्घ—(उपधा) कीयात्। कीयात्+सु=कीया+नुम्+त+सु कीयान्त+सु, सु लोप त लोप=कीयान्। इसी तरह इयान्।

१४१ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्वयादिभ्यः ५।३।२ अद्वयादिभ्यः—५।३ किंसर्वनामबहुभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ प्राक्दिशः १।३ प्रत्ययाः १।३ भवन्ति। इतः अग्रे प्राक् दिश् पर्यन्तं किम् सर्वनाम बहुभ्यः द्वयादिभिन्नेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रत्ययाः भविष्यन्ति। अर्थात् यहाँ से ५।३।३७ सूत्र तक जितने प्रत्यय होंगे वे सब द्वि युष्मद्-अस्मद् और भवतु को छोड़ कर किं, सर्वनाम, बहु शब्दों से होंगे। यथा—किम्+तसिल्=तस् किम् को कु आदेश=स् को र् र्=विसर्ग कुतः।

१४२ [अभूततद्भावे] कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य-कर्तरि च्विः ५।४।५० कृ च भू च अस्ति च कृभ्वस्तयः तेषां योगः तस्मिन्, अभूतस्य तद्भावः तस्य भावः तद्भावः अभूततद्भावे ७।१ सम्पद्य-कर्तरि ७।१ कृभ्वस्तियोगे ७।१ च्विः १।१ कृ, भू, अस्ति—धातुभिः योगे अभूततद्भावे सम् पूर्वस्य पद धातोः कर्तरि अर्थे च्वि-प्रत्ययो भवति। अर्थात् कृ, भू, और अस् धातु के पहले न हुए के हो जाने अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है। यथा अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति। जो शुक्ल नहीं है वह शुक्ल हो गया है इस अर्थ में कृ धातु का योग भी है। अतः शुक्ल में च्वि प्रत्यय हो। शुक्ल+च्वि=च्वि का सर्वापहारी लोप शुक्ल=शुक्ली+ई अलोप, शुक्लीकरोति।

१४३ क्यचि च ७।४।३३ क्यचि ७।१ अवर्णस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ ईकारादेशः १।१ च—क्यचि परे अवर्णान्तस्य अङ्गस्य ईकारादेशो भवति। यथा—पुत्र+क्यच्=पुत्र+य ईकारादेशः पुत्रीय धातु संज्ञा लट्=तिप्, शप् अ पररूप पुत्रीयति।

१४४ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ३।१।११ कर्तुः ५।१ क्यङ् १।१ प्रत्ययः १।१ स लोपः १।१ च (अ०) कर्तुः सुबन्तात् आचारे अर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति। सकारान्त शब्दस्य सकारो लुप्यते। अर्थात् सुबन्त कर्ता से आचार अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है। तथा सकारान्त शब्द के सकार का लोप भी। यथा—श्येन इव आचरति। [कौआ] बाज के समान आचरण करता है। श्येन+क्यङ्=श्येन+य दीर्घ=श्येनाय+लट्=श्येनाय+ते=श्येनाय+शप्+ते=श्येनाय अ+ते पररूप श्येनायते, पयायते। पयस्+क्यङ्=स् लोप पय+य दीर्घ पया×य=पयाय+लट्+पयाय+ते=पयाय+शप्=पयाय+अ+ते पररूप पयायते।

१४५ क्ङिति च १।१।५ क्ङिति ७।१ [निमित्ते] इकः ६।१ [स्थाने] गुण-वृद्धी १।२ न भवतः। गित् कित् ङित् निमित्तके इकः स्थाने गुणवृद्धी न भवतः। अर्थात् कित् गित् और ङित् को मान कर इक् के स्थान में होने वाले गुण वृद्धि नहीं होते हैं। यथा—चि+क्त, गुण प्राप्त है, कित् प्रत्यय परे होने से नहीं हुआ है। चितः, गित्-जिष्णु-जि+ग्स्नु, गित् प्रत्यय परे होने से गुण नहीं हुआ। चिनोति में चि को गुण नु ङित् के कारण नहीं होता है।

ख

१४६ खरि च ८।४।५५ खरि ७।१ झलां ६।३ चर्—१।१ खरि परतः झलां चर् आदेशो भवति। अर्थात् खर् परे रहते झलों को चर् आदेश होता है। यथा=तत्+शिवः=तद्+शिवः=तज्+शिवः=तच्+शिवः=तच्छिवः।

१४७ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५ खरवसानयोः ७।२ रः ६।१ विसर्जनीयः १।१ खरि अवसाने च परतः रेफान्तस्य पदस्य विसर्जनीयः आदेशो भवति। अर्थात् खर् और अवसान परे हो तो रेफान्त पद को विसर्जनीय आदेश हो। यथा—हरि+सु+शेते=हरि+स्+शेते=हरि+रु+शेते=हरि+र् =शेते = हरिः शेते।

ग

१४८ गतिश्च १।४।६० क्रियायोगे ७।१ प्रादयः १।३ गतिः १।१, प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञकाश्च भवन्ति। अर्थात् क्रिया के योग में प्रादि की गति संज्ञा भी होती है। यथा—प्रभवति।

१४९ गम-हन-जन-खन-घसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८ अचि किति ७।१ ङिति ७।१ अनङि ७।१ गम-हन-जन-खन-घसाम् ६।३ अङ्गानाम् ६।३ उपधायाः ६।१ लोपः १।१ अजादौ किति ङिति अनङि परतः एषाम् उपधायाः लोपो भवति। अङ् भिन्न अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो गम् हन् जन् खन् घस् इनकी उपधा का लोप होता है। यथा—जगम्+अतुः=जग्मतुः।

१५० ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६ किति ७।१ ङिति ७।१ ग्रहि-भृज्जतीनां ६।३ धातूनां ६।३ सम्प्रसारणं १।१ भवति ङिति किति च परतः ग्रह, ज्या, वय, व्यध, वश् व्यच् व्रश्च प्रच्छ, भ्रस्ज एषां धातूनां सम्प्रसारणं भवति अर्थात् कित् और ङित् प्रत्यय परे हो तो उक्त धातुओं को सम्प्रसारण होता है। ग्रह+क्त=ग्रह+त=सम्प्रसारण र को ऋ गृह+त. बीच में इ, ईत्व गृहीतः।

१५१ ***गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** ७।४।२९ असार्वधातुके ७।१ यकि लिङि ७।१ अर्तिसंयोगाद्योः ६।२ ऋतः ६।१ गुणः १।१ यकारादौ लिङि च असार्वधातुके परतः, अर्तेः संयोगादेः ऋदन्तस्य च गुणो भवति। अर्थात् यक् प्रत्यय और आशीर्लिङ् असार्वधातुक परे हो तो ऋ तथा संयोग आदि में है जिसके ऐसे ऋकारान्त धातु को गुण होता है। यथा—ऋ+कर्मणि लट्=ऋ+ते=ऋ+यक्+ते=गुण+रपर =अर्यते। आशीर्लिङ् में अर्थात्।

२५२ **ग्रामाद्यखञौ** ४।२।९४ ग्रामाद् ५।१ यखञौ १।२ प्रत्ययौ १।२ भवतः। ग्रामशब्दात् यखञ्प्रत्ययौ भवतः। ग्राम शब्द से य और खञ् प्रत्यय होते हैं। यथा—ग्राम+य भसंज्ञा अ लोप ग्राम्+य=ग्राम्य। ग्राम+खञ्—ग्राम+ईन भसंज्ञा=अ लोप ग्रामीण=ग्रामीणः।

१५३ ***गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ** १।४।५२ गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम् ६।३ अणिकर्ता १।१ णौ ७।१ स १।१ कर्म १।१ भवति। गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्यवसानार्थानां शब्दकर्मकाणाम् अकर्मकाणाञ्च अण्यन्तावस्थायां यः कर्ता स णौ कमसंज्ञको भवति। अर्थात्—

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक [ज्ञानार्थक] प्रत्यवसानार्थक [भोजनार्थक] शब्दकर्मक और अकर्मक धातुओं का अण्यन्त अवस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञक होता है। यथा—देवदत्तः गच्छति, गमयति देवदत्तम्। यहाँ अण्यन्तावस्था का प्रयोग है। देवदत्तः गच्छति यहाँ कर्त्ता देवदत्त है। जब इसका ण्यन्त बनायेंगे तो गमयति देवदत्तम् बनेगा। क्योंकि वही कर्ता देवदत्त कर्म हो गया है। अतः उसी की कर्म संज्ञा हो जायेगी। बुद्ध्यर्थकः—यथा—बुद्ध्यते माणवकः धर्मम् [ज्ञानार्थ—यथा भुङ्क्ते माणवकः रोटिकाम्। भोजयति माणवकं रोटिकाम् इत्यादि]

घ

१५४ **घेर्ङिति** ७।३।१११ ङिति ७।१ सुपि ७।१ घेः ६।१ गुणः भवति। ङिति

---

* संयोगः आदिः यस्य सः संयोगादिः, अर्तिश्च संयोगादिश्च अर्तिसंयोगादी तयोः। (बहुव्रीहि)

* गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च इति गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि (द्वन्द्व) तानि अर्थाः येषां ते तथोक्ताः। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः, अविद्यमानं कर्म येषां ते तथोक्ताः (द्वन्द्वगर्भ बहुव्रीहिः ततश्च द्वन्द्वः) अणौ कर्ता अणिकर्ता (तत्पुरुषः)

सुपि प्रत्यये परतः घिसंज्ञकस्य गुणो भवति। ङित् सुप् प्रत्यय परे होते घिसंज्ञक अङ्ग को गुण होता है।

हरि+ङे – घि संज्ञा-गुण-अयादेश हरये।

१५५ **घुमास्थागापाजहातिसां* हलि** ६।४।६६ हलादौ ७।१ क्ङिति ७।१ घुमास्थागापाजहातिसाम् ६।३ ईद् १।१ भवति। हलादौ क्ङिति आर्धधातुके परतः घु-संज्ञकस्य मा, स्था, गा, पा, हा, सा इत्येषां च ईकारादेशो भवति। अर्थात् हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे हो तो घुसंज्ञक मा, स्था, गा, पा, हा इनको ईकारादेश होता है। दा यक्+ते। ईकारादेश—दी+य+ते =दीयते।

१५६ **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** ६।४।११९ क्ङिति ७।१ घ्वसोः ६।२ अभ्यास-लोपः १।१ एत् १।१ हौ ७।१ लोपः १।१ हौ क्ङिति परतो घुसंज्ञकानाम् अङ्गानाम् अस्तेश्च एकारादेशो भवति अभ्यासस्य लोपः च अर्थात् हि कित् ङित् परे रहते घुसंज्ञक अङ्ग को एवं अस् को एकारादेश होता है तथा अभ्यास का लोप होता है। द दा हि = अभ्यास लोप और आ को ए दे+हि = देहि।

ङ

१५७ **ङेर्यः** ७।१।१३ अदन्तात् ५।१ अङ्गात् ५।१ ङेः ६।१ यः १।१ भवति। अकारान्तात् अङ्गात् परस्य ङे इत्यस्य स्थाने य आदेशो भवति। अर्थात् अकारान्त अङ्ग से ङे के स्थान में य आदेश होता है। राम+ङे=राम+य=दीर्घ—रामाय।

१५८ **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः*** ७।३।११६ नदी आप् नीभ्यः ५।३ ङेः ६।१ आम् १।१ भवति। नद्यन्तात् आबन्तात् नी इत्यस्माच्च परस्य ङेः आम् आदेशो भवति। अर्थात् नदी संज्ञक आबन्त तथा नी से उत्तर जो ङि है उसको आम् आदेश होता है। मति+ङि= ङि को आम्=मत्याम्।

१५९—**ङसिङसोश्च** ६।१।११० एङः ६।१ ङसिङसोः ७।४ अति ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकः १।१ पूर्वरूपम् १।१ एङ उत्तरस्य ङसिङसोरकारस्य पूर्वरूपमेकादेशो भवति। अर्थात् एङ् से उत्तर ङसि ङस् को अकार परे हो तो मिलकर पूर्वरूप एकादेश होता है। अग्नि+ङसि—गुण—पूर्वरूप स को रु र् को विसर्ग अग्नेः।

१६०. **ङिति ह्रस्वश्च** १।४।६ ङिति ७।१ इयङुवङ्स्थानौ* १।२ स्त्र्याख्यौ

टिप्पणी— * घुश्च माश्च स्थाश्च गाश्च जहातिश्च साश्च इति ते तथोक्ताः तेषाम्।
* नदी च आप् च नीश्च इति नद्याम्नियः तेभ्यः नद्याम्निभ्यः।
*इयङ् च उवङ् च इति इयङुवङौ, इयङुवङौ स्थाने ययोः तौ इयङुवङ् स्थानौ। [द्वन्द्वः—ततो बहुव्रीहिः]।

१।२ यू इति लुप्तविभक्तिकम्पदं ह्रस्वौ च (अव्य०) १।२ नदीसंज्ञौ १।२ वा (अव्य) भवतः। ङिति प्रत्यये परतः स्त्रीलिङ्गवाचकं ह्रस्वम् इकारान्तम् उकारान्तं शब्दस्वरूपं स्त्रीवाचकौ इयङुवङ्स्थानौ ईकारान्तोकारान्तौ च शब्दौ विकल्पेन नदीसंज्ञकौ भवतः। अर्थात् ङित् प्रत्यय परे रहते स्त्रीलिङ्ग को कहने वाले ह्रस्व ईकारान्त उकारान्त जो शब्द तथा इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की विकल्प से नदी संज्ञा होती है। यथा – कृति + ङे नदी संज्ञा – कृति आट् + ए = वृद्धि, यण्। कृत्यै। नदीसंज्ञाभावे कृतये।

१६१. ***ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** ७।१।१५ सर्वनाम्नः ५।१ अदन्तात् ५।१ ङसिङ्योः ६।१ स्मात्स्मिनौ १।२ भवतः। अकारान्तात् सर्वनाम्नः परयोः ङसिङ्योः क्रमात् स्मात्स्मिनौ आदेशौ भवतः। अर्थात् अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि को क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं। यथा—सर्व + ङसि सर्वस्मात्। सर्व + ङि – सर्वस्मिन्।

१६२. **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्*** ८।३।३२ ह्रस्वात् ५।१ ङमः ५।१ पदात् ५।१ ङमुट् १।१ नित्यम् १।१ भवति। ह्रस्वात् परो योऽम् तदन्तात् पदात् परस्य अचो नित्यं ङमुडागमो भवति। अर्थात् ह्रस्व से परे जो ङम् (ङ् ण् न्) तदन्त जो पद उससे परे अच् को नित्य ही ङमुट् (ङम्, णुट्, नुट्) आगम होता है। यथा— प्रत्यङ् + आत्मा – प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः, सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः।

च

१६३ **चुटू**—१।३।७ उपदेशे ७।१ प्रत्ययस्य आद्यौ १।२ चुटू—१।२ इतौ १।२ [स्तः] प्रत्ययादौ चवर्ग-टवर्गौ इतौ भवतः अर्थात् प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है। यथा—राम + जस् = अस् रामास् = रामाः।

१६४ **चोः कुः** ८।२।३० झलि ७।१ च (अ०) चोः ६।१ स्थाने ७।१ कु १।१ भवति। झलि परतः पदान्ते च चवर्गस्य स्थाने कवर्गादेशो भवति अर्थात् झल् परे हो तो पदान्त चवर्ग के स्थान में कवर्ग आदेश होता है यथा —सुयुज् + सु सुयुक्, सुयुग्।

१६५ **चार्थे द्वन्द्वः** २।२।२९ चार्थे ७।१ अनेकं १।१ सुबन्तं १।१ समस्यते [स च] द्वन्द्वः १।१ अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः। अर्थात् च के

टिप्पणी—* ङसिश्च ङिश्च तौ ङसिङ्यौ तयोः ङसिङ्योः।
* यहाँ नित्य का अर्थ विकल्प से है।

अर्थ में अनेक सुबन्तों के समास की द्वन्द्व संज्ञा होती है। यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ।

१६६ **चादयोऽसत्त्वे** १।४।५७ असत्त्वे ७।१ पदान्ते ७।१ चादयः १।३ निपाताः १।३ भवन्ति। चादयो निपातसंज्ञका भवन्ति यदि सत्त्वे अर्थे न स्युः। अद्रव्यवाची चादि गण में पठित शब्दों की निपात संज्ञा होती है। यथा—च, वा, एव, ह।

१६७ **चजोः कु घिण्ण्यतोः** ७।३।५२ घिण्ण्यतोः ६।२ चजोः ६।२ कु १।१ भवति। घिति ण्यति च परतः चस्य जस्य च कुत्वं भवति। अर्थात् घित् तथा ण्यत् परे रहते चकार तथा जकार के स्थान में कवर्गादेश होता है। यथा—पच्+ण्यत् =पच्+य उपधा वृद्धि च् को क्=पाक्य=पाक्यम्।

१६८ **चरति** ४।४।८ प्रातिपदिकात् ५।१ तेन ३।१ चरति (क्रिया) [इत्यर्थे] ठक् १।१। तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् चरति इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अर्थात् तृतीयान्त प्रातिपदिक से चरति इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। शकटेन चरति= शकट+ठक्=इक् आदिवृद्धिः शाकटिकः।

छ

१६९ **छन्दस्युभयथा** ३।४।११७ छन्दसि ७।१ उभयथा—(अ०) वेदे उभयथा सार्वधातुकसंज्ञा आर्धधातुकसंज्ञापि भवति। अर्थात् वेद में जिसकी सार्वधातुक संज्ञा होती है उसकी आर्द्धधातुक संज्ञा भी हो जाती है। यथा—उपस्थेयां शरणं बृहन्तम्। सोममिन्द्राय सुन्विरे।

१७० **छे च** ६।१।७३ संहितायाम् ७।१ छे ७।१ ह्रस्वस्य ६।१ तुगागमः १।१ (भवति)। छकारे परे ह्रस्वस्य तुगागमो भवति। अर्थात् छ परे हो तो ह्रस्व को तुक् का आगम होता है। यथा—शिव+छाया=शिव+तुक् छाया=शिव+त्+ छाया=शिव च् छाया—शिवच्छाया।

ज

१७१ **जसि च** ७।३।१०९ जसि ७।१ ह्रस्वान्तस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ गुणः १।१ भवति। जसि ह्रस्वान्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति। अर्थात् जस् हो तो ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है। हरि+अस्=हरे+अस् = हरयस्=हरयरु=हरयर्= हरयः।

१७२ **जश्शसोः शिः** ७।१।२० नपुंसकात् ५।१ अङ्गात् ५।१ जस्शसोः ६।२ स्थाने ७।१ शिः १।१ भवति। नपुंसकात् अङ्गात् परयोः जस्शसोः स्थाने शि इति

आदेशो भवति । अर्थात् नपुंसक लिङ्ग वाले अङ्ग से परे जस् और शस् के स्थान शि आदेश होता है । ज्ञान + जस् = शि = सर्वनामस्थानसंज्ञा = नुम् = दीर्घ ज्ञानानि

१७३ **जसः शी** ७।१।१७ सर्वनाम्नः ५।१ अङ्गात् ५।१ जसः ६।१ स्था ७।१ शी १।१ भवति । सर्वनाम्नः अङ्गात् परस्य जसः स्थाने शी स्यात् । अर्थात् सर्व नाम संज्ञक अङ्ग से परे जस् को शी आदेश होता है । सर्व + जस् सर्वनाम संज्ञा = सर्व + शी = सर्व + ई = गुण सर्वे ।

१७४ **जुहोत्यादिभ्यः श्लु** २।४।७५ जुहोत्यादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ शप् ६।१ श्लु १।१ भवति । जुहोत्यादि-गण-पठितेभ्यः धातुभ्यः शपः श्लुः स्यात् । अर्थात् जुहोत्यादि गण में पठित धातुओं से परे शप् को श्लु होता है । हु + शप् + ति = [शप् को श्लु (लोप)] हु + ति धातु को द्वित्व = हु + हु + ति = अभ्याससंज्ञा = चवर्गादेश झु + हु + ति = जुहोति ।

झ

१७५ **ज्ञाजनोर्जा** ७।३।७९ शिति ७।१ प्रत्यये ७।१ ज्ञाजनोः ६।२ स्था ७।१ जादेशो (भवति) । शिति प्रत्यये परतः ज्ञा जनी एतयोः धात्वोः स्थाने जादेश भवति । अर्थात् शित् प्रत्यय परे हो तो क्र्यादि गण के ज्ञा तथा दिवादि गण के जनी धातु को जा आदेश होता है । यथा—ज्ञा + ति = ज्ञा + श्ना + ति = जानाति जन् + यते जायते ।

१७६ **झलां जशोऽन्ते** ८।२।३९ पदान्ते ७।१ झलां ६।३ जशः १।३ भवन्ति पदान्ते झलां जशाः आदेशाः भवन्ति । अर्थात् पदान्त में झलों को जश् आदेश होता है

१७७ **झोऽन्तः** ६।१।३ प्रत्ययादेः ६।१ झः ६।१ अन्तः १।१ भवति । प्रत्ययावयवस्य आदेः झस्य अन्त आदेशो भवति । अर्थात् प्रत्यय के अवयव आदि झ को अन्त आदेश होता है । भू + झि, झ को अन्त आदेश सार्वधातुक संज्ञा शप् गुण अवादेश भव अन्ति = पररूप भवन्ति ।

१७८ **झयो होऽन्यतरस्याम्** ८।४।६२ अन्यतरस्याम् ७।१ झयः ५।१ हः ६।१ पूर्वसवर्णः १।१ अन्यतरस्याम् झयः हकारस्य पूर्वसवर्णादेशो भवति । अर्थात् विकल्प से झय् से परे हकार को पूर्वसवर्ण आदेश होता है । वाक् + हसति = ह को घ = क को ग् वाग्घसति ।

१७९ **झलां जश्झशि** ८।४।५३ झशि ७।१ झलां ६।३ जश् १।१ भवति झशि परतः झलां स्थाने जश् आदेशो भवति । अर्थात् झश् परे रहते झलों के स्थान में जश् होता है । यथा—सुध्युपास्यः = सुधी + सुध्ध्य् + उपास्यः [ध् को द् = सुद्ध्युपास्यः ।

१८० **झषस्तथोर्धोऽधः** ८।२।४० अध: ५।१ झष: ५।१ तयो: ६।२ स्थाने ७।१ ध: १।१ भवति। धा धातुं वर्जयित्वा झषः परयोः तकारथकारयोः स्थाने धकार आदेशो भवति। अर्थात् धा धातु को छोड़कर झष् से परे त थ को ध होता है। यथा—लभ्+ता=लभ्+धा=लब्+धा=लब्धा।

१८१ **झरो झरि सवर्णे** ८।४।६५ हल: ५।१ सवर्णे ७।१ झरि ७।१ झर: ६।१ लोप: १।१ भवति। सवर्णे झलि हल: परस्य झर: लोपो वा भवति। अर्थात् हल् से सवर्ण झर् परे हो तो विकल्प से झर् का लोप होता है। रुन्ध्+ध=रुन्धः रुन्द्ध।

१८२ **झेर्जुस्** ३।४।१०८ लिट: ६।१ झे: ६।१ जुस् १।१ लिडादेशस्य झे: स्थाने जुस् भवति अर्थात् लिङ् के स्थान में हुए झि को जुस् होता है। यथा – भू+ यास्+झि =भू+यास्+जुस्=भू+यास्+उस्=भूयासुस्—रुत्व र् विसर्ग= भूयासु:

ट

१८३ **टाङसिङसामिनात्स्या:** ७।१।१२ अत: ५।१ अङ्गात् ५।१ टाङसिङसाम् ६।३ इनात्स्या: १।३ भवन्ति। अदन्तात् परेषां टा ङसि ङसां स्थाने क्रमात् इन् आत् स्य आदेशा: भवन्ति। अर्थात् अदन्त अङ्ग से परे टा को इन् ङसि को आत् और ङस् को स्य आदेश होते हैं। राम+टा=इन रामेन न को ण=रामेण। राम+ ङसि =राम+आत् दीर्घ=रामात्।

राम+ङस् =स्य=रामस्य।

१८४ **ट्वितोऽथुच्** ३।३।८९ ट्वित: ५।१ धातो: ५।१ अथुच् १।१ भवति। ट्वितो धातो: अथुच् प्रत्ययो भवति। अर्थात् टु इत् गया है जिसमें ऐसे धातु को अथुच् प्रत्यय होता है। टुवेपृ्=कम्पने, वेप्+अथुच्=वेपथुच्।

१८५ **टिड्ढाणञ्द्वयसज् दघ्नञ् मात्रच् तयप् ठक्ठञ्कञ् क्वरप:** ४।१।१५ टित्·· क्वरप: ५।१ प्रातिपादिकात् ५।१ स्त्रियां ७।१ ङीप् १।१ भवति। टित् ढ, अण्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप् इत्यन्तेभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: स्त्रीत्वविवक्षायां ङीप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् ऊपर कहे गये १२ प्रत्ययों में कोई भी एक अन्त में जिस प्रातिपादिक के होगा उससे ङीप् होता है। स्त्रीलिङ्ग कहना हो तो। यथा—टित्—कुरुचरी, ढ—सौपर्णेयी, अण्-कुम्भकारी, अञ्—औत्सी,

---

टिप्पणी— टिच्च ढश्च अण् च अञ् च द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च ठक् च ठञ् च कञ् च क्वरप् च तेषां समाहार: तस्मात्।

द्वयसच् — उरुद्वयसी, दघ्नच् — उरुदघ्नी, मात्रच् — उरुमात्री, तयप् — पञ्चतयी ठक् आक्षिकी, ठञ् — लावणिकी, कञ् — यादृशी, क्वरप् — इत्वरी।

१८६ टे: ६।४।१५५ इष्ठेमेयस्सु ७।३ भस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ टे: ६।१ लोप: १।१ इष्ठेमेयस्सु भ-संज्ञकस्य अङ्गस्य टेर्लोपो भवति। अर्थात् इष्ठन् इमनिच् इयसुन् परे रहते भसंज्ञक अङ्ग की टि का लोप होता है। यथा — पटु + इष्ठ, उ की इत्संज्ञा, लोप, पटिष्ठ:।

१८७ **टित आत्मनेपदानां टेरे** ३।४।७९ टितो लस्य आत्मनेपदानां टे: एत्वं भवति। अर्थात् टित् लकारों के त आताम् झ, थास् आथाम् ध्वम्, इड् वहि महिङ् इत्यादि प्रत्ययों की टि ए हो जाती है। यथा — ते आते अन्ते इत्यादि।

ठ

१८८ **ठस्येक:** — ७।३।५० अङ्गस्य ६।१ (अङ्गसम्बन्धिन:) प्रत्ययस्य ६।१ ठस्य ६।१ इक: १।१ आदेश: भवति। ठकारस्य इक आदेशो भवति। अर्थात् जिसके कारण अङ्ग संज्ञा हुई है ऐसे ठ को इक आदेश होता है। लवण + ठञ् = इक आदिवृद्धि लावणिक, प्रतिपादिक संज्ञा, स्वादिकार्य लावणिक:।

ड

१८९ **ड्वित: क्त्रि:** ३।३।८८ ड्वित: ५।१ धातो: ५।१ क्त्रि १।१ प्रत्यय: १।१ भवति। ड्वितो धातो: क्त्रि: प्रत्ययो भवति। अर्थात् डु इत् गया है जिन धातुओं का उनसे क्त्रि प्रत्यय होता है। डुकृञ् + क्त्रि = कृ + त्रि + मप् = कृत्रिमम्।

१९० **डति च** १।१।२५ डत्यन्ता — ११ संख्या १।१ षट् १।३ भवति। डति-प्रत्ययान्ता संख्या षट् संज्ञिका भवति। अर्थात् डति प्रत्ययान्त संख्या संज्ञक शब्द की षट् संज्ञा होती है। यथा — कति तिष्ठन्ति — षट् संज्ञा होने से जस् का लुक् हुआ।

ढ

१९१ **ढो ढे लोप:** *८।३।१३ ढे ७।१ ढ: ६।१ लोप: १।१ भवति। ढकारे परत: ढकारस्य लोपो भवति। अर्थात् ढकार परे रहते ढकार का लोप होता है। यथा — तृढ् + ढ: तृढ:।

१९२ **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण:** ६।३।१११ ढ्रलोपे ७।१ पूर्वस्य ६।१ अण: ६।१ दीर्घ: १।१ ढ्रलोपे सति पूर्वस्य अणो दीर्घो भवति। अर्थात् ढ एवं रेफ का लोप हुआ है जिसमें उसके पूर्व अण् को दीर्घ होता है। यथा — लिढ् + क्त, त को ध = ष्टुत्व = लिढ् + ढ = ढ् लोप दीर्घ: लीढ:।

टिप्पणी — * ढ् च रश्च तयोर्लोप: तस्मिन् ढ्रलोपे।
(द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहि:)

१९३ ण्वुल्-तृचौ ३।१।१३३ धातोः ५।१ ण्वुल्-तृचौ १।२ प्रत्ययौ १।२ भवतः
तु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं। कृ+ण्वुल्=वु=अक=वृद्धि=कारकः।

१९४ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्* १।१।९ तुल्यास्यप्रयत्नं १।१ (वर्णजातं)
र्णं १।१ भवति। तुल्य आस्ये प्रयत्नो येषां ते वर्णाः परस्परं सवर्णसंज्ञकाः
न्ति अर्थात् मुख में होने वाला स्थान एवं प्रयत्न जिनके तुल्य हों उनकी परस्पर
र्ण संज्ञा होती है। दण्ड+अग्रम्=दण्डाग्रम्। (दण्ड में ड के अ और अग्र के अ
सवर्ण संज्ञा हो जाने से दीर्घ हुआ।

१९५ तस्य लोपः १।३।९ इतः ६।१ लोपः १।१ भवति। इत्संज्ञकस्य लोपो
ते। अर्थात् जिसकी इत्संज्ञा होती है उसका लोप होता है। यथा—राम+औट्
इत्संज्ञा हुई इस सूत्र से लोप हुआ। वृद्धिः= रामौ।

१९६ तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३ तस्मात् ५।१ (पूर्वसवर्णदीर्घात्)
७।१ शसः ६।१ नः १।१ भवति। तस्मात् पूर्वसवर्णदीर्घात् परस्य शसः सकारस्य
रादेशो भवति। पुंलिङ्ग में। यथा—राम+अस्=दीर्घ—स् को न्=रामान्।

१९७ *त्यदादीनामः ७।२।१०२ विभक्तौ ६।१ त्यदादीनाम् ६।३ अः १।१
। एषाम् अकारोऽन्तादेशो भवति। अर्थात् त्यद्, तद्, एतद्, इत्यादि को अकार
देश होता है। यथा—तद्+सु त्+अ+सु=त+सु=स+सु=स+रु
र्=सः।

१९८ तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६ सौ ७।१ त्यदादीनाम् अनन्त्योः
तदोः ६।२ सः १।१ सौ परे। अन्त्यभिन्नयोः त्यदादीनां तकारदकारयोः स्थाने
ादेशो भवति। अर्थात् सु विभक्ति परे हो तो अन्त में न रहने वाले त्यदादियों
ार और दकार को सकार होता है। यथा—त्य+सु=स्यः

१९९ *तुदादिभ्यः शः ३।१।७७ कर्तरि ७।१ सार्वधातुके ७।१ तुदादिभ्यः
धातुभ्यः ५।३ शः १।१ भवति। तुदादिगणपठितेभ्यः धातुभ्यः कर्त्रर्थे सार्वधातुके

ी— *तुल्यः आस्ये प्रयत्नः यस्य येन तत् तुल्यास्यप्रयत्नम्।
*त्यद् आदिः येषाम् ते त्यदादयः तेषाम्—
*प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये प्रकृतेः प्रत्ययः विकरणः कथ्यते।

शः विकरण-प्रत्ययो भवति । अर्थात् कर्ता अर्थ वाला सार्वधातुक परे हो तो तुदादि धातुओं से श प्रत्यय होता है । तुद्+क्विप्=तुद्+श+तिप्=तुदति ।

२०० **तथायुक्तं चानीप्सितम्** १।४।५० अनीप्सितम् १।१ तथायुक्तं १।१ कर्म भवति ।

कर्तुः क्रियया अनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं भवति । अर्थात् कर्ता का चाहा हुआ कारक क्रिया के साथ युक्त होकर जिस प्रकार कर्मसंज्ञक होता है उसी प्रकार कर्ता का न चाहा हुआ कारक क्रिया के साथ युक्त होकर कर्मसंज्ञक होता है । यथा—ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गांव जाता हुआ तिनके को छूता है ।) यहां तृण की कर्मसंज्ञा इसी सूत्र से होती है ।

२०१ **तत्पुरुषः** २।१।२२ [अधिकारोऽयं प्राग् बहुव्रीहेः । इतोऽग्रे यः समासः सः तत्पुरुषसंज्ञको भवति प्राग् बहुव्रीहेः अर्थात् यहाँ से आगे जो समास कहेंगे उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है । बहुव्रीहि से पहले यथा राजपुरुषम् आनय ।

२०२ **तोर्लि** ८।४।६० लि ७।१ तोः ६।१ परसवर्णः आदेशः भवति । लकारे परे तवर्गस्य परसवर्णादेशो भवति । यथा—तत्+लयः=तल्लयः ।

२०३ तिप्तस्झि सिप्थस्थ मिब्वस्मस् तातांझ थासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ३।४।७८ लस्य ६।१ (स्थाने) तिबादयः एते अष्टादश लादेशाः (लस्य स्थाने आदेशाः) स्युः । अर्थात् तिप् तस् झि—सिप् थस् थ—मिप् वस् मस्—त आताम् झ—थास आथाम् ध्वम्—इड् वहि महिङ्—यह १८ लकार के स्थान में आदेश होते हैं । पठ्+तिप्= पठति । पठतः । पठन्ति । इत्यादि

२०४ **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** १।४।१०१—तिङः ६।१ त्रीणि त्रीणि १।३ प्रथममध्यमोत्तमा भवन्ति । तिङः (अष्टादश प्रत्ययाः)त्रीणि त्रीणि यथाक्रमं प्रथम-मध्यम-उत्तमसंज्ञका भवन्ति । अर्थात् तिङ् (१८ प्रत्ययों) के तीन-तीन त्रिक की क्रमशः प्रथम मध्यम उत्तम संज्ञा होती है । यथा—तिप् तस् झि । त आताम् झ प्रथम पुरुष । सिप् थस् थ । थास् आथाम् ध्वम् मध्यम पु० हैं ।

२०५ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२ तानि (प्रथममध्यमोत्तमानि) १।३ एकशः (अव्यय) एकवचन द्विवचन बहुवचनानि १।३ भवन्ति । तानि तिङस्त्रीणि त्रीणि क्रमेण एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञकानि भवन्ति अर्थात् उन तिङों के तीन २ त्रिक की एक २ करके क्रम से एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञा होती है ।

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तिप्	तस्	झि
सिप्	थस्	थ
मिप्	वस्	मस्
त	आताम्	झ
थास्	आथाम्	ध्वम्
इट्	वहि	महिङ्

एतेन सूच्यते उपर्यधः क्रमेण पदसिद्धिः कार्या नतु प्रचलितक्रमेण पदोच्चारणमपि । तथैवेति ।

२०६ ***तङानावात्मनेपदम्** १।४।१०० तङानौ १।२ आत्मनेपदं १।१ भवतः । तङानौ आत्मनेपदसंज्ञकौ भवतः । अर्थात् तङ् [त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम् इट्, वहि, महिङ्] आन—[शानच् कानच् चानश्] की आत्मनेपद संज्ञा होती है । यथा—एधते ।

२०७ **तिङ् शित् सार्वधातुकम्** ३।४।११३ तिङ् शित् १।१ सार्वधातुकं १।१ भवति । धातोर्विहिताः तिङ् शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुक-संज्ञका भवन्ति । अर्थात् धातु से विधान किये गये तिङ् शित् की सार्वधातुक संज्ञा होती है । तिङ्—में तिप् तस् झि इत्यादि त आताम् झ इत्यादि सभी प्रत्यय हैं । शित् में शप् श्यन् श शतृ शानच् श्ना चानश् खश् आदि हैं ।

२०८ ***तासस्त्योर्लोपः** ७।४।५० सि ७।१ तासस्त्योः ६।२ लोपः १।१ भवति । सकारादौ प्रत्यये परतः तासेः अस्तेश्च सकारस्य लोपो भवति । अर्थात सकारादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस् धातु के सकार का लोप होता है । यथा—कर्तास् +सि सलोप—कर्तासि । अस्+सि=असि ।

२०९ **तनादिकृञ्भ्यः उः** ३।१।७९ तनादिभ्यः कृञ्भ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ कर्तरि ७।१ सार्वधातुके ७।१ उः १।१ प्रत्ययः । तनादिभ्यो धातुभ्यः कृञश्च कर्तरि अर्थे सार्वधातुके उः प्रत्ययो भवति । तनादि गण की धातुओं से, कृञ् धातु से कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते उ प्रत्यय होता है । यथा—तन+ति तन+उ+ति=तनोति । कृ+उ+ति=करु+ति=करोति ।

२१०. **तस्थस्थमिपां तान्तंतामः** ३।४।१०१ ङितः ६।१ तस्थस्थमिपां ६।३ तांतंत+अमः १।३ ङित्लकारसम्बन्धिनां तस् थस् थ मिप् इत्येतेषां स्थाने यथा

---

* तङ् च आनश्च तौ तङानौ ।
* तास् च अस्तिश्च इति तासस्ती तयोः तासस्त्योः ।

संख्यं तां तं त अम् एते आदेशा भवन्ति । अर्थात् ङित् लकार [लङ्, लिङ् लुङ् लृङ्] सम्बन्धी जो तस्, थस्, थ, मिप् प्रत्यय हैं उनको क्रम से तां, तं, त, अम् आदेश होते हैं। ये सूत्र प्रत्यय वनाता है।

२११ **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्**—५।२।३६ तद् इति प्रथमान्तेभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ तारकादिभ्यः ५।३ अस्य ६।१ संजातम् १।१ इति [अर्थे] इतच् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। तद् इति प्रथमान्तेभ्यः अस्य संजातम् अस्मिन् अर्थे प्रातिपदिकेभ्यः तारकादिभ्यः इतच् प्रत्ययो भवति। अर्थात् [अस्य संजातम्] इस अर्थ में तारकादि गण पठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से इतच् प्रत्यय होता है। यथा—तारकाः संजाताः अस्य=इस विग्रह में तारक+इतच्=तारकित, प्रातिपदिक संज्ञा सु=अम् तारकितम्।

२१२ **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**—५।२।९४ तद् इति प्रथमान्तात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ अस्य ६।१ अस्ति १।१ अस्मिन्निति ७।१ इत्यर्थे मतुप् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। प्रथमान्तात् प्रातिपदिकात् अस्य अस्ति अस्मिन्निति अर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् प्रथमान्त प्रातिपदिक से 'इसका यह है या इसमें यह है' इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है। यथा—गावः अस्य अस्मिन् वा सन्ति इस अर्थ में प्रथमान्त गो शब्द से मतुप् प्रत्यय गो+मतुप् प्रातिपदिक संज्ञा सुपो लुक्=गोमत्+सु= दीर्घ गो मातस सु गोमा + नुम् त् = गोमान्त् + सु, सु लोप संयोगान्त का लोप=गोमान्।

२१३ **तद्धिताः**—४।१।७६ [अधिकारोऽयम् आपञ्चमाध्यायान्तम्] इतोऽग्रे पञ्चमाध्यायान्तं प्रत्ययाः तद्धितसंज्ञकाः भवन्ति। अर्थात् यहाँ से आगे पंचम अध्याय की समाप्ति तक जो भी प्रत्यय होंगे उनकी तद्धित संज्ञा होगी। यथा—युवन्+ति [तद्धित संज्ञा, न लोप] युवतिः।

२१४ **तद्धितेष्वचामादेः**—७।२।११७ तद्धितेषु ७।३ ञिति णिति ७।१ प्रत्यये ७।१ अचाम् ६।३ आदेः ६।६ वृद्धिः १।१ ञिति णिति तद्धिते प्रत्यये परतः अचाम् आदेरचो वृद्धिर्भवति। ञित् णित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है। यथा—दक्ष+इञ्—आदि वृद्धि भ संज्ञा अ लोप दाक्षिः

२१५ **तदधीते तद् वेद** ४।२।५९ अधीते वेद इत्यर्थे ७।१ तद् इति (द्वितीयान्तात् समर्थात्] प्रातिपदिकात् ५।१ अण् प्रत्ययः १।१ भवति। द्वितीयान्तात् अधीते वेद एतयोः अर्थे वाच्ये अणादिप्रत्ययो भवति। अर्थात् द्वितीयान्त प्रातिपदिक से अध्ययन करता है एवं जानता है इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं यथा—व्याकरणम् अधीते वेद वा इस अर्थ में व्याकरण+अण्=ऐच्=वैयाकरण, व्याकरण को जानने वाला।

२१६ **तरप्तमपौ घः** १।१।२२ तरप्तमपौ १।२ घः १।१ संज्ञौ भवतः। तरप् तमपौ प्रत्ययौ घ-संज्ञकौ भवतः। अर्थात् तरप् और तमप् प्रत्यय घ-संज्ञक होते हैं। यथा—कुमारितरा ब्राह्मणितमा। तरप् तमप् के पूर्व ई को ह्रस्व हो गया घ संज्ञा होने के कारण ६।३।४३ सूत्र से।

२१७ **तलन्तं स्त्रियाम्**—तल् प्रत्ययान्तं प्रातिपदिकं स्त्रीलिङ्गं भवति। अर्थात् तल् प्रत्यय जिसके अन्त में है वह स्त्रीलिङ्ग होता है यथा—मानवता।

२१८ **तवकममकावेकवचने**—४।३।३ खञि ७।१ अणि ७।१ एकवचने ७।१ युस्मदस्मदोः ६।२ तवकममकौ १।२ आदेशौ भवतः। खञि अणि च परतः एकवचने युष्मदस्मदोः यथासंख्यं तवक ममक आदेशौ भवतः। अर्थात् युष्मद्, अस्मद् शब्द को क्रम से तवक ममक आदेश होता है। खञ् अण् प्रत्यय परे हो तो। यथा—युष्मद्+खञ्=ईन तवक आदिवृद्धि तावकीनः।

२१९ **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**—४।३।२ तस्मिन् [खञि] ७।१ अणि ७।१ युस्मदस्मदोः ६।२ युष्माकास्माकौ १।२ आदेशौ १।२ भवतः। खञि अणि च परतः युष्मदस्मदोः क्रमेण युष्माक अस्माक आदेशौ भवतः। अर्थात् खञ् और अण् परे रहते युष्मद् को युष्माक और अस्मद् को अस्माक आदेश होते हैं। युष्मद्+खञ्=ईन आदि वृद्धि यौष्माकीणः, आस्माकीनः।

२२० **तस्मै हितम्** ५।१।५ चतुर्थ्यन्तात् प्रातिपदिकात् ५।१ तस्मै हितम् इत्यस्मिन्नर्थे ७।१ छः १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। चतुर्थ्यन्तात् प्रातिपदिकात् हितम् इत्यस्मिन्नर्थे छ प्रत्ययो भवति। चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से हितम् इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है। यथा—वत्सेभ्यो हितम्=वत्स+छ (ईय) भ संज्ञा अ लोप वत्सीयः।

२२१ **तस्य पूरणे डट्**—५।२।४८ तस्य ६।१ पूरणे ७।१ [अर्थे] डट् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। षष्ठ्यन्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् पूरणे इत्यस्मिन् अर्थे डट् प्रत्ययो भवति। अर्थात् षष्ठ्यन्त संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है। यथा—एकादशानां पूरणः इस अर्थ में एकदशन्+डट्=अ=टि लोप=प्रातिपदिक संज्ञा के बाद स्वादि कार्य=एकादशः।

२२२ **तस्य भावस्त्वतलौ** ५।१।११९—तस्य ६।१ भावः १।१ इत्यर्थे त्वलौ १।२ प्रत्ययौ भवतः उसकी सत्ता इस अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय होतें हैं। त्वान्त प्रातिपदिक नपुंसक होता है। अर्थात् त्व जिसके अन्त में है ऐसा प्रातिपदिक नपुंसकलिङ्ग में होता है। मानवत्वम्।

२२३ **तस्यापत्यम्**—४।१।९२ षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकात् अपत्यम् इत्यस्मिन् अर्थे अणादयः प्रत्यया भवन्ति। अर्थात् षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अपत्य (सन्तान) अर्थ में

अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—अश्वपतेरपत्यम् इस अर्थ में अश्वपति+अण्= आश्वपतम्।

२२४ **तिङश्च**—५।३।५६ तिङन्तात् ५।१ प्रातिपादिकात् ५।१ च (अ०) अतिशायने (अर्थे) ७।१ तरप्तमपौ १।२ प्रत्ययौ १।२ [भवतः] तिङन्तात् अपि तरप् तमप् प्रत्ययौ अर्थात् तिङन्त से भी तरप् और तमप् प्रत्यय होते हैं। द्वौ पचतः तत्रैकः पचतितराम् इस अर्थ में पचति+तरप् पचतितर+आमु=पचतितराम् यों ही—इमे पचन्ति तत्रैकः पचतितमाम् इस अर्थ में पचति+तमप्=पचतितम+ आमु=पचतितमाम्—[अव्यय] दो में तरप् और बहुतों में तमप् होता है। जब दो में एक को बढ़ावा देना है तो पचतितराम् और जब बहुतों में एक को बढ़ावा देना है तो पचतितमाम्।

२२५ **ति विंशतेर्डिति**—६।४।१४२ डिति ७।१ भस्य ६।१ विंशतेः ६।१ ति [लुप्त षष्ठी] लोपः १।१ डिति प्रत्यये परतः भसंज्ञकस्य विंशतेः ति शब्दस्य लोपो भवति। अर्थात् डित् प्रत्यय परे रहते भ संज्ञक विंशति की ति का लोप होता है। यथा विंशति+ड=विंश+अ=भ संज्ञा, अ का लोप विंशम्।

२२६ **तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**—३।३।१० क्रियायां ७।१ क्रियार्थायां ७।१ धातोः ५।१ तुमुन् ण्वुलौ १।२ भवतः। अर्थात् क्रियार्थ क्रिया उपपद [समीप में] हो तो धातु से तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय होते हैं। भविष्यत् काल अर्थ में। यथा— द्रष्टुं याति। दृश्+तुमुन् =द्रष्टुम्।

२२७ **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्**—७।१।३५ आशिषि ७।१ अन्यतरस्याम् ७।१ तुह्योः ६।२ तातङ् १।१। आशिषि अर्थे तु हि एतयोः तातङ् आदेशो भवति। अर्थात् आशीर्वाद अर्थ में तु और हि को तातङ् आदेश होता है। यथा—भवतु+ तातङ्=भवतात्।

२२८ **ते प्राग्धातोः**—१।४।८० गत्युपसर्गाः १।३ ते १।३ धातोः ५।१ प्राक् १।१ प्रयोक्तव्याः। गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्राक् प्रयोक्तव्याः। अर्थात् गतिसंज्ञक और उपसर्ग संज्ञकों का पूर्व प्रयोग होता है। यथा—प्रभवति।

२२९ **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः**—५।१।११५ तेन तुल्यम् इत्यस्मिन्नर्थे ७।१ तृतीयान्तात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ वति प्रत्ययो भवति। तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् तुल्यम् इत्यस्मिन्नर्थे वति प्रत्ययो भवति। अर्थात् तृतीयान्त प्रातिपदिक से तुल्यम् इस अर्थ में वति प्रत्यय होता है। ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते ब्राह्मणवत्।

२३० **तेन प्रोक्तम्**—४।३।१०१ तेन प्रोक्तम् इत्यस्मिन् अर्थे ७।१ तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् ५।१ अण्... १।१ प्रत्ययः। तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तम

अस्मिन्नर्थे अणादयो भवन्ति। पाणिनिना प्रोक्तम् = पाणिनि + छ = ईय = पाणिनीयम् ।

२३१ त्रेः सम्प्रसारणं च—५।२।५५ त्रेः ६।१ सम्प्रसारणं १।१ च (अ०) षष्ठ्यन्तात् त्रिप्रातिपदिकात् पूरणे अर्थे तीय प्रत्ययो भवति, सम्प्रसारणञ्च भवति। अर्थात् षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है। तथा त्रि को सम्प्रसारण होता है। यथा—त्रयाणां पूरणः इस अर्थ में तीय प्रत्यय, र् को ऋ सम्प्रसारण, इ को पूर्वरूप=तृतीयः ।

२३२ तौ सत् ३।२।१२७—तौ [शतृ-शानचौ] सत् संज्ञौ १।२ भवतः। शतृ-शानचौ सत्संज्ञकौ भवतः। अर्थात् शतृ और शानच् की सत् संज्ञा होती है।

थ

२३३ थासः से ३।४।८० टितः ६।१ लस्य ६।१ थासः ६।१ से १।१ प्रत्ययः भवति। टितो लस्य थासः से भवति। अर्थात् टित् लकार के लट् लिट् लोट् लुट् लृट् के स्थान में थास् को से होता है। यथा—एध्+थास्=एधसे।

द

२३४ दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६ दण्डादिभ्यः ५।१ प्रातिपदिकेभ्यः ५।१ द्वितीयान्तेभ्यः ५।१ अर्हति इति अर्थे ६।१ यत् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। दण्डादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति तदर्हति अर्थे [दण्डमर्हति=दण्ड+यत्=दण्ड्यः।]

२३५ दधस्तथोश्च ८।२।३८ तथोः ७।२ स्ध्वोः ७।२ दधः ६।१ झषन्तस्य ६।१ पदस्य ६।१ वशो ६।१ भष् १।१ कृतद्वित्वस्य झषन्तस्य दधः धातोः बशो भष् स्यात् तथयोः चकारात् स्ध्वोः परतः। अर्थात् त् थ् स् ध् परे हो तो झषन्त दध् धातु के वश् को भष् आदेश होता है। दध्+त बश् द को भष् धध् तः=चर् धत्तस्, स् को रु—र् विसर्ग—धत्तः।

२३६ दश्च ७।२।१०९ विभक्तौ ७।१ इदमः ६।१ दः ६।१ मः १।१ इदमो दकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति। अर्थात् इदम् के द को म आदेश होता है। इदम्+औ=म को अकारान्तादेश, द को म वृद्धि एकादेश—इमौ।

२३७ दश्च ८।२।७५ सिपि ७।१ धातोः ६।१ पदान्तस्य ६।१ दः ६।१ रुः १।१ वा १।१ सिपि परे धातोः पदान्तस्य दकारस्य रुः वा भवति। सिप् परे हो तो पदान्त दकार को विकल्प से रु हो जाता है। पक्ष में द ही रहेगा। अभिनद्+सि =अभिन+रु+सि=सि लोप अभिनर्+सि=अभिनः, पक्ष में अभिनद्।

२३८ दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९ कर्तरि सार्वधातुके परतः दिवादिभ्यः

धातुभ्यः ५।३ श्यन् १।१ प्रत्ययः १।१ दिवादिभ्यः धातुभ्यः श्यन् प्रत्ययो भवति। अर्थात् कर्ता अर्थ वाला सार्वधातुक परे हो तो दिवादि धातुओं से श्यन् प्रत्यय होता है। यथा—दिव्+श्यन्+तिप्=दिव् यति=दीर्घ दीव्यति।

२३९ दीर्घोऽकितः ७।४।८३ यङ्लुकोः ७।२ अकितः ६।१ अभ्यासस्य ६।१ दीर्घः १।१ भवति। यङि यङ्लुकि च अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो भवति। यथा—अतिशयेन पुनः पुनः पचतीति विग्रहे पच् धातोः यङि द्वित्वादौ पपच्+य=पापच्य धातु संज्ञा ते पापच्य+ते=पापच्य+शप्+ते=पापच्य+अते पररूप—पापच्यते।

२४० दृग्दृश्वतुषु ६।३।८९ दृग् दृश् वतुषु ७।३ परेषु समानस्य स आदेशो भवति अर्थात् दृग् दृश् और वतु के परे रहते समान को स आदेश होता है। यथा—समान+दृश्+कञ्प्रत्यय समान+दृश्+अ=समान+दृश् अ=सदृश।

२४१ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८ द्वि त्रि चतुर्भ्यः ५।३ क्रियाभ्यावृत्तिगणनार्थेभ्यः ५।३ सुच् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। द्वि त्रि चतुर् शब्दों से क्रिया की आवृत्ति अर्थ में सुच् प्रत्यय होता है। यथा—द्वि+सुच्—द्वि+स्—द्वि+रु=द्वि+र्=द्विः करोति।

२४२ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२ द्व्येकयोः ७।२ द्विवचनैकवचने १।२ द्वित्वे विवक्षिते द्विवचनम् एकवचनं भवति। अर्थात् दो के कहने की इच्छा में द्विवचन, एक को कहने की इच्छा में एकवचन का प्रयोग होता है। यथा—रामः रामौ।

२४३ द्वेस्तीयः ५।२।५४ द्वि इति षष्ठ्यन्त्यात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ पूरणेऽर्थे ७।१ तीय १।१ प्रत्ययः १।१ भवति। षष्ठ्यन्त्यात् द्वि प्रातिपदिकात् पूरणे अर्थे तीय प्रत्ययो भवति। अर्थात् षष्ठ्यन्त्य प्रातिपदिक द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है। यथा—द्वि+तीय=द्वितीयः।

ध

२४४ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७ इच्छायां ७।१ समानकर्तृकात् ५।१ कर्मणः ५।१ धातोः ५।१ सन् १।१ प्रत्ययः १।१ इषिकर्मणः इषणैकसमानकर्तृकात् धातोः इच्छायाम् अर्थे सन् प्रत्ययो वा भवति। अर्थात् इष् धातु का कर्म और इष् धातुका ही समान कर्त्ता हो तो ऐसे धातु से सन् प्रत्यय होता है। यथा—देवदत्तः पिपठिषति—पठ+सन्—स=पठ पठ स=पिपठ+स=पिपठिषति।

२४५ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२ क्रियासमभिहारे ७।१ हलादेः ५।१ धातोः ५।१ यङ् १।१ प्रत्ययः १।१ क्रियासमभिहारे अर्थे हलादिरेकाच् यो धातुः तस्मात् यङ् प्रत्ययो भवति। अर्थात् बार बार करने के अर्थ में

एक अच् वाले हलादि धातु से यङ् प्रत्यय होता है। यथा—पुनः पुनः पचति—पच्+यङ्=पच् पच्+यङ्=पापच्य। धातु संज्ञा करके लडादि प्रत्यय के योग में पापच्यते।

२४६ धात्वादेः षः सः ६।१।६४ धात्वादेः ६।१ षः ६।१ सः १।१ (आदेश) धात्वादेः षकारस्य स्थाने सकारादेशो भवति। अर्थात् धातु के आदि षकार के स्थान में सकार आदेश होता है। षह्+लट्=ते ष को स आदेश—सह्+ते=सह्+अ ते=सहते।

२४७ धि च ८।२।२५ धि ७।१ सस्य ६।१ लोपः १।१ धकारादौ प्रत्यये परतः सकारस्य लोपो भवति। धकारादि प्रत्यय परे हो तो स का लोप होता है। यथा—यह सूत्र लुङ् लकार का प्रत्यय बनाता है। जब च्लि को सिच् हो जायेगा तो ध परे रहते सकार का लोप होगा। आत्मनेपद में ध्वम् प्रत्यय होगा।

२४८ ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४ अपाये (पृथग्भावे) ७।१ ध्रुवम् १।१ (अचलम्) अपादानं १।१ कारकं १।१ क्रियायां सत्यां पृथग्भूते सति यद् ध्रुवं तत् अपादानसंज्ञकं भवति। अर्थात् क्रिया होने पर व अलग होने पर जो अचल रहे उस की अपादान संज्ञा होती है। यथा—वृक्षात् पत्रं पतति—यहाँ पर अलग होना क्रिया में अचल रहने से वृक्ष की अपादान संज्ञा हुई व पंचमी विभक्ति हुई।

न

२४९ न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८ ङिसम्बुद्ध्योः ७।२ प्रातिपदिकस्य ६।१ पदस्य ६।१ नकारस्य ६।१ लोपः १।१ न १।१ ङौ सम्बुद्धौ च परतः। प्रातिपदिकस्य पदस्य नकारस्य लोपो न भवति। अर्थात् ङि और सम्बुद्धि परे हो तो प्रातिपदिक पद के नकार का लोप नहीं होता है। हे राजन्+सु=हे राजन्।

२५० नञ् २।२।६ नञ् सुबन्तं १।१ समर्थेन ३।१ समस्यते स च तत्पुरुषः १।१ नञ् इत्येतदव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते। नञ् अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है। यथा—न ब्राह्मणः =अब्राह्मणः।

२५१ नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२ सर्वनामस्थाने ७।१ झलचः ६।१ नपुंसकस्य ६।१ नुमागमः १।१। झलन्तस्य अजन्तस्य च नपुंसकस्य सर्वनामस्थाने परतः नुमागमो भवति। अर्थात् झलन्त तथा अजन्त नपुंसक लिङ्ग वाले अङ्ग को सर्वनाम स्थान परे रहते नुम् का आगम होता है। यथा—यशस्+जस्=शि=नुम्=अनुस्वार—दीर्घ—यशांसि।

२५२ **नपुंसकाच्च** ७।१।१९ नपुंसकात् ५।१ अङ्गात् ५।१ औङः ६।१ शी १।१ [आदेशः]। नपुंसकात् अङ्गात् उत्तरस्य औ इत्यस्य स्थाने शी आदेशो भवति। अर्थात् नपुंसक अङ्ग से परे औ को शी आदेश होता है। यथा—ज्ञान+औ=ज्ञान+शी=ज्ञान+ई=ज्ञाने।

२५३ **नपुंसके भावे क्तः** ३।३।११४ नपुंसके लिङ्गे भावे [अर्थे] ७।१ क्त १।१ प्रत्ययः १।१। नपुंसकलिङ्गे भावे क्तप्रत्ययो भवति। अर्थात् नपुंसक लिङ्ग में "भाव" अर्थ में क्त प्रत्यय होता है। हस्+त=हस्+इट्+त=हसितम्।

२५४ **न भकुर्छुराम्** ८।२।७९ र्वोः ६।२ भकुर्छुराम् ६।३ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ न [अ०] रेफान्तस्य वकारान्तस्य भस्य कुर् छुर् इत्येतयोश्च उपधायाः दीर्घो न भवति। अर्थात् रेफान्त व वकारान्त भ संज्ञक की एवं कुर् छुर् धातु की उपधा को दीर्घ नहीं होता है। यथा धुर्+यः=धुर्यः।

२५५ **नमुने** ८।२।३ ने ७।१ मु १।१ न (अ०) ने [ना भावे कर्तव्ये कृतेऽपि मु [भावः] असिद्धो न भवति। यथा—अदस्+टा=अमु+टा=ना=अमुना [यहाँ मु हो तो उसे असिद्ध कर अदन्त अङ्ग को इन् होने लगेगा। उसे इसीने रोका।

२५६ **न लुमताऽङ्गस्य** १।१।६३ लुमता [शब्देन] ३।१ प्रत्ययलोपे ७।१ अङ्गस्य ६।१ प्रत्ययलक्षणं १।१ न ३।१। लुमताशब्देन प्रत्ययलोपे सति तस्मिन् परतः प्रत्ययलक्षणेन यत् कार्यं तन्न भवति। अर्थात् लुक् श्लु लुप् इन शब्दों द्वारा जहाँ प्रत्यय का लोप किया गया हो उसके परे रहते जो अङ्ग उसको प्रत्यय लक्षण मान कर कार्य नहीं होता। यथा कति+जस् लुक् [यहाँ गुण प्राप्त हैं वह नहीं हुआ।]

२५७ **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** २।३।६९ लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थ-तृनाम्—६।३ न (अ०) ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा [क्त क्तवतु], खलर्थ, तृन् इत्येतेषां योगे षष्ठी विभक्तिः न भवति। अर्थात् ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ, तृन् इनके योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती यथा ओदनं पचन्=यहाँ ओदन में षष्ठी विभक्ति नहीं हुई।

२५८ **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** ८।२।७ प्रातिपदिकान्तस्य ६।१ पदस्य ६।१ न [स्य] ६।१ लोपः १।१। प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्तो नकारः तस्य लोपो भवति। अर्थात् प्रातिपदिक पद के अन्त में विद्यमान नकार का लोप होता है।

यथा—राजन्+सु=राजान्+सु—सु लोप न लोप=राजा।

२५९ **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** ७।३।३ पदान्ताभ्यां ५।२ य्वाभ्याम् ५।२। उत्तरस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ अचाम् ६।३ आदेः ६।१ अचः ६।१ न [अ०] वृद्धिः १।१ तु [अ०] [किन्तु] पूर्वौ १।२ ऐजागमः १।१ पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य आदेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति ञिति णिति तद्धिते च परतः, अपितु यकारवकाराभ्यां पूर्वौ क्रमात् ऐजागमो भवति। अर्थात् ञित् णित् तद्धित कित् प्रत्यय परे हो तो पदान्त यकार और वकार से परे अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि नहीं होती किन्तु उस यकार वकार से पूर्व को ऐ, औ (ऐच्) का आगम होता है। यथा—वि+असन्=वि+असन्+अण्= यण् व्य्+असन्=अ=ऐ वैयसन्।

२६० **न विभक्तौ तुस्माः** १।३।४ विभक्तौ ७।१ तुस्माः १।३ तुश्च स् च मश्च ते तुस्माः न १।१ विभक्तौ अन्ते स्थितानां तवर्गसकारमकाराणां इत्संज्ञा न भवति। अर्थात् विभक्ति (सुप्-तिङ्) में स्थित तवर्ग सकार और मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। रामान् में नकार का लोप नहीं हुआ।

२६१ **नश्चापदान्तस्य झलि** ८।३।२४ झलि ७।१ अपदान्तस्य ६।१ नः ६।१ मः ६।१ अनुस्वारः १।१ झलि परतः नकारस्य मकारस्य अपदान्तस्य च अनुस्वारो भवति। अर्थात् झल् परे हो तो अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है। यथा पयाँस्+इ=पयांसि।

२६२ **नश्छव्यप्रशान्** ८।३।७ अम् परे छवि ७।१ पदस्य ६।१ नः ६।१ रुः १।१ अप्रशान् [लुप्त षष्ठी] अम् परके छवि परतः प्रशान् वर्जितस्य नकारान्तस्य पदस्य रुर्भवति अर्थात् अम् परक छव् परे हो तो प्रशान् को छोड़कर नकारान्त पद के न को रु होता है। यथा—भवान्+छदयति=रु=अनुनासिक=विसर्ग=सत्व =श्चुत्व=भवांश्छादयति।

२६३ **न संयोगाद् वमन्ताद्** ६।४।१३७ संयोगात् ५।१ वमन्तात् ५।१ अनः ६।१ लोपः १।१ न १।१ वकारान्तात् मकारान्तात् संयोगात् परस्य अनोऽकारस्य लोपो न भवति। अर्थात् वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन् के अकार का लोप नहीं होता है। यथा—पर्वन्+टा=पर्वणा। अन् के अकार का लोप नहीं होता।

१लश्च उश्च उकश्च अव्ययं च निष्ठा च खलर्थश्च तृन् च एते लोकाव्यय-निष्ठाखलर्थतृनः, तेषाम्—ल से लकार के स्थान में होने वाले शतृ शानच् कानच् क्वसु कि किन् इनका ग्रहण करना चाहिये।

२६४ **नान्तादसंख्यादेर्मट्** ५।२।४९ असंख्यादेः ५।१ नान्तात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ डटः ६।१ मट् १।१ असंख्यादेर्नान्तात् प्रातिपदिकात् डटो मडागमो भवति। अर्थात् संख्या आदि में न हो जिसके ऐसे नकारान्त प्रातिपदिक से परे डट् को मट् का आगम होता है। पञ्चन्+डट्=पञ्चन्+मट्+अ नलोप=पञ्च+म=पञ्चम+सु रुत्व विसर्ग=पञ्चमः।

२६५ **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** ३।१।१३४ नन्दिग्रहिपचादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ ल्युणिन्यचः १।३ नन्द्यादिभ्यो ग्रहादिभ्यः पचादिभ्यो धातुभ्यः क्रमात् ल्यु णिनि अच् प्रत्ययाः भवन्ति। अर्थात् नन्द्यादि ग्रहादि तथा पचादि से क्रम से ल्यु, णिनि, अच् प्रत्यय होता है। नन्द+ल्यु=नन्द+अन=नन्दन+सु—विसर्ग=नन्दनः।

२६६ **नामि** ६।४।३ नामि ७।१ अजन्तस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ दीर्घः १।१ नामि परतः अजन्तस्य अङ्गस्य दीर्घो भवति। अर्थात् नाम् के परे रहते अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है। यथा—राम+आम्=राम+नुट् +आम्=राम+नाम्=दीर्घ रामानाम्=रामाणाम्।

२६७ **नाभ्यस्ताच्छतुः** ७।१।७८ अभ्यस्तात् ५।१ अङ्गात् ५।१ शतुः ६।१ न (अ०) नुम् १।१ अभ्यस्तात् अङ्गात् परस्य शतुर्नुम्न भवति। अर्थात् अभ्यस्त अङ्ग से परे शतृ को नुम् का आगम नहीं होता। यथा—दा+शतृ=दा+दा=द+दा+अत्=ददत्।

२६८ **नित्यं करोतेः** ६।४।१०८ म्वोः ७।१ करोतेः ६।१ उतः ६।१ नित्यं १।१ लोपः १।१ वकारादौ मकारादौ च प्रत्यये परतः करोतेः उत्तरस्य उकारप्रत्ययस्य नित्यं लोपो भवति। अर्थात् वकारादि तथा मकारादि प्रत्यय परे रहते कुरु के आखिरी उ का नित्य लोप होता है। कृ+वस्=उ विकरणे गुणे रपरे कुरु+व=कुर्वः कुर्मः।

२६९ **नित्यं ङितः** ३।४।९९ ङितः ६।१ लस्य ६।१ उत्तमस्य ६।१ सः ६।१ नित्यं १।१ लोपः १।१ ङित्लकारसम्बन्धिनः उत्तमपुरुषस्य सकारस्य नित्यं लोपो भवति। अर्थात् ङित् लकार लङ्, लिङ्, लृङ्, लुङ् सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का नित्य लोप होता है। यह सूत्र प्रत्यय बनाता है।

२७० **नित्यवीप्सयोः** ८।१।४ नित्यवीप्सयोः ७।२ (अर्थयोः) सर्वस्य ६।१ पदस्य ६।१ द्वे १।२ (भवतः) नित्ये चार्थे वीप्सायां च यः शब्दो वर्तते तस्य द्वे भवतः। अर्थात् नित्यता एवं वीप्सा अर्थ में जो शब्द हो उसको द्वित्व होता है। यथा पचति पचति।

टिप्पणी—क्रिया को दो बार बोलना हो तो नित्य कहते हैं। शब्दों को दो बार कहना हो तो वीप्सा कहते हैं।

परिभाषा—निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय:। कारण के समाप्त हो जाने पर कार्य भी समाप्त हो जाता है। रामः+अत्र=रामर्+अत्र। यहाँ खर् और अवसान परे न होने पर र् को विसर्ग नहीं हुआ। रामर्+अत्र में एकदेशविकृतमनन्यवत् से रु मान कर सन्धि होती है।

नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन वा० नुम्-अचिरभाव-तृज्वद्भावेभ्यो नुट् भवति। अर्थात् नुम् अचिरभाव तृजवद्-भाव की अपेक्षा नुट् करना चाहिए। यथा—वारीणाम्, तिसृणाम् क्रोष्टूनाम्।

२७१ **निष्ठा** ३।२।१०२ धातोः ५।१ भूते ७।१ (अर्थे) निष्ठा १।१ प्रत्ययः १।१ परः १।१ धातोः भूतकाले अर्थे निष्ठासंज्ञकः प्रत्ययो भवति। अर्थात् धातु से भूतकाल अर्थ में निष्ठा संज्ञक (क्त क्तवतु) प्रत्यय होते हैं। [1]यथा—भुज्+क्त=तः भुग्+ त=भुक्+त भुक्तः।

२७२ **निष्प्रवाणिश्च** ५।४।१६० निष्प्रवाणिः १।१ इति शब्दः निपात्यते[2]। अर्थात् निष्प्रवाणि शब्द में नद्यृतश्च से नदीलक्षण कप् की जो प्राप्ति थी उसी का इससे निषेध किया जाता है। यथा निष्प्रवाणिः पटः— (बुना हुआ कपड़ा।)

२७३ **नीचैरनुदात्तः** १।२।३० नीचैः (अ०) अनुदात्तः १।१ ताल्वादिस्थानेषु अधोभागे निष्पन्नो योऽच् सोऽनुदात्तसंज्ञको भवति। अर्थात् तालु आदि स्थानों के अधोभाग से उत्पन्न होने वाले अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है। नमस्ते देवदत्त—अनुदात्त की ऐसी पहचान के लिए वेदों में अक्षर के नीचे पड़ी रेखा खींच दी जाती है।

२७४ **नेदमदसोरकोः** ७।१।११ अकोः ६।२ इदमदसोः ६।२ भिसः ६।१ (स्थाने) ऐस् १।१ न। ककारभिन्नयोः इदम्, अदस् शब्दयोः परतः भिसः स्थाने ऐस् न भवति। अर्थात् ककार रहित इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् को ऐस् आदेश नहीं होता है। यथा—इदम्+भिस्=अ+भिस् (यहां भिस् को ऐस् प्राप्त था उसका निषेध हो गया है।) एत्व=एभिः।

२७५ ....

प

२७६ **पंक्तिविंशतित्रिंशत्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्**—५।१।५९ एते निपात्यन्ते। अर्थात् इन रूढि शब्दों को निपातन से सिद्ध करते

---

१ निष्ठा इत्यनेन 'क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६' ज्ञेया इति।

२ अत्र कप् प्रत्ययाभावः ह्रस्वत्वं च निपात्यते। निर्गता प्रवाणिः यस्मात् इति विग्रहे बहुव्रीहिसमासः।

हैं। यथा—पञ्चन्+ति—टिलोप=कुत्व। पंक्तिः।

२७७ **पदस्य** ८।१।१६ इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि पदस्य भवन्ति। अर्थात् यहाँ से आगे जितने भी कार्य होंगे सभी पद को होंगे। यथा—पचत्+सु= पचन्त+सु—त का संयोगान्त लोप=पचन्।

२७८ **परश्च** ३।१।२ प्रकृतितः ५।१ [प्रत्ययाः] परे १।३ भवन्ति। प्रत्ययाः प्रकृतितः परे भवन्ति। अर्थात्—राम+सु=रामः। यह अधिकार सूत्र है। पाँचवें अध्याय तक जाता है।

२७९ **पर्वताच्च** ४।२।१४३ पर्वतात् प्रातिपदिकात् ५।१ तत्रभवाद्यर्थे ७।१ छ प्रत्ययः १।१ भवति। प्रातिपदिकात् तत्रभवाद्यर्थे छः प्रत्ययो भवति। अर्थात् पर्वत प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है। पर्वत+छ=ईय=पर्वतीयः।

२८० **पञ्चम्यास्तसिल्** ५।३।७ पञ्चम्यन्तात् ५।१ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्वयादिभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ तसिल् १।१ प्रत्ययो भवति। पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः तसिल् प्रत्ययो भवति। अर्थात् पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से तसिल् प्रत्यय होता है। यद्+तसिल्, य+अ+तसिल्=यतः।

२८१ **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** ५।१।१२२ तस्य भाव इत्यर्थे ७।१ पृथ्वादिभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ इमनिच् प्रत्ययो भवति। तस्य भावे अर्थे पृथ्वादिभ्यः इमनिच् प्रत्ययो भवति। 'उसकी सत्ता' इस अर्थ में पृथु आदि से इमनिच् प्रत्यय होता है।

२८२ **पुगन्तलघूपधस्य च** ७।३।८६ सार्वधातुक+आर्धधातुकयोः ७।२ पुगन्तलघूपधस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ इकः ६।१ गुणः। सार्वधातुके आर्धधातुके परतः पुगन्तस्य लघूपधस्य च अङ्गस्य गुणो भवति। अर्थात् सार्वधातुक आर्धधातुक परे रहते पुक् अन्त वाले तथा लघु संज्ञक उपधा वाले अङ्ग को गुण होता है।

२८३ **पूर्वत्रासिद्धम्** ८।२।१ पूर्वत्र ७।३ [सपादसप्ताध्यायीषु] असिद्धम् १।१ [त्रिपादी] अधिकारपक्षे सर्वत्र सूत्रेषु अयमेवार्थः [सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा। त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रम् असिद्धम्। अर्थात् सवा सात अध्याय के सूत्रों के कार्य के प्रति त्रिपादी सूत्र के कार्य असिद्ध हो जाते हैं। त्रिपादियों में भी पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। अस्मै+उद्धर=आय्=य लोप= अस्मा उद्धर=यहाँ गुण नहीं होता है। क्योंकि य लोप असिद्ध है। यह परिभाषा रूपी अधिकार सूत्र है। अर्थात् दोनों काम करता है। जब ७।२।१ पर बैठा हुआ

बोलता है कि पूर्वत्र=पूर्व सूत्रों में हमारे आगे आने वाले तीन पाद के सूत्र असिद्ध हैं। जब अधिकार होता है तो आगे के सूत्रों पर जा-जाकर बैठकर बोलता है कि त्वं पूर्वत्र असिद्धम्—तुम पूर्व सूत्र में असिद्ध हो, सूत्रार्थ यही है। भावार्थ सूत्र का बताया गया है—परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः—अर्थात् पूर्वापर-भाव में सपाद सप्ताध्याय तक पूर्व सूत्र को असिद्ध कर पर सूत्र लगेगा, पर त्रिपादी में पर सूत्र को असिद्ध कर पूर्व सूत्र लगेगा। यों ही सप्ताध्यायी ८।१।७४ तक के सूत्रों से त्रिपादी सूत्रों की मुठभेड़ होने पर त्रिपादी पर होते हुए भी असिद्ध होंगे। यों पर का नित्य के साथ विरोध होने पर नित्य बली, पर नित्य का अन्तरङ्ग के साथ विरोध होने पर अन्तरङ्ग बली। पर नित्य अन्तरङ्ग का अपवाद से विरोध होने पर अपवाद ही बली होता है। यही पाणिनि का दुर्बलरक्षाशय है। कृताकृतप्रसङ्गो विधिर्नित्यः। निर्निमित्तो विधिरन्तरङ्गः। निरवकाशो विधिरपवादः। ये इनके लक्षण हैं। गुरु जी से समझिये।

२८४ **पूर्वोऽभ्यासः** ६।१।४ [अस्मिन् द्वित्वे प्रकरणे ये द्वे विहिते तयोः] पूर्वस्य ६।१ अभ्यासः १।१ [संज्ञा भवति] अस्मिन् प्रकरणे ये द्वे विहिते तयोः पूर्वस्य अभ्याससंज्ञा भवति। यथा—पच्+अ=पच्+पच्+अ पूर्व की अभ्यास संज्ञा और कार्य=पपाच।

२८५ **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** ६।१।१०२ अकः ५।१ अचि ७।१ प्रथमयोः ६।२ पूर्वपरयोः ६।२ [स्थाने] एकः १।१ भवति। प्रथमा-द्वितीययोः अजादौ विभक्तौ परतः अकः पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो भवति। अर्थात् प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अजादि विभक्ति परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। अग्नि+औ=दीर्घ।

२८६ **परोक्षे लिट्** ३।२।११५ अनद्यतने ७।१ भूते ७।१ परोक्षे ७।१ [अर्थे] लिट् प्रत्ययः परः १।१ भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोः लिट् स्यात्। अर्थात् अनद्यतन परोक्ष को कहने के लिए धातु से लिट् लकार होता है। यथा—भू+अ=वुक्=द्वित्व=संज्ञा अभ्यास कार्य=बभूव।

२८७ **प्रादयः** १।४।५८ क्रियायोगे ७।१ प्रादयः १।३ उपसर्गाः १।३ भवन्ति। प्रादयो निपात-संज्ञकाः क्रियायोगे उपसर्गा भवन्ति। अर्थात् प्रादि की निपात संज्ञा होती है पर क्रिया के साथ वे उपसर्ग कहे जाते हैं।

२८८ **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** ७।२।९८ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२ युष्मदस्मदोः ६।२ मपर्यन्तस्य ६।१ त्वमौ १।२ भवतः। प्रत्यये उत्तरपदे च परतः युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य त्व, म आदेशौ भवतः। अर्थात् प्रत्यय तथा उत्तरपद परे रहते युष्मद् अस्मद्

शब्द के मपर्यन्त भाग को त्व, म आदेश होते हैं। युष्मद्+छ=ईय=त्वदीय; अस्मद् +छ=ईय=मदीय।

२८९ **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** २।३।४६ प्रातिपदिकार्थमात्रे ७।१ प्रथमा १।१ प्रातिपदिकार्थमात्रे [सत्ता] लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे [तोलना] वचनमात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति। प्रातिपदिकार्थमात्र में, लिङ्गमात्र में, परिमाणमात्र में, संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—उच्चैः कृष्णः तटः तटी तटम् द्रोणो व्रीहिः एकः द्वौ बहवः।

२९० **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** १।१।६२ प्रत्ययलोपे ७।१ प्रत्ययलक्षणं १।१ प्रत्ययस्य लोपे सति प्रत्यय-निमित्तं कार्यं भवति। अर्थात् प्रत्यय के लोप हो जाने पर उस प्रत्यय को मान कर जो कार्य होता हैं वह हो जाता है। यथा सोमसुत्—यहाँ क्विप् लुप्त है फिर भी तुक् रूप कार्य होता है।

२९१ **प्वादीनां ह्रस्वः** ७।३।८० शिति ७।१ प्वादीनां ६।३ ह्रस्वः १।१ शिति परतः प्वादीनां ह्रस्वो भवति। पू आदिर्येषां ते प्वादयः तेषां प्वादीनाम पू+ना+ति=पुनाति।

ब

२९२ **बहुगणवतुडति संख्या** १।१।२३ बहुगणशब्दौ वतुडतिप्रत्ययान्तौ च शब्दौ संख्यासंज्ञका भवन्ति। यथा—बहुशः, गणकः, गमधा, कतिधा, कतिकः कतिशः आदि।

२९३ **बहुवचने झल्येत्** ७।३।१०३ झलि ७।१ बहुवचने ७।१ अदन्तस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ एकारादेशो भवति। बहुवचने झलादौ सुपि परतः अकारान्तस्य अङ्गस एकारादेशो भवति। अर्थात् झलादि बहुवचन परे हो तो अकारान्त अङ्ग को एकार देश होता है। राम+भ्यस्=एत्व=रु=विसर्ग=रामेभ्यः।

२९४ **बहुषु बहुवचनम्** १।४।२१ बहुषु ७।१ बहुवचनम् १।१ भवति। बहुत्व विवक्षायां बहुवचनं भवति। बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन होता है। यथा—राम+ अस्=दीर्घ=रामास्—रु=विसर्ग रामाः।

२९५ **ब्रुव ईट्** ७।३।९३ ब्रुवः ५।१ हलादेः ६।१ पितः ६।१ सार्वधातुक ६।१ ईट् १।१ भवति। ब्रुवः परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईट् आगमो भवति अर्थात् ब्रुव अङ्ग से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् आगम होता है। ब्रू+ =ब्रू+ईट्+ति=ब्रो ई ति अवादेश=ब्रवीति।

२९६ **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** ३।४।८४ ब्रुवः ५।१ धातोः ५

परेषां ६।३ लटः ६।१ [स्थाने] परस्मैपदानाम् ६।३ आदितः ५।१ पञ्चानां ६।३ क्रमात् णलादयः पञ्च स्युः, ब्रुवः आहः आदेशः स्यात् । अर्थात् ब्रुवः धातोः परस्य लटः स्थाने परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां पञ्चानां णलादयः स्युः धातोश्च आह आदेशो भवति । अर्थात् ब्रू धातु से परे लट् लकार के स्थान में परस्मैपद संज्ञक आदि के पांच आदेश (तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्) को क्रम से णल् अतुस् उस् थल् अथुस् आदेश होते हैं ।[1] ब्रू धातु को आह आदेश होता है । यथा—ब्रू+तिप्=ब्रू+णल् =ब्रू+अ=आह=आह ।

भ

२९७ भस्य ६।४।१२९ भस्य ६।१ अध्यायपर्यन्तम् अधिकारोऽयम् । अर्थात् यहाँ से आगे अध्याय की समाप्ति तक भसंज्ञक का कार्य होगा ।

२९८ भावकर्मणोः १।३।१३ धातोः ५।१ भावकर्मणोः ७।२ आत्मनेपदं १।१ भवति । अर्थात् भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में धातु से आत्मनेपद होता है । यथा—गम्यते ।

२९९ भावे ३।३।१८ धातोः ५।३ भावे ७।१ घञ् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति । भावे अर्थे धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । यथा—पच्+घञ्=अ=आदिवृद्धि =कुत्व=पाकः ।

३०० भावे च ४।४।१४४ शिवशमरिष्टेभ्यः ५।१ षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ भावे ७।१ छन्दसि ७।१ तातिल् प्रत्ययः १।१ भवति । षष्ठीसमर्थेभ्यः शिव शम् अरिष्ट इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः भावेऽर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति । यथा—शिवस्य भावः शिव+तातिल्=शिवतातिः ।

३०१ भूवादयो धातवः १।३।१ (क्रियावाचिनः) भूवादयो १।३ धातवः १।३ क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञका भवन्ति । क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञका भवन्ति । अर्थात् क्रियावाची भू आदि की धातु संज्ञा होती है । यथा—भू—भवति —पचति ।

३०२ (क) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७ अशि १।७ भोभगोअपूर्वस्य रोः यः १।१ भवति । अशि परतः भो भगो अघो अपूर्वस्य रो रेफस्य यकारादेशो भवति । अर्थात् अश् परे रहते भो भगो, अघो अवर्ण पूर्व में है जिस रु के उसके र् को यकार आदेश होता है । यथा—भोस् अत्र=भोरु+अत्र=भोय्+अत्र=भो अत्र ।

१ टिप्पणी—भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्च इति भो……आः । ते पूर्वे यस्य सः भो — अपूर्वः तस्य अपूर्वस्य इति द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ।

(ख) भोभगोअघो अ-पूर्वयोः यकारवकारयोः लोपो भवति। अर्थात् अश् परे रहते भो भगो अघो और अपूर्व वाले पदान्त यकारवकार का लोप होता है। शाकल्य ऋषि के मत में। यथा—द्वौ+अत्र=द्वाव्+अत्र—व् लोप=द्वा अत्र।
म

३०३ मध्यान्मः ४।३।८ मध्यात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ मः १।१ प्रत्ययः १।१ मध्यात् प्रातिपदिकात् भवेऽर्थे मः प्रत्ययो भवति। अर्थात् मध्य प्रातिपदिक से होने अर्थ में म प्रत्यय होता है। मध्य में जो हो वह मध्यम कहाता है।

३०४ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९ अयवादिभ्यः ५।१ मात् ५।१ उपधायाः ५।१ मतोः ६।१ वः १।१ मकारान्तात् मकारोपधात् च अवर्णन्तात् अवर्णोपधाच्च प्रातिपदिकात् परस्य मतोर्व आदेशो भवति यवादिभ्यस्तु उत्तरस्य न भवति। अर्थात् यकारान्त एवं अवर्णान्त एवं मकार एवं अवर्ण उपधा वाले प्रातिपदिक से परे मतुप् को वकार आदेश होता है। किन्तु यवादि शब्दों से उत्तर मतुप् को व नहीं होता। यथा—किम्+मतुप्=किम्+मत्=म को व अनुस्वार किंवत्। उपधा दीर्घ नुम्=त लोप किंवान्।

३०५ मिदचोऽन्त्यात् परः १।१।४७ अन्त्यात् ५।१ अचः ५।१ परः १।१ मित् १।१ भवति। अचां मध्ये यो अन्त्यः अच् तस्मात् परो मित् भवति। यथा—भिद्+ति भिनद्+ति=भिनत्ति।

३०६ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८ मुखनासिकावचनः १।१ वर्णः १।१ अनुनासिकः १।१ भवति। मुखसहितनासिकया उच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। मुखेन सहिता नासिका। उच्यते इति वचनम्। मुखनासिकया वचनं यस्य सः सः मुखनासिकावचनः [इति बहुव्रीहि]। अर्थात् मुख सहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण की अनुनासिक संज्ञा होती है। यथा—ञ म ङ ण न।

३०७ मोऽनुस्वारः ८।३।२३ हलि ७।१ पदान्तस्य ६।१ मः ६।१ अनुस्वारः १।१ भवति। हलि परतः पदान्तस्य मकारस्य अनुस्वारादेशो भवति। अर्थात् हल् परे रहते पदान्त मकार को अनुस्वार आदेश होता है। यथा—कुवडं हसति। हरिं वन्दे।

३०८ मेर्निः ३।४।८९ लोटः ६।१ मेः ६।१ निः १।१ स्यात् लोटो मेर्निः स्यात् अर्थात् लोट स्थानिक मि को नि होता हैं। भवामि=भवानि।

य

३०६ यः सौ ७।२।११० सौ ७।१ इदमः ६।१ दः ६।१ यः १।१ सौ विभक्तौ परतः इदमो दकारस्य यकारादेशो भवति। सु विभक्ति परे रहते इदम् के दकार के स्थान में यकारादेश होता है। इदम्+सु=द को य सु लोप=इयम्।

३१० यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९ यत्तदेतेभ्यः ५।३ परिमाणे ७।१ वतुप् १।१ प्रथमा समर्थेभ्यः यद् तद् एतद् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः वतुप् प्रत्ययो भवति। अर्थात् प्रथमा समर्थ यद् तद् एतद् प्रातिपदिक से वतुप् प्रत्यय होता है। यथा—यत्+वतुप्=दीर्घ=यावत्+नुम्—तलोप=यावान्।

३११ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५ अनुनासिके ७।१ पदान्तस्य ६।१ यरः ६।१ अनुनासिकः १।१ वा। अनुनासिके परे पदान्तस्य यरः अनुनासिको वा भवति। अर्थात् अनुनासिक परे रहते पदान्त यर् को अनुनासिक विकल्प से होता है। वाग्+नयति=वाङ्नयति।

३१२ यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३ यस्मात् ५।१ प्रत्ययविधिः* १।१ प्रत्यये ७।१ तदादि १।१ अङ्गम् १।१ यस्मात् प्रत्ययो विधीयते तस्य तदादेश्च तस्मिन् प्रत्यये परतः अङ्गसंज्ञा भवति। अर्थात् जिस प्रकृति से प्रत्यय का विधान किया जाए उस प्रत्यय के परे रहते उस प्रकृति की अङ्ग संज्ञा होती है। यथा— राम+आम्=में राम की अङ्ग संज्ञा होती है।

३१३ यस्येति च ६।४।१४८ तद्धिते ७।१ ईति ७।१ भस्य ६।१ यस्य *६।१ लोपः १।१ इवर्णान्तस्य अवर्णान्तस्य च अङ्गस्य लोपो भवति ईकारे तद्धिते च परतः। अर्थात् ईकार और तद्धित परे रहते इवर्णान्त तथा अवर्णान्त भसंज्ञक अङ्ग का लोप भी होता है। दक्ष+इञ्=आदिवृद्धि भसंज्ञा=इ लोप ङीप् दाक्षी।

३१४ याडापः ७।३।११३ आपः ५।१ अङ्गात् ५।१ ङितः ६।१ याडागमः १।१ भवति। आबन्तात् अङ्गात् परस्य ङितः प्रत्ययस्य याडागमो भवति। अर्थात् आबन्त अङ्ग से परे ङित् प्रत्यय को याट् का आगम होता है। रमा+ङे=रमा+ याट्। रमाया+ए=वृद्धिः=रमायै। रमा+ङि(=आम्)=रमा याट् आम्=रमायाम्

---

*प्रत्ययस्य विधिः [प्रत्ययविधिः] स आदिः यस्य=तदादि तदादि शब्दस्वरूपम् इति बहुव्रीहिः।

*इश्च अश्च तयोः समाहारः यम्, तस्य।

३१५ **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** ३।४।१०३ परस्मैपदविषयस्य लिङो यासुडागमो भवति स च उदात्तो भवति ङिच्च। परस्मैपदेषु ७।३ लिङः ६।१ यासुड् १।१ उदात्तः १।१ ङिच्च १।१ अर्थात् परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त तथा ङित् होता है। भू+लिङ्=भू+यासुट्+ति =भूयात्।

३१६ **युवोरनाकौ** ७।१।१ अङ्गयोः ६।२ युवोः ६।२ अनाकौ १।२ अङ्ग-सम्बन्धिनोः युवु एतयोः स्थाने क्रमात् अन अक आदेशौ भवतः। अर्थात् अङ्ग सम्बन्धी यु तथा वु को क्रम से अन तथा अक आदेश होता है। यथा—कृ+वु= अक=वृद्धि=कारकः। गम्+यु=अन=गमनम्।

३१७ **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** ४।३।१ शेषे अर्थे युष्मदस्मदोः ६।२ अन्यतरस्याम् खञ् छः च प्रत्ययौ भवतः। युष्मद् अस्मद् शब्दाभ्याम् खञ् छौ प्रत्ययौ भवतः। अर्थात् युष्मद् तथा अस्मद् शब्द से खञ् तथा छ प्रत्यय होता है। युष्मद् को युष्माक आदेश, ख को ईन आदेश=आदि वृद्धिः यौष्माकीणः। आस्माकीनः।

र

३१८ **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** १।२।२६ उकारोपधात् इकारोपधात् रलन्तात् हलादेः धातोः परः सेट् सन् सेट् क्त्वा च वा कितौ न भवतः। अर्थात् उकार इकार उपधा वाले रलन्त एवं हलादि धातुओं से परे सेट् सन् सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होते। यथा लिखित्वा—लेखित्वा।

३१९ **रात्सस्य** ८।२।२४ संयोगान्तं यत् पदम् तस्य ६।१ रात् ५।१ परस्य सस्यैव ६।१ लोपः १।१ नान्यस्य ६।१ संयोगान्तस्य पदस्य यो रेफः तस्मात् उत्तरस्य सस्यैव लोपो भवति नान्यस्य। अर्थात् संयोगान्त पद का जो रेफ है उससे परे सकार का ही लोप होता है दूसरे का नहीं। यथा—मातृ+ङस्=अस्=उ र पर स् लोप रेफ विसर्ग=मातुः।

३२० **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** ४।२।९३ राष्ट्रावारपारात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ घखौ १।१ शेषे अर्थे ७।१ भवतः। राष्ट्र अवार पार शब्दाभ्यां घखौ प्रत्ययौ भवतः अर्थात् राष्ट्र तथा अवारपार शब्द से शेष अर्थ में घ ख प्रत्यय होता है। राष्ट्र+घ–इय=भ संज्ञा=अ लोप=राष्ट्रियः।

३२१ **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** ७।४।२८ शयग् लिङ्क्षु ७।३ ऋतः ६।१ रिङ् १।१ शे यकि लिङि च, यकारादौ असार्वधातुके परतः ऋकारान्तस्य अङ्गस्य रिङ्

आदेशो भवति। अर्थात् यकारादि असार्वधातुक लिङ् और श यक् परे रहते ऋकारान्त अङ्ग को रिङ् आदेश होता है। यथा—आ+दृ+ते+आदृ+अ+ते=आ+द्+रिङ्+ते=आ+द्+रि+अ+ते इयङ् आद्रियते।

३२२ **रुदश्च पञ्चभ्यः** ७।३।९८ रुदश्च ५।३ पञ्चभ्यः ५।३ हलादेः अपृक्तस्य ६।१ सार्वधातुकस्य ६।१ ईट् १।१ भवति। रुदादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्य हलादेरपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति। अर्थात् रुदिर् इत्यादि पाँच धातुओं से परे हलादि अपृक्त सार्वधातुक को ईट् का आगम होता है। यथा—रुद्+लङ् त्=अट्+रुद्+त्=अ+रुद्+ईट्+त्=अरोदीत्।

३२३ **रुधादिभ्यः श्नम्** ३।१।७८ रुधादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः श्नम् १।१ प्रत्ययो भवति। अर्थात् रुधादि धातुओं से कर्तृवाची सार्वधातुक से परे रहते श्नम् प्रत्यय होता है। यथा—भि+नद्+ति=भिनत्ति।

३२४ **रुदादिभ्यः सार्वधातुके** ७।२।७६ रुदादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ वलादेः सार्वधातुकस्य ६।१ इट् १।१ भवति। रुदादिभ्यः पञ्चभ्यो धातुभ्यः परस्य वलादेः सार्वधातुकस्य इडागमो भवति। अर्थात् रुदादि पाँच धातुओं से परे वलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होता है। यथा—रुद्+ति=रुद्+इट्=रोदिति।

३२५ **रोः सुपि** ८।३।१६ सुपि ७।१ रोः ६।१ एव विसर्जनीयः १।१ सुपि परे रोः रेफस्यैव विसर्जनीयादेशो भवति। अर्थात् सुप् परे हो तो रु के ही र् को विसर्ग होता है। यथा—पयरु+सुप्=पयः सु=पयःसु।

३२६ **रो रि** ८।३।१४ रि ७।१ रः ६।१ लोपः १।१ भवति। रेफे परतः रेफस्य लोपो भवति। अर्थात् रेफ परे रहते पद के रेफ का लोप होता है। पुनर्+रमते=र् लोप दीर्घ=पुनारमते।

ल

३२७ **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** ३।४।६९ अकर्मकेभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ कर्तरि ७।१ भावे ७।१ सकर्मकेभ्यः धातुभ्यः ५।३ कर्तरि कर्मणि च लः भवन्ति। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युः अकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च। अर्थात् लकार सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में होते हैं और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में।

३२८ **लः परस्मैपदम्** १।४।९९ लः ६।१ स्थाने ७।१ आदेशः १।१ परस्मैपदम् १।१ भवति। लकार स्थानिका आदेशाः परस्मैपदसंज्ञका भवन्ति। अर्थात्

लकार के स्थान में हुये १८ आदेशों की परस्मैपद संज्ञा होती है। ये सूत्र प्रत्यय बनाता है। तङ् की आत्मनेपद संज्ञा होने से पूर्व के नव ही इसे मिलते हैं।

३२९ **लङः शाकटायनस्यैव** ३।४।१११ आतः ५।१ धातोः ५।१ झेः ६।१ जुस् १।१ शाकटायनस्य मते। आकारान्तात् परस्य लङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति शाकटायनस्य मते। अर्थात् आकारान्त धातुओं से परे लङ् के स्थान में हुए झि को जुस् आदेश होता है आचार्य शाकटायन के मत में—या+लङ्=अट्+या+झि=अ+या+जुस्=अ+य्+उस्=अयुस्=अयुः।

३३० **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** ३।२।१२४ धातोः ५।१ वर्तमाने ७।१ लटः ६।१ शतृशानचौ १।२ अप्रथमासमानाधिकरणे सति। धातोर्लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ वर्तमाने काले भवतः प्रथमान्तेन चेत् तस्य सामानाधिकरण्यं न स्यात्। अर्थात् धातु से लट् के स्थान में शतृ तथा शानच् आदेश वर्तमान काल में होते हैं। पचन्तं देवदत्तं पश्य=[पकाते हुए देवदत्त को देखो]।

३३१ **लस्य** ३।४।७७ अधिकारोऽयम् ३।४।११७ यावत् धातोः लस्य तिबादयः आदेशाः भवन्ति। धातु से विहित दसों लकारों के स्थान में तिबादि १८ आदेश होते हैं। भू+अ+ति=भवति।

३३२ **लशक्वतद्धिते** १।३।८ उपदेशे ७।१ प्रत्ययस्य ६।१ आदिः १।१ लशकु १।१ इत् भवति। प्रत्ययाद्या लशकवर्गाः इतः स्युः। अर्थात् प्रत्यय के आदि ल, श, कवर्ग की इत् संज्ञा होती है। ल्युट् शस् ङे ङसि ङस् इत्यादि के आदि अक्षरों की इत्संज्ञा करके लोप होता है।

३३३ **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ** ३।३।१३९ धातोः ५।१ लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां धातोर्लृङ् प्रत्ययो भवति। अर्थात् भविष्यत् काल में लिङ् का निमित्त होने पर क्रिया की सिद्धि गम्यमान न हो तो धातु से लृङ् प्रत्यय होता है।

३३४ **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** ७।२।७९ सार्वधातुके ७।१ अनन्त्यस्य ६।१ सस्य ६।१ लोपः १।१ भवति। सार्वधातुके यो लिङ् तस्य अनन्त्यस्य सकारस्य लोपो भवति। यथा—लिङ् के यासुट् के अनुबन्ध का लोप करके यास्+त में स् का लोप करके यात याताम् युः। इत्यादि प्रत्ययों में इसी से स् लोप होता है।

३३५ **लिङर्थे लेट्** ३।४।७ धातोः ५।१ लिङर्थे ७।१ लेट् १।१ भवति। छन्दसि विषये धातोः लिङर्थे लेट् प्रत्ययो भवति। अर्थात् लिङ् के अर्थ में लेट् प्रत्यय होता है। यह सूत्र प्रत्यय बनाता है।

३३६ **लुङ्** ३।२।११० धातोः ५।१ भूते ७।१ लुङ् १।१ भवति। अनद्यतने भूते धातोर्लुङ् स्यात्। अनद्यन भूत अर्थ में धातु से लुङ् लकार होता है। यह सूत्र

प्रत्यय बनाता है।

३३७ **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** ६।४।७१ लुङ् लङ् लृङ्क्षु ७।३ धातोः ६।१ अट् १।१ उदात्तः १।१ भवति। लुङ् लङ् लृङ् इत्येतेषु परतः अङ्गस्य अट् आगमो भवति। अर्थात् लुङ् लङ् तथा लृङ् के परे रहते अङ्ग को अट् का आगम होता है। और वह उदात्त होता है। यथा—भू+लुङ्=भू+त्=भू+सिच्+त्, सिच् लोप=अट्+भू+त्=अभूत्।

३३८ **लृट् शेषे च** ३।३।१३ धातोः ५।३ भविष्यति ७।१ शेषे ७।१ लृट् १।१ प्रत्ययो १।१ भवति। क्रियायां क्रियार्थायाम् उपपदे भविष्यति काले धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति। अर्थात् केवल भविष्यत् काल में तथा क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते धातु से लृट् लकार होता है। यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है।

३३९ **लृटः सद्वा** ३।३।१४ धातोः ५।१ लृटः ६।१ स्थाने ७।१ सत् १।१ वा [अ०] भवति। भविष्यति कालेऽर्थे गम्यमाने विहितस्य लृटः स्थाने शतृशानचावादेशौ वा भवतः। अर्थात् भविष्यत् काल अर्थ गम्यमान होने पर धातु से विहित लृट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश होते हैं विकल्प से। यथा—करिष्यन्तं करिष्यमाणं वा देवदत्तं पश्य। (जो करेगा ऐसे देवदत्त को देखो।)

३४० **लोट् च** ३।३।१६२ धातोः ५।१ लिङर्थे ७।१ विध्यादिषु लोट् १।१ भवति।

विधि [प्रेरणा] निमन्त्रण आमन्त्रण (कामचारानुज्ञा यथेच्छा) अधीष्ट [सत्कार पूर्वक भोजनादि में प्रवृत्ति] सम्प्रश्न प्रार्थना आदि अर्थों में लोट् लकार का प्रयोग होता है। यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है। द्र० सू० ३५२

३४१ **लोटो लङ्वत्** ३।४।८५ लोटः ६।१ लङ्वत् [अ०] कार्यम् भवति। लोटः लकारस्य लङ्वत् कार्यं भवति। अर्थात् लोट् लकार को लङ् के समान कार्य होते हैं। पच्+लोट्=तस्=ताम् पचताम्।

३४२ **लोपः शाकल्यस्य** ८।३।१९ अशि ७।१ भो भगो अघो अ पूर्वयोः व्योः ६।२ लोपः १।१ शाकल्यस्य ६।१ मते भवति। अशि परतः पदान्तयोः वकारयकारयोः लोपः भवति अतद्धिते तद्धितं वर्जयित्वा। अश् परे रहते भोस् भगोस् अघोस् है पूर्व जिनके ऐसे पदान्त यकारवकार का लोप होता हे शाकल्य के मत में

३४३ **लोपो व्योर्वलि** ६।१।६६ वलि ७।१ व्योः ६।२ लोपः १।१ भवति। वलि परतः वकारयकारयोः लोपो भवति। अर्थात् वल् परे रहते वकार और यकार

का लोप होता है। यथा—युवतिर्जाया यस्य स युवजानिः युवति सु जाया सु=समास सुप् लुक्=युवति जाया निङ्=पुंवत्भाव= युवन् जाया निङ् य् लोप न् और ङ् लोप= युवजानिः [युवति है स्त्री जिसकी]

३४४ **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** ६।४।१०७ म्वोः ७।२ असंयोगपूर्वस्य ६।१ अन्यतरस्याम् (अ०) लोपः १।१ भवति। असंयोग पूर्वो योऽयमुकारः तदन्तस्य प्रत्ययस्य लोपो भवति मकारादौ वकारादौ प्रत्यये च परतः. अर्थात् मकारादि तथा वकारादि प्रत्यय परे रहते संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसे उकारान्त प्रत्यय का लोप होता है। सु+वस् = सु+नु+वस्=सु+न्+वस्=सुन्वः, सुनुवः सुनु+मः सुन्मः सुनुमः।

३४५ **ल्युट् च** ३।३।११५ धातोः ५।१ नपुंसके भावे ७।१ ल्युट् १।१ भवति। नपुंसके लिङ्गे भावे ल्युट् प्रत्ययो भवति। अर्थात् नपुंसक लिङ्ग में भाव में ल्युट् प्रत्यय होता है। हस्+ल्युट्=अन=हसनम्।

व

३४६ **वचिस्वपियजादीनां किति**—६।१।१५ किति ७।१ वचिस्वपियजादीनां धातूनां ६।३ सम्प्रसारणम् १।१ भवति। किति परतः वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं भवति। अर्थात् कित् प्रत्यय परे रहते वच् स्वप् यजादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है। यथा—वच्+क्त=त=व को उ सम्प्रसारण =उच्=त = कुत्व=उक्तः।

३४७ **वर्तमाने लट्** ३।२।१२३ धातोः ५।१ वर्तमाने काले ७।१ लट् लकारः १।१ स्यात्। धातोः वर्तमाने काले लट् स्यात्। अर्थात् धातु से वर्तमान काल में लट् लकार होता है। यह सूत्र प्रत्यय बनाता है।

३४८ **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः**—८।२।७२ वसु-स्रंसु-ध्वंसु+अनडुहां ६।३ पदानां ६।३ दः १।१ भवति। सकारान्तस्य वस्वन्तस्य पदस्य स्रंसु ध्वंसु अनडुह् एतेषां च दकारादेशो भवति। अर्थात् सकारान्त वस्वन्त पद को स्रंसु तथा अनडुह् पद को दकार आदेश होता है। अनडुह्+भ्याम् =ह् को द्=अनडुद्भ्याम्।

३४९ **वसोः सम्प्रसारणम्**—६।४।१३१ भस्य—६।१ अङ्गस्य ६।१ वसोः ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ भवति। वस्वन्तस्य अङ्गस्य भस्य सम्प्रसारणं भवति। अर्थात् वसु अन्त वाले भ संज्ञक अङ्ग को सम्प्रसारण होता है। यथा—विद्+शतृ —विद्+वस्+शस् व को उ=सम्प्रसारण - स को ष=विसर्ग=विदुषः।

३५० **वावसाने**—८।४।५६ अवसाने ७।१ झलाम् ६।३ चर् १।१ भवति।

अवसाने झलाम् चरः स्यु विकल्पेन । अर्थात् **अवसान में [पद के अन्त्य वर्ण को अवसान कहते हैं]** झलों को चर् आदेश होता है। विकल्प से यथा—रामाद् के द् को त् =रामात्, रामाद् ।

३५१ **वा पदान्तस्य**—८।४।५९ यथि ७।१ पदान्तस्य ६।१ वा [अ०] परसवर्णः १।१ भवति । ययि परतः पदान्तस्य अनुस्वारस्य विकल्पेन परसवर्णादेशो भवति । अर्थात् यय् प्रत्याहार परे रहते पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होता है । यथा—सम्+यन्ता=संयन्ता, सम्यन्ता । सम्+कल्पः=संकल्पः सङ्कल्पः ।

३५२ **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** —३।३।१६१ विधि······प्रार्थनेषु ७।३ अर्थेषु ७।३ लिङ् लकारः १।१ स्यात् । अर्थात् विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, संप्रश्न प्रार्थना आदि अर्थों में लिङ् लकार होता है यह सूत्र भी प्रत्यय बनाता है ।

३५३ **विप्रतिषेधे परं कार्यम्**—१।४।२ प्रतिषेधे [तुल्यबलविरोधे] ७।१ परम् १।१ कार्यम् १।१ भवति । तुल्यबलविरोधे परं कार्यं भवति । तुल्यबल विरोध में पर कार्य होता है । (यह तो सपादसप्ताध्यायी तक ही फासिला करता है) यथा वृक्ष+भ्यस्=यहाँ पर सुपि च और बहुवचने झल्येत् दोनों ही प्राप्त हैं । सुपि च ७।३।१०२ है और बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३ है । इसलिए बहुवचने झल्येत् लगा ।

३५४ **विभक्तिश्च**—१।४।१०४ तिङः ६।१ सुपः १।३ विभक्तिः १।१ भवति । [संज्ञा] सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः । अर्थात् सुप् और तिङ् की विभक्ति संज्ञा होती है ।

३५५ **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्**—५।२।५६ विंशत्यादिभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् [अ०] डटः ६।१ तमट् १।१ [आगमः] स्यात् । संख्यावाचिभ्यः विंशति आदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः डटः तमडागमो भवति । अर्थात् संख्यावाची विंशति आदि प्रातिपदिकों से परे डट् को तमट् का आगम होता है । यथा विंशतेः पूरणः=विंशति+डट्=विंशति+तमट्+डट्=विंशतितमः ।

३५६ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**—२।१।५७ विशेषणं १।१ सुबन्तं १।१ विशेष्येण ३।१ सुबन्तेन ३।१ बहुलम् समासः १।१ भवति स च कर्मधारयः । विशेषणवाचि सुबन्तं विशेष्यवाचिना सुबन्तेन बहुलं समस्यते । अर्थात् विशेषणवाची सुबन्त का विशेष्यवाची सुबन्त के साथ समास होता है और वह कर्मधारय होता

है। यथा नीलञ्च तदुत्पलं—यहां नीलं विशेषण वाची सुबन्त है, उत्पल विशेषण वाची सुबन्त है। समास, प्रातिपदिक संज्ञा = सुलोप नीलोत्पलम्।

३५७ **विसर्जनीयस्य सः**—८।३।३४ खरि ७।१ विसर्जनीयस्य ६।१ सः १।१ भवति। खरि परतः विसर्जनीयस्य सः भवति। अर्थात् खर् प्रत्यय परे रहते विसर्ग को स होता है। विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता।

३५८ **वृद्धाच्छः**—४।२।११४ वृद्धात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ शेषेऽर्थे ७।१ छः १।१ प्रत्ययः १।१ शेषेऽर्थे वृद्धसंज्ञकात् छ प्रत्ययो भवति। अर्थात् वृद्ध संज्ञक से छ प्रत्यय होता है। माला—वृद्ध संज्ञा = माला + छ = ईय भ संज्ञक आलोप = मालीयः।

३५९ **वृद्धिरादैच्**—१।१।१ आत् १।१ ऐच् १।१ [प्रत्याहारः] वृद्धिः [संज्ञः] भवति। आदैच् वृद्धिसंज्ञः स्यात्। आ, ऐ, औ [आर् आल्] की वृद्धि संज्ञा होती है।

३६० (वा०) **वृद्ध्योत्वतृजवद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन**—वृद्ध्योत्वादिषु प्राप्तेषु विप्रतिषेधे अपरम् पूर्वम् कार्यम् १।१ भवति इति अर्थे कृते पूर्वमेव नुम् कार्यं भवति। अर्थात् वृद्धि, ओत्व तृज्वद् भात्र गुण की अपेक्षा नुम् विधि बलवती होती है। यथा—वारि + ए = यहां गुण प्राप्त है इस वार्तिक से निषेध कर नुम् हुआ।— वारिणे।

३६१ **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्**—१।१।७३ शब्दस्य यस्य ६।१ अचां ६।३ [मध्ये] आदिः १।१ [अच्] वृद्धिः १।१ तद् १।१ वृद्धं १।१ [संज्ञा] स्यात्। यस्य समुदायस्य अचाम् आदिः अच् वृद्धि-संज्ञकः स्यात्। अर्थात् जिस समुदाय के अचों में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो उस समुदाय की वृद्धि संज्ञा हो जाती है। यथा— शाला—वृद्ध संज्ञा = छ = ईय आ लोप शालीय = प्रातिपदिक कार्य तत् कार्य।

३६२ **वृद्धिरेचि**—६।१।८८ आत् ५।१ एचि ७।१ संहितायां ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एको १।१ वृद्धिः १।१ आदेशः स्यात्। अवर्णात् एचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। अर्थात् अवर्ण से एच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश होता है। कृष्ण + एकत्वं = कृष्णैकत्वम्।

३६३ **वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः**—१।२।६५ वृद्धः १।१ यूना ३।१ एकशेषः तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः १।१। वृद्धशब्देन अत्र गोत्रमुच्यते। लक्षणं निमित्तम्। विशेषः (विशेष्यं) गोत्रप्रत्ययान्तशब्दः युवप्रत्ययान्तेन सह शिष्यते युवा निवर्तते वृद्धयुवनिमित्तकमेव चेत् विशेषो भवेत्। अर्थात् गोत्र प्रत्ययान्त शब्द युवा प्रत्ययान्त

शब्द के साथ शेष रह जाता है यदि वृद्ध युवा निमित्तक प्रत्यय का ही भेद हो तो यथा— गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च इति गार्ग्यौ ।

३६४ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः—८।२।३६ झलि ७।१ पदान्ते ७।१ व्रश्च··· छशां ६।३ षः १।१ झलि परतः व्रश्च् भ्रस्ज् सृज् मृज् यज् राज् भ्राज् एषां छकारान्तानां शकारान्तानां च ष आदेशो भवति । अर्थात् झल् परे रहते ओव्रश्चू भ्रस्जो सृज् मृजूष् यज् राजृ टुभ्राजृ इन धातुओं को तथा छकारान्त और शकारान्त धातुओं को ष आदेश होता है । यथा—राजृ+क्विप्=सर्वापहारी लोप ज् को ष्=ड्=ट्=राट् ।

श

३६५ शरीरावयवाद्यत्—५।१।६ तस्मैहितम् इत्यर्थे शरीरावयवात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ यत् १।१ प्रत्ययः तद्धितः १।१ भवति । शरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकात् हितम् इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति । अर्थात् शरीर के अवयववाची प्रातिपदिक से हित अर्थ में यत् प्रत्यय होता है । यथा—दन्तेभ्यो हितम्=दन्त+यत्=भ संज्ञा अकार लोप दन्त्य प्रातिपदिक=सु=अम् दन्त्यम् ।

३६६ शश्छोऽटि—८।४।६३ झयः ५।१ अटि ७।१ शः ६।१ छः १।१ भवति । झयः परस्यः शकारस्य छकारादेशो भवति अटि परतः । अर्थात् झय्प्रत्याहार से परे शकार को छकार आदेश होता है अट् परे रहते । वाक्+शेते=श को छ=वाक्छेते ।

३६७ शि सर्वनामस्थानम्—१।१।४२ शि १।१ सर्वनामस्थानम् १।१ [संज्ञा] भवति । [जस् शसोः शि] जस् शसोः स्थाने जायमानस्य शीत्यस्य सर्वनामस्थानसंज्ञा भवति । अर्थात् जस् शस् के स्थान में जो शि आदेश होता है उसकी सर्वनाम स्थान संज्ञा होती है । यथा — ज्ञान+जस्=शि=सर्वनामस्थानसंज्ञा = नुम्= उपधादीर्घ=ज्ञानानि ।

३६८ शे मुचादीनाम्* ७।१।५६ शे ७।१ मुचादीनां ६।३ धातूनां ६।३ नुम् १।१ भवति । शे प्रत्यये परतो मुचादीनाम् अङ्गानां नुमागमो भवति अर्थात् श प्रत्यय परे रहते मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होता है । यथा—मुच्+ति श विकरण =अ मुच्+नुम्+ति=मुञ्चति ।

टिप्पणी— *मुञ्चतिलुम्पतिश्चैव विदिर्लिम्पति लुप्सिची । कृतिः खिदिः पिसिश्चैव विशिश्चाष्टौ मुचादयः ।।

३६९ **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्**—१।३।७८ उक्तेभ्यः आत्मनेपदेभ्यः ५।३ शेषात् ५।१ धातोः ५।१ कर्तरि ७।१ परस्मैपदम् १।१ भवति। आत्मनेपदभिन्नात् धातोः कर्तरि वाच्ये परस्मैपदं भवति। अर्थात् जिन धातुओं से आत्मनेपद का विधान नहीं किया गया है उनसे परस्मैपद होता है। यथा—या+तिप् (परस्मैपद)=शप् =अ लुक्=याति।

३७० **शेषो घ्यसखि**—१।४।७ [ह्रस्वम्[इदुदन्तं नदीं विहाय] शेषः १।१ घि १।१ असखि १।१ सखि विहाय ह्रस्वम् इकारान्तम् उकारान्तम् शब्दरूपम् सखिशब्दं वर्जयित्वा तस्य घिसंज्ञा भवति। अर्थात् जो ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग के वाचक नहीं हैं तथा जो स्त्रीवाचक होते हुए भी नदी संज्ञक नहीं हैं उनकी घिसंज्ञा होती है। यथा—अग्नि+ए+घि संज्ञा=गुण+अयादेश= अग्नये।

३७१ **शेषो बहुव्रीहिः**— २।२।२३ तत्पुरुषात् अव्ययीभावाच्च ५।१ शेषः १।१ बहुव्रीहि १।१ समासः १।१ ।उक्तादन्यः समासो बहुव्रीहिसंज्ञको भवति। अर्थात् इससे पूर्व जो समास कह दिया गया है उससे अन्य की बहुव्रीहि संज्ञा होती है। यथा— प्राप्तोदको ग्रामः।

३७२ **श्नसोरल्लोपः**—६।४।१११ सार्वधातुके क्ङिति ७।१ श्नसोः ६।२ अल्लोपः १।१। सार्वधातुके क्ङिति परतः श्नस्य अस्तेश्चाकारस्य लोपो भवति। अर्थात् कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते श्नम् प्रत्यय तथा अस् धातु के अकार का लोप होता है।

३७३ **श्नाभ्यस्तयोरातः**—६।४।११२ सार्वधातुके क्ङिति ७।१ श्नाभ्यस्तयोः ६।२ आतः ६।१ लोपः १।१ भवति। सार्वधातुके क्ङिति परतः श्ना इत्येतस्य अभ्यस्तानाञ्च अङ्गानाम् आकारस्य लोपो भवति। अर्थात् कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते श्ना तथा अभ्यस्त संज्ञक अकार का लोप होता है। यथा—मा+झ=अते= द्वित्व=अभ्यास को इत्व=मि+मा अते आ लोप=मिमते।

३७४ **श्लौ**—६।१।१० श्लौ ७।१ प्रथमस्य ६।१ एकाचः ६।१ अजादेः ६।१ द्वितीयस्य ६।१ द्वे १।२ भवतः। श्लौ परतः धातोरेकाचः प्रथमस्य अजादेर्द्वितीयस्य च द्वे भवतः। अर्थात् श्लु परे रहते हलादि धातु के प्रथम एकाच् को एवं अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है। यथा—हु+ति=श्लु=द्वित्व=चुत्व= गुण जुहोति।

टिप्पणी—श्नम् च अस् च श्नसौ तयोः। अतः लोपः अल्लोपः

इति समासः।

यथा—रुध+तस्=श्नम्=अ लोप=त को ध, स को रु विसर्ग=रुन्धः।

ष

३७५ **षः प्रत्ययस्य** १।३।६ उपदेशे ७।१ प्रत्ययस्य ६।१ आदिः १।१ षः १।१ इत् १।१ भवति। उपदेशे प्रत्ययस्य आदिः षकार इत्संज्ञको भवति। अर्थात् उपदेश अवस्था में प्रत्यय के आदि ष की इत् संज्ञा होती है। यथा—गार्ग्य+ष्फ =ष की इत् संज्ञा=आयन्=गार्ग्यायिण+ङीप् गार्ग्यायिणी।

३७६ **षट्कति कतिपयचतुरां थुक्** ५।२।५१ षट्...चतुरां ६।३ थुक् १।१ डटि ७।१ षट्कतिकतिपय ६।१ चतुरां थुक् ६।१ आगमः १।१ स्यात्। षट्कतिकतिपय, चतुर् एतेषां डटि परतः थुक् आगमो भवति। अर्थात् षट् कति कतिपय, चतुर् इनसे डट् प्रत्यय परे रहते थुक् का आगम होता है। यथा—षष्+डट् (अ) षष्+थुक्+ अ=ष्टुत्व=षष्ठः।

३७७ **ष्टुना ष्टुः** ८।४।४१ ष्टुना ३।१ योगे ७।१ स्तोः ६। ष्टुः १।१ स्यात्। षकारटवर्गाभ्यां योगे सकारतवर्गयोः षकारटवर्गौ स्तः। अर्थात् षकार और तवर्ग के योग में सकार तवर्ग होता है। यथा—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः।

३७८ **षड्भ्यो लुक्** ७।१।२२ षड्भ्यः ५।३ जश्शसोः ६।२ लुक् १।१ भवति। षट् संज्ञकात् परस्य जस् शसोर्लुक् स्यात् अर्थात् षट् संज्ञक से परे जस् और शस् का लुक् होना है। कति+जस्=लुक्=कति।

३७९ **ष्णान्ता षट्** १।१।२४ षकारान्ता नकारान्ता च या संख्या सा षट् संज्ञिका भवति। अर्थात् सकारान्त और नकारान्त जो संख्यावाचक शब्द है वह षट् संज्ञक होता है यथा षट् तिष्ठन्ति, नकारान्त—पञ्च।

३८० **षष्ठी शेषे** २।३।५० कर्मादिभिः ३।३ शेषे ७।१ अर्थे ७।१ षष्ठी विभक्तिः १।१ स्यात्। शेषे षष्ठी विभक्तिर्भवति। अर्थात् कर्मादि कारक जहाँ विव-क्षित न हों वहाँ षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—राज्ञः पुरुषः। यहाँ राजन् शब्द से षष्ठी एकवचन ङस् विभक्ति करके राज्ञः बना।

स

३८१ **संख्यापूर्वो द्विगुः** २।१।५२ संख्या पूर्वः १।१ समासः १।१ द्विगुः १।१ भवति। संख्यापूर्वको यः समासः सः द्विगुसंज्ञको भवति। अर्थात् संख्यावाची पूर्व में है जिसके ऐसे समास की द्विगु संज्ञा होती है। यथा—पञ्च इन्द्राण्यो देवता अस्य।

३८२ **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्** ५।४।१७ संख्यायाः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्—वृत्तिगणने ७।१ अर्थे ७।१

कृत्वसुच् प्रत्ययः १।१ भवति। क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः शब्देभ्यः स्वार्थे कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति। यथा—पञ्च वारान् भुङ्क्ते।—पञ्चन्+कृत्व-सुच् न लोप=उच् लोप स रु विसर्ग=पञ्चकृत्वः।

३८३ **संयोगान्तस्य लोपः** ८।२।२३ संयोगान्तस्य ६।१ पदस्य ६।१ लोपः १।१ स्यात्। संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति। संयोग अन्त वाले पद का लोप होता है। यथा—गोमत्+सु =गोमत्+दीर्घ नुम्+गोमान्त+सु=सु लोप—त् लोप =गोमान्।

३८४ **सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्** ३।१।२५ सत्यापचुरादिभ्यः धातुभ्यः ५।३ णिच् प्रत्ययः १।१ स्यात्। सत्याप पाश रूप वीणा तूल श्लोक सेना लोम त्वच् वर्म वर्ण चूर्ण एभ्यः अथ च चुरादिभ्यो धातुभ्यो णिच् प्रत्ययो भवति। अर्थात् उक्त शब्दों से एवं चुरादिगण पठित धातुओं से णिच् प्रत्यय होता है। यथा —सत्यम् आचष्टे—सत्याप+णिच् =सत्याप+इ =धातु संज्ञा =तिप् =सत्यापि+शप् (अ)=गुण सत्यापयति।

३८५ **सन्यङोः** ६।१।६ सन् यङोः ६।२ अनभ्यासस्य ६।१ एकाचः ६।१ द्वे १।२ स्तः। सन्नन्तस्य यङन्तस्य चानभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचोऽजादेर्द्वितीयस्य वा द्वे भवतः। अर्थात् सन्नन्त और यङन्त धातु के अनभ्यास अवयव प्रथम एकाच् तथा अजादि के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है। यथा—पच्+सन् =द्वित्व पच पच्+स =अभ्यास संज्ञा च लोप इत्व=कुत्व=क ष संयोग क्ष, धातुसंज्ञा= लट्=तिप् = शप् विकरण= अ = पिपक्षति।

३८६ **सन्यतः** ७।४।७९ सनि ७।१ अतः ६।१ अभ्यासस्य ६।१ इत् १।१ भवति। सनि परतः अकारान्तस्य अभ्यासस्य इकारादेशो भवति। सन् परे रहते अकारान्त अभ्यास को इत्व होगा यथा—पिपक्षति।

३८७ **सनाद्यन्ता धातवः** ३।१ ३२ सनाद्यन्ताः १।३ धातवः स्यु १।३ सनाद्यन्ता धातुसंज्ञका भवन्ति। अर्थात् सनाद्यन्तों की धातु संज्ञा होती है। सनादि— सन् क्यच् काम्यच् क्यङ् क्यष् क्विप्, यङ् इयाय आय् णिङ् णिच इयङ् इत्यादि। यथा—कृ+सन्=कृ+इट्+सन्=किर्+स द्वित्व=अभ्यास संज्ञा = चुत्व= दीर्घ=चिकीर्ष=धातु संज्ञा =लट् =तिप्=शप्=चिकीर्षति।

३८८ **सप्तम्यास्त्रल्** ५।३।१० किं सर्वनाम बहुभ्यः ५।३ अस्मदादिभ्यः ५।३ प्रातिपदिकेभ्यः ५।३ त्रल् प्रत्ययः १।१ स्यात्। सप्तम्यन्तात् प्रातिपदिकात् त्रल् प्रत्ययो भवति। अर्थात् सप्तम्यन्त प्रातिपदिक अस्मद् आदि शब्दों से त्रल् प्रत्यय होता

३८९ **सप्तम्यधिकरणे च** २।३।३६ अनभिहिते ७।१ अधिकरणे ७।१

सप्तमी १।१ विभक्तिः १।१ भवति । अनभिहिते अधिकरणे सप्तमी विभक्तिर्भवति चकारात् दूरान्तिकार्थेभ्यश्च । अर्थात् अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है । च पढ़ने से दूरान्तिक आदि शब्दों से भी सप्तमी होती है । यथा—कटे आस्ते दूरेऽस्ति । यहाँ कट से सप्तमी विभक्ति हुई ।

३६० **सभाया यः** ४।४।१०५ सभायाः ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ यः १।१ प्रत्ययः १।१ स्यात् तत्र "साधु" इत्यर्थे । प्रातिपदिकात् सभाशब्दात् तत्र साध्वर्थे यः प्रत्ययो भवति । अर्थात् प्रातिपदिक सभा शब्द से साधु अर्थ में य प्रत्यय होता है । सभा+य=भ संज्ञा, आ लोप=सभ्यः ।

३६१ **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**—४।४।२१ धात्वोः ६।२ समानकर्तृकयोः ६।२ पूर्वकाले ७।१ क्त्वा १।१ प्रत्ययः १।१ भवति । समानकर्तृकयोः धात्वर्थयोः पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानात् धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति । अर्थात् एक कर्ता है जिन दो क्रियाओं का उनमें जो पूर्व काल में वर्तमान धातु है उससे क्त्वा प्रत्यय होता है । यथा—देवदत्तः पीत्वा व्रजति=यहाँ पा व व्रज् धातु का कर्ता एक देवदत्त है अतः पूर्वकालिक होने के नाते पा धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

३६२ **समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप्** ७।१।३७ अनञ् पूर्वे ७।१ समासे ७।१ क्त्वः ६।१ ल्यप् १।१ भवति । अनञ् पूर्वे समासे क्त्वा इत्यस्य स्थाने ल्यप् आदेशो भवति । अर्थात् नञ् भिन्न पूर्व में है जिसके ऐसे समास में क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है । प्रकृ+क्त्वा=ल्यप्=तुक् प्रकृत्य ।

३६३ **समाहारः स्वरितः** १।२।३१ उदात्तानुदात्त समाहारः अच् १।१ स्वरितः १।१ भवति । उदात्तत्वानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरित संज्ञः स्यात् । अर्थात् उदात्तत्व अनुदात्तत्व ये दोनों वर्ण धर्म जहाँ एक जगह मिल जाएँ उसकी स्वरित संज्ञा होती है ।

३६४ **सम्प्रसारणाच्च**—६।१।१०८ सम्प्रसारणात् ५।१ अचि ७।१ पूर्वपरयोः ६।२ एकं पूर्वरूपम् १।१ भवति । सम्प्रसारणात् अचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति । अर्थात् सम्प्रसारण संज्ञक वर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है । यथा—यज्+त=[इ सम्प्रसारण] इ+अज्+त=इष्+त=ष्टुत्व इष्टम् ।

३६५ **सम्बुद्धौ च**—७।३।१०६ सम्बुद्धौ ७।१ च [अ०] आपः ६।१ अङ्गस्य ६।१ एत् १।१ सम्बुद्धौ च परतः आबन्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति । अर्थात् सम्बुद्धि परे रहते आबन्त अङ्ग को एकारादेश होता है । हे खट्वा+सु=ए=सु लोप=हे खट्वे ।

३९६ **सम्बोधने च** २।३।४७ सम्बोधने ७।१ प्रथमा विभक्तिः १।१ भवति। सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति अर्थात् सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—हे देवदत्त+सु=सु लोप=हे देवदत्त।

३९७ **समर्थानां प्रथमाद् वा** ४।१।८२ अधिकारोऽयं प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१ इति यावत् ततः समर्थानां मध्ये प्रथमोच्चरितात् प्रत्ययः वा भवति। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः तद्धिताः प्रत्ययाः समर्थानां मध्ये य प्रथमोच्चरितः प्रकृतिस्तस्मात् विकल्पेन भवति। अर्थात् यहाँ से लेकर प्राग्दिशो विभक्तिः तक कहे जाने वाले प्रत्यय समर्थों में प्रथम प्रकृति उससे विकल्प से होते हैं। यहाँ उपगोः अपत्यम्=यहाँ अपत्य भी समर्थ प्रकृति है किन्तु प्रकृति उपगु होने से उसी से अण् हुआ।=आदिवृद्धि=गुण अवादेश=औपगवः।

३९८ **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** १।२।६४ एकविभक्तौ ७।१ सरूपाणाम् ६।१ एकशेषः १।१ भवति। सरूपाणाम् शब्दानाम् एकविभक्तौ परतः एकशेषो भवति। अर्थात् एक विभक्ति परे रहते समान रूप वाले शब्दों में एक ही शब्द शेष रह जाता है।

४९९ **सहयुक्तेऽप्रधाने** २।३।१९ सहयुक्ते ७।१ अप्रधाने ७।१ अर्थे ७।१ तृतीया विभक्तिः १।१ भवति। सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया विभक्तिर्भवति। अर्थात् सह के अर्थवाची शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा पुत्रेण सह आगतः—यहाँ पर सह के योग में अप्रधान होने से पुत्र शब्द से तृतीया विभक्ति हो गई।

४०० **स्तोः श्चुना श्चुः** ८।४।४० श्चुना ३।१ योगे ७।१ स्तोः ६।१ श्चुः १।१ स्यात्। शकारचवर्गाभ्यां योगे सकारतवर्गयोः शकारचवर्गौ स्तः। अर्थात् शकार चवर्ग के योग में सकार तवर्ग को शकार चवर्ग होता है। यथा—रामस्+शेते=स् को श्=रामश्शेते।

४०१ **स्थानेऽन्तरतमः** १।१।५० स्थाने ७।१ अन्तरतमः आदेशः १।१ भवति। प्रसंगे सति सदृशतम आदेशो भवति अर्थात् [एक के स्थान में जहाँ अनेकों आदेश प्राप्त होते हैं उसे प्रसंग कहते हैं।] प्रसंग होने पर स्थानी के अत्यन्त समान आदेश होता है। यथा—सुधी+उपास्यः=यहाँ [इको यणचि] द्वारा इ को यण् का विधान किया गया है। इ के स्थान में य, व, र, ल, चार आदेश प्राप्त हुए हैं। ऐसी दशा में उक्त सूत्र ने इ के अति समान [स्थान प्रयत्न से जान कर] य कर दिया।=सुध्युपास्यः।

४०२ **स्पृशोऽनुदके क्विन्** ३।२।५८ अनुदके सुपि ७।१ [उपपदे] स्पृशः ५।१ धातोः ५।१ क्विन् १।१ प्रत्ययः १।१ स्यात्। अनुदके सुबन्त उपपदे स्पृशधातोः क्विन्

प्रत्ययो भवति । अर्थात् उदक भिन्न सुबन्त उपपद हो तो स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है । यथा—मन्त्रेण स्पृशति=मंत्र बोल कर स्पर्श करता है ।

४०३ **स्यतासी लृलुटोः** ३।१।३३ लृलुटोः ६।२ स्यतासी १।२ भवतः । लृङ् लृटोः लुटः परतो धातोः स्यतासी प्रत्ययौ भवतः । अर्थात् लृङ् लृट् तथा लुट् परे रहते धातु से स्य तास् प्रत्यय होते हैं । यह भी प्रत्यय बनाता है । तिङ् में स्य लगाकर लृट् लकार के स्यति स्यतः आदि प्रत्यय बनते हैं ।

४०४ **सर्वनाम्नः स्मै** ७।१।१४ सर्वनाम्नः ५।१ अङ्गात् ५।१ ङे ६।१ स्मै १।१ स्यात् । सर्वनाम्नः परस्य ङे स्मै भवति । अर्थात् सर्वनाम संज्ञक से परे ङे को स्मै आदेश होता है । सर्व+ङे=सर्वनाम संज्ञा=सर्वस्मै ।

४०५ **सर्वनाम्नः स्याड् ढ्रस्वश्च** ७।३।११४ आबन्तात् ५।१ सर्वनाम्नः ५।१ ङितः ६।१ स्याड् [आगमः] १।१ आपश्च ६।१ ह्रस्वः १।१ स्यात् । सर्वनाम्नः आबन्तात् अङ्गात् परस्य ङितः प्रत्ययस्य स्याडागमः सर्वनाम्नो ह्रस्वश्च भवति । अर्थात् आबन्त सर्वनाम अङ्ग से परे ङित् प्रत्यय को स्याट् का आगम होता है तथा आबन्त सर्वनाम को ह्रस्व होता है । सर्वा+ङे=सर्वा+स्याट् ङे = सर्वस्मै= ह्रस्व=सर्वस्मै ।

४०६ **सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ** ६।४।८ असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ७।१ नोपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ भवति । सम्बुद्धिभिन्ने सर्वनामस्थाने परतः नान्तस्य अङ्गस्य उपधायाः दीर्घो भवति । अर्थात् सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम स्थान परे रहते नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है । यथा—राजन्+सु=दीर्घ=सु लोप=राजा ।

४०७ **स्वतन्त्रः कर्ता** १।४।५४ क्रियासिद्धौ ७।१ स्वतन्त्रः १।१ कर्ता १।१ भवति । क्रियायाः सिद्धौ स्वतन्त्रं यत् कारकं तत् कर्तृसंज्ञकं भवति । अर्थात् क्रिया की सिद्धि में जो स्वतन्त्र कारक है उसकी कर्ता संज्ञा होती है । यथा देवदत्तः पचति । यहाँ पाक क्रिया की सिद्धि में देवदत्त स्वतन्त्र है अतः उसकी कर्तृ संज्ञा हुई ।

४०८ **स्वपो नन्** ३।३।९१ स्वपः धातोः ५।१ भावे अर्थे ७।१ नन् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति । स्वप् धातोर्भावे नन् प्रत्ययो भवति । अर्थात् स्वप् धातु से भाव अर्थ में नन् प्रत्यय होता है । स्वप्+नन्=न प्रातिपदिक संज्ञा=सु=रुत्व विसर्ग= स्वप्नः ।

४०९ **स्वमोर्नपुंसकात्** ७।१।२३ नपुंसकात् ५।१ अङ्गात् ५।१ स्वमोः ६।२ लुक् स्यात् । नपुंसकलिङ्गात् परस्य सु, अम् अनयोर्लुक् स्यात् । अर्थात् नपुंसक लिङ्ग वाले अङ्ग से परे सु तथा अम् का लुक् होता है । दधि+सु=लुक् दधि ।

४१० **स्वरादिनिपातमव्ययम्** १।१।३७ स्वरादि निपातम् १।१ अव्ययम्

१।१ स्वरादि शब्द रूपाणि निपाताश्च अव्ययसंज्ञकानि सन्ति । अर्थात् स्वरादि गण पठित शब्दों की तथा निपातों की अव्यय संज्ञा होती है । यथा स्वर्, प्रातर, च, वा इत्यादि ।

*४११ **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** १।३।७२ स्वरितञितः धातोः ५।१ कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ७।१ आत्मनेपदं १।१ स्यात् । स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपद स्यात् कर्तृगमिनि क्रियाफले । अर्थात् स्वरितेत् धातु तथा ञित् धातु से आत्मनेपद होता है यदि क्रिया का फल कर्ता को मिल रहा हो तो । यथा—पच्+ ते=पच् +शप्+ते=पच्+अ+ते=पचते ।

४१२ **स्वादिभ्यः श्नुः** ३।१।७३ स्वादिभ्यः ५।३ धातुभ्यः ५।३ श्नुप्रत्ययः १।१ स्यात् । स्वादिभ्यो धातुभ्यः श्नु प्रत्ययो भवति । अर्थात् स्वादिगणपठित धातुओं से श्नु प्रत्यय होता है । यथा—सु+तिप्=सु+श्नु+तिप्=षु+नु+ति =सुनु+ति=गुण=सुनोति ।

३१३ **ससजुषो रुः** ८।२।६६ पदान्तयोः ६।२ ससजुषोः ६।२ रुः १।१ स्यात् । सकारान्तस्य पदस्य सजुषस्य रुः भवति अर्थात् सकारान्त पद को तथा सजुष् के ष को रु होता है । यथा—राम+सु=स्=रु=र्=रामः ।

४१४ **साधकतमं करणम्** १।४।४२ कारके ७।१ [क्रियायां] साधकतमं १।१ करणं १।१ कारकं १।१ स्यात् क्रियायाः सिद्धौ यत् साधकतमं तत् कारकं करण-संज्ञकं भवति । अर्थात् क्रिया की सिद्धि में सबसे अधिक सहायक कारक की करण संज्ञा होती है । यथा—परशुना छिनत्ति यहाँ छेदन क्रिया में अत्यन्त सहायक परशु है । अतः उसकी करण संज्ञा हुई । तब तृतीया विभक्ति ।

४१५ **सान्तमहतः संयोगस्य** ६।४।१० असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ७।१ सान्तमहतः ६।१संयोगस्य ६।१ नोपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ भवति । सकारान्तस्य संयोगस्य सुप् च तिङ्च सुप्तिङौ अन्ते यस्य तत् सुप्तिङन्तं महतश्च यो मकारः तस्य उपधायाः दीर्घो भवति असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने च परतः । अर्थात् सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम स्थान परे रहते सकारान्त संयोग का और महत् शब्द का जो नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है । यथा—श्रेयस्+सु=नुम् श्रेय+न्+स् उपधा दीर्घ सुलोप श्रेयान् ।

४१६ **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** ७।३।८४ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।२ इकः अङ्गस्य ६।१ गुणः १।१ स्यात् । सार्वधातुकार्धधातुकपरयोः इगन्तस्य अङ्गस्य गुणो

***टिप्पणी**—१ स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ इतौ यस्य स स्वरितञित् तस्मात् ।

भवति । अर्थात् सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय हो तो इगन्त अङ्ग को गुण होता है। यथा—भू+तिप् = शप् विकरण=सार्वधातुक संज्ञा=गुण भो+अ=ति=अवादेश =भवति ।

४१७ **सार्वधातुकमपित्** १।२।४ अपित् १।१ सार्वधातुकम् १।१ ङित् पित् भिन्नं सार्वधातुकं ङित् वत् भवति । पित् भिन्न सार्वधातुक ङित् होता है। यथा—चि+तस्=श्नु=चिनुतस्=ङित्वत् =गुणनिषेध स रु विसर्ग चिनुतः ।

४१८ **सार्वधातुके यक्** ३।१।६७ धातोः ५।१ सार्वधातुके ७ १ भावकर्मणोः ७।२ अर्थयोः ७।२ यक् १।१ भवति । भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परतः धातोर्यक् प्रत्ययो भवति । अर्थात् भावकर्मवाची सार्वधातुक परे रहते धातु से यक् प्रत्यय होता है। यथा—गम्+यक्=गम्य=धातुसंज्ञा=लट्=त=गम्यते ।

४१९ **साऽस्य देवता** ४।२।२४ प्रथमासमर्थात् ५।१ प्रातिपदिकात् ५।१ सा अस्य देवता १।१ इत्यर्थे अणादयः १।३ तद्धिताः प्रत्ययाः १।३ स्युः । सा इति प्रथमा समर्थात् प्रातिपदिकात् अस्य इति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत् प्रथमा समर्थदेवता चेत् । अर्थात् प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। यदि वह प्रथमा समर्थ देवता विशेषवाची प्रातिपदिक हो तो। इन्द्रो देवता अस्य=इन्द्र+अण्=आदिवृद्धिः भसंज्ञा=अकार लोप=प्रातिपदिक संज्ञा =सु अम्=ऐन्द्रम् हविः ।

४२० **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** ३।४।१०९ सिजभ्यस्तविदिभ्यः धातुभ्यः ५।३ ङितः ६।१ झेः ६।१ जुस् १।१ भवति । सिचः परस्य अभ्यस्तसंज्ञकेभ्यः वेत्तेश्च परस्य ङितो झेर्जुस् आदेशो भवति । अर्थात् सिच् से परे अभ्यस्तसंज्ञक से परे विद् धातु से परे झि को जुस् आदेश होता है । कृ+झि=अट्=सिच्=वृद्धि =जुस्= अकार्षुः ।

४२१ **स्त्रियां क्तिन्** ३।३।९४ धातोः ५।१ भावे अर्थे ७।१ स्त्रियां ७।१ क्तिन् १।१ प्रत्ययः १।१ भवति । धातोः स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च क्तिन् प्रत्ययो भवति । अर्थात् धातु मात्र से स्त्रीलिङ् में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में क्तिन् प्रत्यय होता है। यथा—कृ+क्तिन्= ति=

४२२ **सुट् तिथोः** ३।४।१०७ लिङः ६।१ तिथोः ६।२ सुट् १।१ भवति । लिङ्सम्बन्धिनोः तकारथकारयोः सुट् आगमो भवति । अर्थात् लिङ् सम्बन्धी जो तकार थकार उनको सुट् का आगम होता है। यथा—भू+यास् ताम्=सुट्=स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२ भूयास्ताम् । यह सूत्र प्रत्यय बनाता है।

४२३ **सुप आत्मनः क्यच्** ३।१।८ आत्मनः ६।१ इच्छायां ७।१ सुपः ५।१

कर्मणः ५।१ क्यच् प्रत्ययः परः १।१ स्यात्। आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात् कर्मणः इच्छायाम् अर्थे क्यच् प्रत्ययो वा भवति। अर्थात् आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है। यथा—आत्मनः पुत्रमिच्छति=पुत्र+क्यच् इत्व=धातुसंज्ञा=लट्=तिप्=पुत्रीयति।

४२४ **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** २।४।७१ धातुप्रातिपदिकयोः ६।२ सुपः ६।१ लुक् १।१ भवति। धात्ववयवस्य प्रातिपदिकावयवस्य च सुपो लुक् भवति। अर्थात् धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है। यथा—पूर्व+अम्+भूत+सु—प्रातिपदिक संज्ञा—अम् लोप भूतपूर्व+सु=भूतपूर्वः।

४२५ **सुप्तिङन्तं पदम्** १।४।१४ सुप् तिङन्तम् १।१ पदम् १।१ भवति। सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं भवति। अर्थात् सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। यथा रामः, भवति।

४२६ **सुपि च** ७।३।१०२ सुपि ७।१ यञि ७।१ अतः ६।१ अङ्गस्य ६।१ दीर्घः १।१ भवति। यजादौ सुपि परतः अदन्तस्य अङ्गस्य दीर्घो भवति अर्थात् यजादि सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है। राम+भ्याम्=दीर्घ=रामाभ्याम्।

४२७ **वा० सूत्रेषु अदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र** [अयं नियमः सूत्रार्थकरणे] यदि कोई आवश्यक पद सूत्र में दिखाई न दे तो उसे दूसरे सूत्रों से ले लेना चाहिए। ऐसा सभी सूत्रों के लिये नियम है। यथा—एचोऽयवायावः इस सूत्र में हेतु नहीं दिया गया है अतः उसको जानने की इच्छा हुई तो इको यणचि से अचि को लाये तभी सही अर्थ बनता है कि एचों को क्रम से अय्, अव्, आय्,] आव् आदेश हों, अच् परे रहने पर।

४२८ **सेर्ह्यपिच्च** ३।४।८७ लोटः ६।१ सेः ६।१ हि १।१ अपित् १।१ च [अ०]भवति। लोटः सेः हि स्यात् स च अपित् भवति। अर्थात् लोट् के स्थान में सिप् को हि आदेश होता है और वह अपित् होता है। यथा—भू+सि=हि=शप्=अ=गुण=अवादेश=हि लुक्। =भव।

४२९ **सोदराद्यः** ४।४।१०९ सोदरात् प्रातिपदिकात् ५।१ "तत्र जातः" इत्यर्थे ७।१ यः १।१ प्रत्ययो भवति। प्रातिपदिकात् सोदरशब्दात् तत्रजातः इत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति। यथा—सोदर्+य=सोदर्यः।

४३० **सौ च** ६।४।१३ असम्बुद्धौ सौ ७।१ इन्नादीनां ६।३ उपधाया ६।१ दीर्घः १।१ भवति। असम्बुद्धौ सौ परतः इन्नादीनाम् उपधायाः दीर्घः स्यात्। अर्थात्

सम्बुद्धिभिन्न सु परे होते इन् हन् पूषण् अर्यमन् अङ्गों की उपधा को दीर्घ होता है। यथा दण्डिन्+सु=दण्डीन्+सु=सु लोप=न लोप=दण्डी।

ह

४३१ **हन्तेर्जः** ६।४।३६ हौ ७।१ हन्तेः ६।१ जः १।१ [आदेशः] भवति। हौ परतः हन्तेरङ्गस्य स्थाने ज आदेशो भवति। अर्थात् हि परे रहते हन् अङ्ग के स्थान में ज आदेश होता है। हन्+हि=ज=जहि।

४३२ **ह्रस्वः** ७।४।५९ अङ्गस्य ६।१ अभ्यासस्य ६।१ ह्रस्वः १।१ भवति। अङ्गस्य अभ्यासस्य ह्रस्वो भवति यथा—भू+णल्=वुक्=द्वित्व=अभ्याससंज्ञा =व लोप=ह्रस्व अ जश्=बभूव।

४३३ **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ७।१।५४ ह्रस्वनद्यापः ५।१ आतः ६।१ नुट् १।१ [आगमः १।१] स्यात्। ह्रस्वन्तात् नद्यन्तात् आबन्तात् प्रातिपादिकात् परस्य आमः नुडागमो भवति। अर्थात् ह्रस्वन्त, नद्यन्त तथा आबन्त प्रातिपदिक से परे आम् को नुट् का आगम होता है। यथा—राम+अम्=राम+नुट्+आम्= दीर्घ रामाणाम्।

४३४ **ह्रस्वस्य गुणः** ७।३।१०८ सम्बुद्धौ ७।१ ह्रस्वस्य ६।१ अङ्गस्य ६।१ गुणः १।१ स्यात्। सम्बुद्धौ परतः ह्रस्वान्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति। अर्थात् सम्बुद्धि परे रहते ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होता है। हे अग्नि+सु=हे अग्ने+सु, सु लोप= हे अग्ने।

४३५ **हलः श्नः शानज्झौ** ३।१।८३ हौ परतः हलन्तात् धातोः परस्य श्ना प्रत्ययस्य स्थाने शानच् आदेशो भवति। अर्थात् हि परे रहते हलन्त धातु से परे श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश होता है। तथा—मुष्+हि=श्ना=शानच् =आन=मुषान हि लुक्=न को ण=मुषाण।

४३६ **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं** हल् ६।१।६८ हल्ङ्याब्भ्यः ५।३ दीर्घात् ५।१ सु ति सि अपृक्तं १।१ हल् १।१ लुप्यते। हलन्तात्, ङ्यन्तात्, आबन्ताच्च दीर्घात् परं सु ति सि एतदपृक्तं हल् लुप्यते। अर्थात् हलन्त ङ्यन्त तथा आबन्त जो दीर्घ उससे सु ति सि के अपृक्त हल् का लोप होता है। यथा —कुमारी+सु=स् स् लोप =कुमारी।

४३७ **हलन्त्यम्** १।३।२ उपदेशे ७।१ अन्त्यम् १।१ हल् १।१ इत् १।१ स्यात्। उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। अर्थात् उपदेश अवस्था में जो अन्तिम हल् उसकी इत् संज्ञा होती है। यथा—अ इ उ ण में ण की इत् संज्ञा हुई।

४३८ **हलादिः शेषः** ७।४।६० अभ्यासस्य ६।१ आदिः १।१ हल् १।१ शेषः १।१ भवति । अभ्यासस्य आदिः हल् १।१ शिष्यते अन्यः लुप्यते । अर्थात् अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है अन्य का लोप होता है । यथा = अट् + अ = द्वित्व = अभ्यास संज्ञा टलोप दीर्घ = आट ।

४३९ **हलि च** ८।२।७७ हलि ७।१ र्वोः ६।२ धात्वोः ६।२ उपधायाः ६।१ इकः ६।१ दीर्घः १।१ स्यात् । हलि च परतो रेफवकारान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति । यथा—दिव् + ति = दिव् + श्यन् + ति = दीव्यति ।

४४० **हलि लोपः** ७।२।११३ हलि ७।१ विभक्तौ ७।१ इदमः ६।१ इदः ६।१ लोपः १।१ स्यात् । इदमोऽककारस्य इदरूपस्य लोपो भवति हलादौ विभक्तौ परतः । अर्थात् हलादि विभक्ति परे रहते ककार रहित इदम् शब्द के इद् भाग का लोप होता है । यथा—इदम् + भ्याम् = इद् लोप = अ + भ्याम् = दीर्घ = आभ्याम् ।

४४१ **हलि सर्वेषाम्** ८।३।२२ हलि परतः ७।१ भो भगो अघो अपूर्वस्य ६।१ पदान्तस्य ६।१ यकारस्य ६।१ सर्वेषाम् आचार्याणाम् ६।१ मते लोपः । भो भगो अघो अपूर्वस्य पदान्तस्य यकारस्य हलि परतः सर्वेषाम् आचार्याणाम् मते लोपो भवति । अर्थात् भो भगो अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले पदान्त यकार का लोप होता है हल् परे रहने पर सभी आचार्यों के मत में । यथा भो हसति ।

४४२ **हशि च** ६।१।११४ हशि ७।१ अप्लुतात् ५।१ अतः ५।१ रोः ६।१ उत् १।१ भवति । हशि परतः । अत उत्तरस्य रोरुकारादेशो भवति । अर्थात् हश् परे रहते अकार से परे रु को उ होता है । यथा—शिव + रु = वन्द्यः = शिव + उ + वन्द्यः गुण —शिवो वन्द्यः ।

४४३ **हिनुमीना** ८।४।१५ हिनु मीना इत्येतयोः उपसर्गस्थात् निमित्तात् परस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । अर्थात् उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे हिनु तथा मीना के नकार को णकार होता है । यथा—प्रहिणुतः, प्रमीणाति ।

४४४ **हुझल्भ्यो हेर्धिः** ६।४।१०१ हुझल्भ्यः ५।१ हेः ६।१ दीर्घः १।१ हु इत्येतस्मात् झलादेश्च परस्य हलादेर्हेः स्थाने धि इति आदेशो भवति । अर्थात् हु तथा झलन्त से परे हलादि हि के स्थान पर धि आदेश होता है । यथा—भिनद् + हि = भिन्द् + हि = भिन्द्धि ।

४४५ **हुश्नुवोः सार्वधातुके** ६।४।८७ अजादौ सार्वधातुके ७।१ हुश्नुवोः ६।२ यण् १।१ हु इत्येतस्य श्नुप्रत्ययान्तस्य च अनेकाचोऽङ्गस्य योऽसंयोगपूर्व उकारस्तस्य स्थाने यणादेशो भवति अजादौ सार्वधातुके परतः । अर्थात् अजादि सार्वधातुक

प्रत्यय परे रहते हु तथा श्नु प्रत्ययान्त अनेकाच् अङ्ग को संयोग पूर्व में नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण उसको यणादेश होता है। यथा=सु+अन्ति=सु+नु+अन्ति=सुन्वन्ति ।

४४६ **हेतुमति च** ३।१।२६ धातोः ५।१ हेतुमति अर्थे ७।१ णिच् प्रत्ययः १।१ स्यात् । हेतुमति अभिधेये धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति। [स्वतन्त्र कर्ता को प्रेरणा देने वाले को णिच् प्रत्यय होता है। उसका व्यापार करना हेतु हेतुमान् हुआ] उस हेतुमान् के अभिधेय होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है। यथा—देवदत्तः कटं करोति तं यज्ञदत्तः प्रेरयति इति कटं कारयति यज्ञदत्तः देवदत्तेन। कृ+णिच् =इ=वृद्धि कारि धातु संज्ञा=अ=गुण=अयादेश कारयति।

४४७ **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** ७।३।५४ हन्तेर्हकारस्य स्थाने कवर्गादेशो भवति। ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परतः अर्थात् ञित् णित् प्रत्यय तथा नकार परे रहते हन् धातु के हकार के स्थान में कवर्गादेश होता है। हन्+अक्=कुत्व=न को त, उपधावृद्धि=घातकः ।

कुछ फुटकल अतिरिक्त सूत्र

आ

४४८ **आदिरन्त्येन सहेता** १।१।७१ आदिः १।१ अन्त्येन ३।१ सह (अ०) इता ३।१ स्वस्य ६।१ च (अ०) अन्त्येन इता सहितः आदिः मध्यानां स्वस्य च ग्राहकः स्यात् अर्थात् अन्त्य इत् के साथ आदि बीच के वर्णों का और अपना भी ग्रहण करता है। जैसे अइउण् सूत्र में आदि अ और बीच के इ उ की अन्तिम इत् के साथ अण् संज्ञा हुई।

४४९ **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च** ३।४।२२ आभीक्ष्ण्ये ७।१ णमुल् १।१ धातोः आभीक्ष्ण्ये (पौनःपुन्ये अर्थे) णमुल् प्रत्ययः परः भवति। धातु से बारंबार अर्थ में णमुल् प्रत्यय होता है जैसे स्मारं स्मारं नमति शिवम् । पुनः पुनः स्मरण करके शिव को नमस्कार करता है।

४५० **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।२ प्रत्ययादीनाम् फ ढ ख छ घ इत्येतेषाम् वर्णानां स्थाने आयन् एय् ईन् ईय् इय् इत्येते आदेशा भवन्ति। अर्थात् प्रत्यय के आदि में स्थित फ ढ ख छ घ के स्थान में आयन् एय् ईन् ईय् इय् ये आदेश क्रमशः होते हैं।

जैसे : दक्षिण+फ = आयन् = दाक्षिणायन। कुल+ख=ईन्=कुलीन आदि।

४५१ एकः पूर्व-परयोः ६।१।८४ एकः १।१ पूर्वपरयोः ६।२ अधिकार-सूत्रम् इदम्। ६।१।८४ इत आरभ्य ६।१।१११ यावत् गच्छति। यह अधिकार सूत्र ६।१।१११ तक जाता है।

जैसे उप+इन्द्रः=उपेन्द्रः यहाँ आद्गुणः ६।१।८७ से पूर्व 'अ' और पर 'इ' दोनों के स्थान पर 'ए' गुण आदेश हुआ।

४५२ एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८ ह्रस्वादेशे ७।१ एचः ६।१ इक् १।१ भवति। ह्रस्वादेशे एचः स्थाने इक् भवति। अर्थात् ह्रस्व करने में एच् की जगह इक् होता है।

जैसे प्रै=प्रि+सु=प्रि।

त

४५३ त्वान्तं नपुंसकम् त्वान्तं प्रातिपदिकं नपुंसकं भवति अर्थात् त्व जिसके अन्त में होता है ऐसा प्रातिपदिक नपुंसक लिङ्ग होता है। यथा—मानवत्वम्।

इति तत्रभवद्भिः आचार्यप्रवरैः श्रीरामप्रकाश
भारद्वाजशास्त्रिमहाभागैः विरचिता
अजादि-हलादि-सूत्राणां पूर्णी नाम्नी व्याख्या समाप्ता।

मुख्याशुद्धिसंशोधनम्

नोट :— ङ्किति, पुलिङ्ग, बहुव्रीहि स्थाने सर्वत्र क्रमशः
क्ङिति, पुंल्लिङ्ग, बहुव्रीहि इति पठितव्यम् ।

"किमधिकम्" पृष्ठ से प्रारम्भ

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	२	भूला	भुला
		५	व्याकरण'	व्याकरणम्'
३	२	४	विश्वता	विश्वतो
		५	सूत्रविदा	सूत्रविदो
	४	२	बाघ	बोघ
६	१	१३	पढावे	पढ़ावें
		१५	गच्छे	गच्छ
	२	१	सर्कमक	सकर्मक
	४	३	अकांक्षा	आकांक्षा
७	१	२	तिप्तस	तिप्तस्
			मिब्वस	मिब्वस्
	२	२	आत्मेने	आत्मने
	३	१	०प्रत्येऽङ्गम्	०प्रत्ययेऽङ्गम्
	४	६	प्रति	प्राति
		७	पादिक	पदिक
		८	प्रातिपादिक	प्रातिपदिक
८	१	२	प्रातिदिक	प्रातिपदिक
	२	४	प्रादिपदिक	"
	अन्तिम	३	रूद्र	रुद्र
९	३	३	शान्च	शानच्
		९	वेट	वेट्
	५	५	सार्वधातुकर्य०	सार्वधातुकार्य०
		८	सार्वधातुकार्घा०	सार्वधातुकाघतुक०
१०	१	८	गकर	गकार
		१९	माकर	मानकर
		२०	सम्य्सारण	सम्प्रसारण

११		१	अल्वधि	अल्विधि
		६	समपति	समपत्ति
	३	२	तथासंख्य	यथासंख्य०
१२		७	जातिमत्वम	जातिमत्त्वम
	२	८	व्यक्तिकीर्णो०	व्यतिकीर्णो०
	४	२	लृ	लृ
१३		२	फ।छ	फ छ
		"	च ट व्	च ट त व्
१३		१०	सर्वाधिक	सावधिक
	१	१	उपरोक्त	उपरोक्त
१४	१	८	विषेशण	विशेषण
१५	२	४	उदातेत्	उदात्तेत्
		५	आकार	अकार
		६	इतसंज्ञा	इत्संज्ञा
	३	२	पिद्विदादि०	पिद्भिदादि०
		५	इत्ज्ञा	इत्संज्ञा
१६	२	२	अदेङ गुण	अदेङ्गुण:
१७		३	प्रत्सय	प्रत्यय
	३	२	सुट	सुट्
१८	३	१	उच्चैस्	उच्चैस्
१९	१	१	ऽप्त्वे	ऽप्त्त्वे
	३	२	ऊच्यादिय:	ऊर्य्यादय:
	२	१	साक्षात्प्रभीती०	साक्षात्प्रभृती
	६	२	खष्ट्वा	खट्वा
			कर्णेटिररिरेत्यादि	कर्णेटिरटिरित्यादि:
२०	२	२	अक्षिभ्र०	अक्षिभ्रु०
	४	२	कञ्ज्ज	कञ्ज
	६	२	०व्रजनद०	०व्रजनद०
	१०	१	नदट	नदट्
२१	७	२	जज्ञपति	यज्ञपति
२२	६	१	०भतोर्वो०	मतोर्वो०
	१०	२	नृतिर्यङि	नृतिं यङि

२३	श्लोक	३	०निर्मणतः	०निर्माणतः
	१	१	सगम	सुगम
	पाद टि०	१	वुध्वा	वुद्ध्वा
	,,	२	जालम	जालम्
२६		१	बालकर	बोलकर
	४	८	अनुसार	अनुस्वार
२८	१	१	उनुदात्त	अनुदात्त
	२	५	झमघढध	झभघढध
	४	१	०प्रत्यनं०	०प्रयत्नं०
		७	निरनुकासिक	निरनुनासिक
२९		४	ङदात्ता०	उदात्ता०
३१		४	जस्मिस्	जस् शस् भिस्
३२		७	मरुताः	मरुतः
		अन्तिम	सरद्	शरद्
३३		२	शरदेः	शरदोः
३४	१	१	(१) नकारान्त	[१]नकारान्त
		२	उपाधाया	उपधाया
		१०	नकरान्त	नकारान्त
	२	१	घीर्घ	दीर्घ
		३	चन्द्रमोभ्यान्	चन्द्रमोभ्याम्
३५	१	११	पयोमुक्र्	पयोमुक्
		१६	विभिक्तियों	विभक्तियों
	२	१	,,	,,
३६	१	१	घोप	घोष
		अन्तिम	चाहिए	चाहिएँ
३७	१	२	क.तॄन्	कर्तॄन्
		३	कुतुः, कर्तॄग्णम्	कर्तुः, कर्तॄणाम्
	५	४	वरिणा	वारिणा
३८	१	१०	मिस्	भिस्
३९	३	४	यूरव्याख्यौ	यूस्त्राख्यौ
		१२	सम्वृद्धः	सम्बुद्धेः

४०	१	२	दंशो०	दंसो०
		८	अप्नृन्०	अप्तृन्०
		१५	स्णसृ:	स्वसृ:
	२	७	०ऽन्त्यात्यर:	०ऽन्त्यक्षरप्र[illegible]
		९	उप्रधा	उपधा
		१३	अङ्ग्वात्	अङ्गात्
४१	१	२	सर्वो	सर्वौ
		४	,,	,,
		८	ञादेश-	आदेश-
		९	प्रत्ययो:	प्रत्ययगो:
			सवयो:	सर्वयो:
		१०	अतो गुण	अतो गणे
	२	२	तो:	तदो:
			सावनन्त्यो:	सावनन्त्ययो:
	३	२	त्यादादीनाम:	त्यदादीनाम:
४२	१	५	त्याददीनाम:	,,
		अन्तिम	घनने	बनने
४३	१	३	त्यादादीनाम:	त्यदादीनाम:
४७	अन्तिम	१	अनूक्त	अनुक्त
		२	तुतीया	तृतीया
४९		२	विभक्तितों	विभक्तियों
५०	४	११	कर्सधारय	कर्मधारय
		१२	कमघारय	,,
५४	२	१	आकार	अकार
		४	ऊर्ध्वम	ऊर्ध्वम्
	५	१	हक्	इक्
		२	परे हो	पड़ा हो
५५		३	पित्रर्थं:	पित्रर्थ:
५६	२	१	वाद	बाद
	३	१	,,	,,

	४	४	राजस्तथा	राजस्तथा
			तस्मिस्थकारे	तस्मिंस्थकारे
	५	१	शल	शल्
	पाद टि०	२	विसर्जजीयस्य	विसर्जनीयस्य
५७	२	६	सयाव:	संयाव:
		७	सव्वत्	सँव्वत्
५८	—	२	वाङ्यम	वाङ्मय
	अन्तिम	३	ताच्छिव:	तच्छिव:
५९	३	४	विपद	विपद्
	५	४	तालव्य	तालव्य
		६	करोषि	करोति
	पाद टि०	४	विर्सनीयस्य	विसर्जनीयस्य
६०	३	३	सत्धि	सन्धि
	पाद टि०	२	अद्यो	अघो
	,,	४	०सुलोश्रषो०	०सुलोपो०
	,,	५	द्रलोपे	ढ्रलोपे
६१	१	२	उपदाया:	उपधाया:
	२	२	इमें	इमे
	४	५	नपुंस	नपुंसक
६२	१	३	स्त्रियांक्वीप	स्त्रियां ङीप्
६२	३	१	०प्रतिपदिकेभ्य:	०प्रातिपदिकेभ्य:
	५	१	०कद्रमृड०	०रुद्रमृड०
		२	वारुणानी	वरुणानी
		३	हिमारण्यो०	हिमारण्ययो०
	६	८	नुशान	नुशासनम्
६३	—	६	प्रातिशादिक	प्रातिपदिक
		१८	अचां	अचाम्
६५	—	६	शषे	शेषे
		८	तद्धते	तद्धिते
६७	२	३	(०मोरघादवणा०)	(०मोरघादवर्णौ०)
		१५	तरप	तरप्

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८६	१	२	हेधिः	हेधिः
८७	—	७	स्नाभ्यस्त०	श्नाभ्यस्त०
		८	दत्त दत्त	दत्तं दत्त
८८	२	४	०ङिञ्च	०ङिञ्च
८९	—	३	भ्रेजुम्	[illegible]
		७	हनूका	हन् का
९०	—	२	अनुयात	[illegible]
	२	४	ङित	ङितः
९१	—	३	इच्वम्	इध्वम्
९३	—	५	रुत्व	रुत्व
९५	—	१	आर्द्धधातु	आर्द्धधातुक
९६	—	१३	अपाक्षवः	अपाक्षव
९८	२	१	द्वित्वादि	द्वित्वादि
		१४	षेचतुः	पेचतुः
		१५	जगदतु	जगदतुः
	३	१	सम या	समस्या
		७	०इदृङ्०	ष्इदृङ०
१०१		५	सार्वधानु	०सार्वधातु०
	२	२	ग्राम	ग्रामं
		३	अह	अहं
१०२	—	८	आर्धधातुकम	आर्धधातुक में
१०३	—	१८	व्यक्तवचि	व्यक्तवाचि,
१०४	—	१	आडुत्तयस्य	आडुत्तमस्य
१०६	—	३	स्भ्वोः	स्ध्वोः
	—	५	अघद्धूवम्	अधद्ध्वम्
	२	१	पुञ्	षुञ्
१०८	२	४	क्रीणातान्	क्रीणीतात्
१०९	१	६	०याम्	०थाम्
		१२	आपक्ष्यामहि	अपक्ष्यामहि
		१५	एधितास्महै	एधितास्महे
		१९	सीध्वलुङ्	षीध्वं लुङ्

११०	१	१, ६	द्वित्त्वादि	द्वित्वादि
		११	परस्मैद	परस्मैपद
		२१	०वृस्तुद्रस्नु	०वृस्तुद्रुस्नु
	२	५	ष्टुत्त्व	ष्टुत्व
१११	—	७	०कात्मनेपदि०	०कात्मनेपद०
११२	३	५	०क्विन्ष्वा०	०क्विवन्वा०
		६	किप्	क्विप्

इति शम्

—०००—